देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115
Sept.. 2026
Vol.-24, Issue-3

Impact Factor
8.642

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL



Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
#202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

https://bohalshodhmanjusha.com/

Vol. 24 ISSUE-3, Part-3 (सितम्बर 2026) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल

कार्यकारी सम्पादक :

प्रो. शकुन्तला चौहान

शामली, उत्तर प्रदेश।

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा 'शंकी'
पूर्व शिक्षा अधिकारी,
साहित्यकार,
चरखी दादरी (हरियाणा)

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि.
रोहतक (हरियाणा)

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी
हिन्दी विभाग, त्रिभुवन वि.वि.
काठमाण्डू, नेपाल।

डिल्लीराम शर्मा संग्रौला
विभागीय प्रमुख, संस्कृत, पत्रकारिता, हिंदी
पद्मकन्या बहुमुखी कैंपस, काठमांडू, नेपाल।

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. इस्पाक अली
पूर्व प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. राजकुमारी शर्मा
श्रीराम कॉलेज,
नई दिल्ली।

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास।

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब।

श्री राकेश शंकर भारती
साहित्यकार व अनुवादक,
यूक्रेन।

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. शबाना हबीब
गवर्नमेंट कॉलेज फॉर वूमैन
त्रिवन्तपुरम, केरल।

डॉ. शिवकरण निमल
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान
एसपीसी राजकीय महा. भीम, राजस्थान।

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
भारत कला भवन
वाराणसी, उत्तर प्रदेश।

डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत विभाग
हरियाणा सरकार।

डॉ. नीलम आर्या
संस्कृत विभाग
उत्तर प्रदेश।

डॉ. रवि सुण्डयाल
हॉयर एजुकेशन डिपार्टमेंट
जम्मू कश्मीर।

प्रो. नरेन्द्र सोनी
सूचना एवं जन सम्पर्क अधिकारी,
हरियाणा सरकार।

डॉ. रोहतास
एस.जी.पी.जी.आई.एम.एस.
लखनऊ, उत्तर प्रदेश।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य,
कैलिफोर्निया।

पठान चिन्ना जानी
सहायक प्राध्यापक
सी.एच.एस.डी. सेंट थेरेसा
महिला महाविद्यालय (ए)
एलुरु, आंध्र प्रदेश

डॉ. वैशाली सिंह
सहायक प्राध्यापक
शिक्षा विभाग, एस.एम.टी. अनार देवी
टी.टी. कॉलेज, बखराना
(कोटपुतली) राजस्थान।

डॉ. रेखा रानी
गवर्नमेंट रणबीर कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. अंकिता चतुर्वेदी, प्रवक्ता
भीमसेन डिग्री कॉलेज
(आगरा यूनिवर्सिटी)

शिओंग छन श्यू
चीन

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

शोध–पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतू बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 (PRINT) नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंध, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रीत इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है। पत्रिका के एक अंक का शुल्क 1100 रु. है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव–10, कृतिदेव–21 में व अंग्रेजी के Arial, Times New Roman में पेज मेकर या माइक्रोसोफ्ट वर्ल्ड में हमारी Email ID : grsbohal@gmail.com पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्रा आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

नोट :– उर्दू, पंजाबी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज 7x9.5 पर टाईप कराकर JPG या PDF फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।

हमारी पत्रिका में शोध पत्र लेखक के फोटो सहित प्रकाशित किये जाते हैं। इसलिए आप अपने शोध पत्र के साथ पासपोर्ट साईज फोटोग्राफ, सम्पर्क सूत्र; टेलीफोन, मोबाईल नं., ई–मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।

- शोध पत्र 2000–2500 शब्दों (4–6 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।
- पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।
- शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। पत्रिका में शोध आलेख प्रकाशन के लिए भेजने से पहले सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना लेखक का दायित्व है। प्रत्येक विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी (हरियाणा) होगा।
- सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार समिति/सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

अनुक्रमाणिका – सितम्बर 2026

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. नरेश सिहाग	10–11
2.	बून्देली लोक-संस्कृति में सामाजिक मान्यताएं एवं निषेध परम्परा	अनिल कुमार दुबे, सपना, अंजु लता	12–20
3.	भारत के विकास में युवा सहभागिता : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	डॉ० मौ० मुजफ्फर अंसारी	21–27
4.	महिला सशक्तिकरण में शिक्षा की भूमिका : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण	सिंधु कुमारी	28–33
5.	गांधीवादी सिद्धांतो के सच्चे प्रहरी : आचार्य जे. बी. कृपलानी	पंकज कुमार, डॉ. अनामिका	34–37
6.	गीतांजलि श्री की कहानियों में स्त्री-पुरूष संबंधों की अभिव्यक्ति	दीपिका श्रीमाली	38–42
7.	'बंद दरवाजे के पीछे' : माता-पिता और किशोरों के बीच विश्वास, संवाद और स्वतंत्रता का अध्ययन	अवनी मित्तल, श्रीमती वैशाली श्रीवास्तव	43–48
8.	'एक दिन बड़ी जिंदगी' में कविता का चरित्र-चित्रण : पारंपरिक पत्नी से जीवन-सहयात्री तक का रूपांतरण	श्रुति सिंघल, श्रीमती वैशाली श्रीवास्तव	49–56
9.	EFFECT OF ARTIFICIAL INTELLIGENCE ON CAREER MATURITY OF SENIOR SECONDARY SCHOOL STUDENTS	Dr. Madhvi	57-61
10.	दार्शनिक और राजनितिक परिप्रेक्ष्य में भावनाओं का मनोविज्ञान	डॉ. एम. एम. अंसारी	62–69
11.	ANALYZING THE ROLE OF BANKS IN PROMOTING MOBILE BANKING ADOPTION AMONG CUSTOMERS	Kiran Dattaram Jadhav, Dr. Mukesh Kumar Verma	70-79
12.	हिंदी एवं नागपुरी भाषा में क्रिया के प्रकार : एक तुलनात्मक अध्ययन	उषा कुमारी	80–87
13.	भारतीय परंपरा में राजधर्म और शासन की नैतिकता	डॉ० मौ० मुजफ्फर अंसारी	89–93
14.	21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में संवाद भाषा का स्वरूप	कपिल दिनकर चाटसे	94–99
15.	भारत का विभाजन : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, कारण, मानवीय त्रासदी और इसके दूरगामी परिणाम	संतोष कुमारी, डॉ. शोभा त्रिपाठी	100–106
16.	मृदुला गर्ग के साहित्य-सृजन में भारतीय दर्शन	अनुपमा, डॉ. रीना अग्रवाल	107–111
17.	Corrosion Protection of Drinking Water Pipelines and Its Impact on Human Health	Dr. Manjay Kumar Thakur	112-123

18.	**Scalable Machine Learning Techniques for Efficient Big Data Processing and Analysis**	**Reena Rani, Porf. Rajesh Gargi**	**124-134**
19.	21वीं सदी के हिंदी साहित्य में सृजन और विमर्श : पर्यावरणीय संकट, नव-पूंजीवाद और मनोवैज्ञानिक यथार्थ	शुभम यादव	135–141
20.	प्रवाद पर्व : लोक बनाम राजतन्त्र की समस्या	प्रो.(डॉ) कैलाश पति गोस्वामी	142–144
21.	चूड़ी का प्रतीकवाद : स्त्री पहचान और बाजार संस्कृति	शुभम यादव, प्रोफेसर राज भारद्वाज	145–150
22.	हिंदी महिला कथाकारों के उपन्यासों में किन्नर अस्मिता और सामाजिक यथार्थ : एक आलोचनात्मक अध्ययन	प्रोफेसर (डॉ.) अनुज पटेल, शालिनी वर्मा	151–155
23.	**Caste-Based Identity Mobilization and Political Representation in Uttar Pradesh : A Comparative Study of Descriptive and Substantive Representation of OBCs and Dalit Communities (2007–2022)**	**Ms. Gurdeep Kaur, Mr. Dhiraj Chaudhary**	**156-170**
24.	धर्मपाल साहिल के उपन्यासों में मीडिया की भूमिका	प्रवीण भाटिया	171–174
25.	उषा प्रियंवदा की कहानियों में अकेलापन	परमजीत कौर	175–177
26.	वैश्वीकरण के दौर में अनामिका का कथा-साहित्य : स्त्री -अस्मिता, सामाजिक परिवर्तन और समकालीन यथार्थ	वंदना चौहान, डॉ. रीना अग्रवाल	178–183
27.	रमेशचन्द्र शाह के कथा-साहित्य में ग्रामीण एवं सामाजिक परिवेश	पीयूष कुमार, डॉ. विष्णु प्रसाद शुक्ल	184–187
28.	प्रिंट मीडिया में ग्रामीण समस्याएँ : सहारनपुर जनपद के विशेष संदर्भ में 'अमर उजाला' और 'दैनिक जागरण' का विश्लेषणात्मक अध्ययन	साक्षी, डॉ. विभा	188–194
29.	कमलेश्वर का मीडिया लेखन में योगदान	विनोद कुमार, डॉ. धनेश कुमार मीणा	195–198
30.	स्त्री-चेतना, प्रतिरोध और आत्मनिर्णय : मैत्रेयी पुष्पा के 'झूलानट' में अस्मिता-विमर्श	डॉ. कविता वी. राजन	199–206
31.	सूरदास के काव्य में भक्ति आंदोलन की वैचारिक चेतना : एक आलोचनात्मक अध्ययन	डॉ. अनीता मीना	207–212
32.	भोपाल रियासत का विलीनीकरण आंदोलन तथा महिलाओं की भूमिका	कनिका गुप्ता, सोनिया मंडलोई	213–216
33.	समकालीन हिंदी उपन्यास में जल संकट और पर्यावरणीय विमर्श	Chhavi	217–228
34.	गरूड़ पुराण में वर्णित पंच महाभूत : एक अध्ययन	खुशबू सुथार	229-231

संपादकीय...

साहित्य : समय की धड़कन और समाज की आवाज

'प्रिय पाठको, शोधार्थियों, रचनाकारों एवं साहित्य–प्रेमियों,'

सादर नमस्कार!

'बोहल शोध मंजूषा' के 'सितंबर 2026 अंक' को आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यंत हर्ष और संतोष की अनुभूति हो रही है। प्रत्येक अंक हमारे लिए केवल शोध–पत्रों और रचनात्मक रचनाओं का संकलन नहीं, बल्कि विचारों के उस जीवंत संसार का निर्माण है, जहाँ साहित्य, समाज, संस्कृति, शिक्षा और मानवीय संवेदनाएँ एक–दूसरे से संवाद करती हैं।

समय निरंतर बदल रहा है। तकनीक ने हमारे जीवन की गति को अभूतपूर्व रूप से बढ़ा दिया है। आज साहित्य पुस्तकालयों की अलमारियों तक सीमित नहीं है, वह डिजिटल मंचों, ई–पत्रिकाओं, सामाजिक माध्यमों, ऑडियो–विजुअल माध्यमों और नए संचार उपकरणों के द्वारा व्यापक पाठक वर्ग तक पहुँच रहा है। हिंदी साहित्य के सामने यह नया संसार अनेक संभावनाएँ लेकर आया है, लेकिन इसके साथ गुणवत्ता, मौलिकता, संपादन, कॉपीराइट और साहित्यिक मूल्यों की रक्षा जैसी चुनौतियाँ भी उपस्थित हुई हैं।

ऐसे समय में साहित्य की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। साहित्य केवल मनोरंजन नहीं करता, वह मनुष्य को मनुष्य से जोड़ता है। वह प्रश्न करता है, असहमति को स्वर देता है, पीड़ा को अभिव्यक्ति देता है और समाज को उसके समय का आईना दिखाता है। एक अच्छी कविता किसी मौन व्यक्ति की आवाज बन सकती है, एक कहानी किसी भूले हुए जीवन–संघर्ष को सामने ला सकती है और एक शोध आलेख किसी स्थापित धारणा को नए दृष्टिकोण से देखने की प्रेरणा दे सकता है।

''बोहल शोध मंजूषा' का मूल उद्देश्य भी इसी साहित्यिक और बौद्धिक संवाद को आगे बढ़ाना है।' हमारा विश्वास है कि शोध केवल उपाधि प्राप्त करने का साधन नहीं होना चाहिए। शोध का वास्तविक अर्थ है– प्रश्न करना, तथ्यों की पड़ताल करना, स्थापित धारणाओं को परखना और ज्ञान की नई संभावनाओं को सामने लाना। इसलिए शोध में मौलिकता, प्रमाणिकता, तर्कशीलता और संदर्भबोध को सर्वोच्च स्थान मिलना चाहिए।

आज भारतीय भाषाओं और बहुभाषिकता को लेकर अकादमिक जगत में नए विमर्श सामने आ रहे हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में भारतीय भाषाओं की भूमिका, मातृभाषा में शिक्षा, अनुवाद, बहुभाषिक शिक्षण और भारतीय ज्ञान परंपरा पर निरंतर चर्चा हो रही है। हाल के अध्ययनों में भी भारतीय भाषाओं को उच्च शिक्षा और साहित्यिक अध्ययन से जोड़ने की संभावनाओं के साथ–साथ संसाधनों और संस्थागत तैयारी जैसी चुनौतियों को रेखांकित किया गया है।

हमें यह समझना होगा कि 'भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि हमारी स्मृति, संस्कृति और सामूहिक चेतना की वाहक है।' भारत की शक्ति उसकी भाषाई विविधता में निहित है। हिंदी का विकास अन्य भारतीय भाषाओं के साथ संवाद से ही समृद्ध होगा। अनुवाद इस संवाद का सबसे महत्वपूर्ण सेतु है। जब एक भाषा का साहित्य दूसरी भाषा के पाठकों तक पहुँचता है, तो केवल शब्दों का नहीं, बल्कि अनुभवों, संस्कृतियों और संवेदनाओं का भी आदान–प्रदान होता है।

आज आवश्यकता इस बात की भी है कि साहित्य के केंद्र में उन आवाजों को स्थान मिले जो लंबे समय तक हाशिए पर रही हैं। दलित, आदिवासी, स्त्री, किसान, श्रमिक, प्रवासी, दिव्यांग, ग्रामीण और अन्य वंचित समुदायों की जीवनानुभूतियाँ साहित्य को अधिक व्यापक और मानवीय बनाती हैं। हिंदी साहित्य में दलित और आदिवासी लेखन ने सामाजिक प्रतिनिधित्व और अस्मिता के प्रश्नों को नई शक्ति प्रदान की है।

इसीलिए साहित्य को केवल सौंदर्य का विषय मानना पर्याप्त नहीं है। साहित्य में 'सौंदर्य भी होना चाहिए और सरोकार भी।' शब्दों में संवेदना होनी चाहिए और संवेदना में मनुष्य के प्रति सम्मान। लेखक का दायित्व केवल सुंदर लिखना नहीं, बल्कि अपने समय की सच्चाइयों को ईमानदारी से पहचानना भी है।

सितंबर का यह अंक इसी व्यापक दृष्टि का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें विविध विषयों पर प्रस्तुत शोध आलेख ज्ञान के अलग–अलग क्षेत्रों को जोड़ने का प्रयास करते हैं। हमें विश्वास है कि ये आलेख शोधार्थियों, अध्यापकों और साहित्य के गंभीर पाठकों को नए प्रश्नों पर विचार करने के लिए प्रेरित करेंगे। साथ ही, रचनात्मक साहित्य पाठकों के भावलोक को स्पर्श करेगा और उन्हें अपने आसपास की दुनिया को नए दृष्टिकोण से देखने का अवसर देगा।

हम यह भी मानते हैं कि किसी शोध पत्रिका की सार्थकता केवल उसमें प्रकाशित सामग्री की संख्या से निर्धारित नहीं होती, बल्कि इस बात से होती है कि वह अपने पाठकों के भीतर कितने नए प्रश्न पैदा करती है। 'एक अच्छा शोध उत्तर देने से पहले सही प्रश्न करना सिखाता है। एक अच्छी कविता पढ़ने के बाद मन को कुछ देर शांत नहीं रहने देती। और एक अच्छी कहानी समाप्त होने के बाद भी हमारे भीतर चलती रहती है।'

आज जब सूचना बहुत है, लेकिन चिंतन के लिए समय कम होता जा रहा है, तब साहित्य और शोध दोनों की जिम्मेदारी बढ़ जाती है। हमें सूचना से आगे बढ़कर ज्ञान, ज्ञान से आगे बढ़कर विवेक और विवेक से आगे बढ़कर मानवीय संवेदना की ओर जाना होगा।

'बोहल शोध मंजूषा' इसी यात्रा में आपका सहयात्री बनना चाहती है।

हम अपने सभी लेखकों, शोधकर्ताओं, समीक्षकों, संपादकीय सहयोगियों और पाठकों के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करते हैं, जिनके विश्वास और सहयोग से यह साहित्यिक–शोध यात्रा निरंतर आगे बढ़ रही है। आपकी प्रतिक्रियाएँ, सुझाव और आलोचनाएँ हमारे लिए मार्गदर्शक हैं।

आइए, हम मिलकर ऐसी साहित्यिक और शोध संस्कृति का निर्माण करें जहाँ 'मौलिकता को सम्मान मिले, विचारों को स्वतंत्रता मिले, भाषा को गरिमा मिले और मनुष्य को केंद्र में स्थान मिले।'

शब्द तभी सार्थक होते हैं जब वे समाज में कुछ बदलने की क्षमता रखते हों।

'शब्द लिखे ही इसलिए जाएँ कि वे समय की धूल में दबे किसी सत्य को सामने ला सकें।'

इसी विश्वास के साथ –

'सितंबर 2026 अंक के सभी रचनाकारों एवं शोधकर्ताओं को हार्दिक शुभकामनाएँ।'

सादर!

–डॉ. नरेश सिहाग

सम्पादक

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2026 Page No. : 12-20

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

बून्देली लोक–संस्कृति में सामाजिक मान्यताएं एवं निषेध परम्परा

अनिल कुमार दुबे

श्रीमती विद्यावती कॉलेज ऑफ एजुकेशन, झाँसी, उत्तर प्रदेश, भारत

सपना

शिक्षा संस्थान, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी, उत्तर प्रदेश, भारत

अंजु लता

वीरांगना महारानी लक्ष्मीबाई राजकीय महिला महाविद्यालय, झाँसी, उत्तर प्रदेश, भारत।

संरक्षाण :

यह शोध–पत्र बुन्देली लोक–संस्कृति के अंतर्गत प्रचलित धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं पारिवारिक मान्यताओं तथा निषेध परम्पराओं का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करता है। बुन्देलखंड का लोकजीवन अपनी विशिष्ट भौगोलिक परिस्थितियों, ऐतिहासिक अनुभवों, कृषि–प्रधान अर्थव्यवस्था, धार्मिक आस्थाओं तथा सामुदायिक जीवन–पद्धति के कारण अत्यंत समृद्ध और विविधतापूर्ण रहा है। यहां लोकमान्यताओं केवल धार्मिक विश्वासों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि जन्म, विवाह, मृत्यु, कृषि, यात्रा, भोजन, स्वास्थ्य, प्रकृति, ऋतु–परिवर्तन तथा पारिवारिक संबंधों से भी गहराई से जुड़ी हुई हैं।

बुन्देली समाज में पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तान्तरित होने वाली अनेक परम्पराएं सामाजिक अनुशासन, सामुदायिक एकता और सांस्कृतिक निरंतरता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही हैं। इसी प्रकार अनेक निषेध अथवा वर्जनाएं व्यक्ति के दैनिक व्यवहार को नियंत्रित करने के साथ–साथ सामाजिक और पारिवारिक जीवन में सावधानी, अनुशासन एवं मर्यादा स्थापित करती रही हैं। कुछ निषेधों के पीछे तत्कालीन सामाजिक अनुभव, पर्यावरणीय परिस्थितियां, स्वास्थ्य–सुरक्षा तथा मनोवैज्ञानिक कारण भी दिखाई देते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य बुन्देली लोक–संस्कृति में प्रचलित प्रमुख मान्यताओं एवं निषेधों का दस्तावेजीकरण करना तथा उनके सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक और व्यावहारिक पक्षों का विश्लेषण करना है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि लोकविश्वासों को केवल अंधविश्वास के रूप में देखना उचित नहीं है; इनमें किसी न किसी रूप में तत्कालीन समाज के अनुभव, सामूहिक स्मृति और जीवन–व्यवहार की अभिव्यक्ति निहित है।

बीज–शब्द : बुन्देली संस्कृति, लोकमान्यताएं, लोक–निषेध, बलि–देवयज्ञ, बुन्देलखण्डी लोकाचार, लोकविश्वास, सामाजिक परम्परा, लोकजीवन, लोकसंस्कृति।

1. प्रस्तावना :

1.1 विषय की पृष्ठभूमि :

भारतीय संस्कृति मूलः लोकजीवन से निर्मित संस्कृति है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले समुदायों ने अपनी भौगोलिक परिस्थितियों, सामाजिक अनुभवों, धार्मिक विश्वासों और जीवन–व्यवहार के आधार पर विशिष्ट लोकपरम्पराओं का विकास किया। इन्हीं क्षेत्रीय लोकपरम्पराओं में बुन्देली लोक–संस्कृति का महत्वपूर्ण स्थान है। बुन्देलखंड की सांस्कृतिक पहचान केवल उसके इतिहास, दुर्गों, राजवंशों और वीरगाथाओं से ही नहीं बनती, बल्कि यहां के गांवों, लोकगीतों, लोककथाओं, रीति–रिवाजों, त्योहारों, देवी–देवताओं, कृषि–परम्पराओं, पारिवारिक संस्कारों तथा दैनिक जीवन में प्रचलित मान्यताओं से भी निर्मित होती है।

बुन्देली लोकजीवन में लोकमान्यताएं का प्रभाव व्यक्ति के जन्म से लेकर मत्यु तक दिखाई देता है। जन्म के समय होने वाले संस्कार, नामकरण, विवाह संबंधित रीति–रिवाज, ग्रहप्रवाश, कृषि आरम्भ, धार्मिक पर्व, मृत्यु संस्कार तथा पित–स्मरण जैसी परम्पराओं में अनेक लोकविश्वास जुड़े हुए हैं।

इन मान्यताओं के साथ–साथ समाज में अनेक निषेध भी प्रचलित रहे हैं। किसी विशेष दिन यात्रा न करना, किसी विशेष समय कोई शुभ कार्य न करना, गर्भवती महिला को कुछ परिस्थितियों में विशेष सावधानी बरतने की सलाह देना, पितृपक्ष में मांगलिक कार्यों से बचना आदि इसके उदाहरण हैं।

2. बुन्देलखंड की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि :

बुन्देलखंड उत्तर भारत का एक विशिष्ट सांस्कृतिक क्षेत्र है, जिसकी अपनी भाषा, लोकगीत, लोकनृत्य, लोककथाएं, पर्व–त्योहार और सामाजिक परम्पराएं हैं। बुन्देली बोली इस क्षेत्र की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम रही है।

यह क्षेत्र मुख्यतः ग्रामीण एवं कृषि–आधारित समाज से विकसित हुआ है। इसलिए यहां की संस्कृति में भूमि, जल, पशु, वृक्ष, वर्षा, कृषि तथा ऋतु–चक्र का विशेष महत्व दिखाई देता है।

बुन्देली लोकजीवन में प्रकृति केवल संसाधन नहीं बल्कि जीवन का अभिन्न अंग रही है। पीपल, बरगद, नीम, तुलसी, आंवला, शमी आदि वक्षों के प्रति श्रद्धा इसी प्रकृति–केंद्रित जीवन–दष्टि को दर्शाती है। नदियों, तालाबों, कुओं तथा पर्वतों को भी धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण माना गया।

इस प्रकार बुन्देली संस्कृति में धर्म और प्रकृति, सामाजिक व्यवस्था और लोकविश्वास तथा व्यवहार और परम्परा एक–दूसरे से अलग नहीं बल्कि परस्पर जुड़े हुए हैं।

3. लोकमान्यता की अवधारणा :

'लोकमान्यता' से आशय उन विश्वासों, धारणाओं और व्यवहारों से है जिन्हें किसी समुदाय द्वारा लम्बे समय तक स्वीकार किया जाता रहा हो। इन मान्यताओं का निर्माण किसी एक व्यक्ति द्वारा नहीं होता, बल्कि सामूहिक अनुभव और सामाजिक स्मृति के माध्यम से इनका विकास होता है।

लोकमान्यताओं की विशेषता यह है कि उनका लिखित स्व आवश्यक नहीं होता। वे मुख्यतः मौखिक परम्परा के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचती हैं।

बुन्देली समाज में भी दादी–नानी, माता–पिता, परिवार के बुजुर्ग, ग्राम–समुदाय तथा धार्मिक व्यक्तियों के माध्यम से अनेक मान्यताएं अगली पीढ़ी तक पहुँचती रही हैं।

4. लोकनीषध की अवधारणा :

लोकनीषध अथवा लोक–वर्जना से तात्पर्य ऐसे सामाजिक नियमों एवं निषेधों से है जिनके अंतर्गत किसी विशेष कार्य को विशेष समय, परिस्थिति या अवस्था में करने से मना किया जाता है।

लोकनीषध सामान्यत : तीन स्तरों पर दिखाई देते हैं –

1. धार्मिक निषेध
2. सामाजिक निषेध
3. व्यवहारिक एवं स्वास्थ्य संबंधित निषेध

इन निषेधों का उद्देश्य हमेशा धार्मिक भय उत्पन्न करना नहीं रहा, बल्कि कई बार सामाजिक अनुशासन और व्यवहार नियंत्रण भी रहा है।

5. शोध के उद्देश्य :

प्रस्तुत शोध के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं –

1. बुन्देली लोक–संस्कृति में प्रचलित प्रमुख लोकमान्यताओं का अध्ययन करना।
2. विभिन्न सामाजिक एवं धार्मिक निषेधों का दस्तावेजीकरण करना।
3. लोकमान्यताओं के सामाजिक आधार का विश्लेषण करना।
4. लोकनीषधों के पीछे निहित व्यवहारिक एवं मनोवैज्ञानिक पक्षों को समझना।
5. प्रकृति एवं पर्यावरण संरक्षण में लोकविश्वासों की भूमिका का अध्ययन करना।
6. आधुनिकता के कारण विलुप्त होती लोकपरम्पराओं को रेखांकित करना।
7. भावी पीढ़ी के लिए बुन्देली लोकज्ञान के संरक्षण की आवश्यकता को स्पष्ट करना।

6. शोध-विधि (Research Methodology)

प्रस्तुत अध्ययन में मुख्यतः गुणात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध पद्धति का प्रयोग किया गया है। बुन्देली लोकजीवन से संबंधित प्रकाशित पुस्तकों, शोध–पत्रों, पत्र–पत्रिकाओं तथा उपलब्ध संदर्भ सामग्री का अध्ययन किया गया है।

अध्ययन में लोकसाहित्य, लोकाचार, धार्मिक परम्पराओं तथा सामाजिक व्यवहार से संबंधित सामग्री का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है। विभिन्न लोकमान्यताओं को उनके सामाजिक, सांस्कृतिक एवं व्यवहारिक संदर्भों में समझने का प्रयास किया गया है।

7. बुन्देली लोकमान्यताओं एवं धार्मिक लोकाचार :

7.1 ज्योतिष एवं मुहूर्त व्यवस्था :

बुन्देली समाज में शुभ कार्यों के लिए शुभ मुहूर्त देखने की परम्परा लम्बे समय से प्रचलित रही है। विवाह, मुण्डन, गृहप्रवेश, नामकरण, धार्मिक अनुष्ठान आदि कार्यों के लिए तिथि, वार, नक्षत्र तथा मुहूर्त का विचार किया जाता है।

इस परम्परा का एक सामाजिक पक्ष भी है। किसी सामूहिक कार्य के लिए निश्चित शुभ समय निर्धारित करने से परिवार और समुदाय के सदस्यों को आयोजन में सम्मिलित होने का अवसर मिलता था।

7.2 पंचदेव एवं बलि–देवयज्ञ :

बुन्देली लोकजीवन में भोजन और धार्मिक आस्था के बीच भी गहरा संबंध दिखाई देता है। रसोई में प्रथम अग्नि तथा प्रथम भोजन को विशेष पवित्रता प्रदान की जाती है।

पंचदेव परम्परा में गणेश, गौरी, शिव, सूर्य और विष्णु आदि देवताओं के प्रति श्रद्धा दिखाई देती है। इसके अतिरिक्त गाय, कुत्ते, पक्षियों तथा अन्य जीवों को भोजन कराने की परम्परा भी लोकजीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा रही है।

यह परम्परा मनुष्य और अन्य जीवों के बीच सह–अस्तित्व की भावना को मजबूत करती है।

8. प्रकृति–पूजा एवं पर्यावरणीय चेतना :

बुन्देली लोक–संस्कृति में प्रकति के प्रति सम्मान अत्यंत महत्वपूर्ण है। पीपल, बरगद, नीम, तुलसी, आंवला और शमी जैसे वक्षों को धार्मिक महत्व दिया गया।

इन वक्षों की पूजा को केवल धार्मिक कर्मकाण्ड मानना पर्याप्त नहीं होगा। ग्रामीण समाज में इन वक्षों का सामाजिक और पर्यावरणीय महत्व भी था। बड़े वृक्ष गांवों में छाया, सामुदायिक बैठक तथा पक्षियों के आश्रय के रूप में उपयोगी होते थे।

इस प्रकार वृक्षों को धार्मिक संरक्षण प्रदान करना अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण संरक्षण का माध्यम भी रहा होगा।

9. नदियों एवं जल–स्त्रोतों का महत्व :

बुन्देलखण्ड की भौगोलिक परिस्थितियों में जल का विशेष महत्व रहा है। इसलिए नदियों, तालाबों, कुओं और जलाशयों से अनेक धार्मिक एवं सामाजिक विश्वास जुड़े रहे हैं।

यमुना, नर्मदा, चम्बल आदि नदियों को पवित्र मानने की परम्परा लोकजीवन में दिखाई देती है। जल को केवल भौतिक संसाधन न मानकर धार्मिक एवं जीवन–दायी तत्व के रूप में देखा गया।

ऐसी मान्यताओं ने पारम्परिक समाज में जल–स्त्रोतों के प्रति सम्मान की भावना विकसित करने में योगदान दिया।

10. जनजातिय एवं आंलिक देवता :

बुन्देलखण्ड के विभिन्न समुदायों में स्थानीय देवताओं की परम्परा भी महत्वपूर्ण रही है। गोंड आदि समुदायों में बड़ादेव की उपासना का विशेष महत्व है।

लोकदेवताओं से संबंधित विश्वास सामान्यतः स्थानीय समस्याओं, बीमारी, कृषि, वर्षा, पारिवारिक संकट और सामाजिक सुरक्षा से जुड़े होते हैं।

लोकदेवताओं की उपासना में सामुदायिक सहभागिता दिखाई देती है। इससे सामाजिक एकता और सामूहिक पहचान को भी बल मिलता है।

11. बुन्देली संस्कृति में वर्जनाएं एवं लोकनीषध :

11.1 यात्रा एवं तिथि संबंधित निषेध :

बुन्देली समाज में कुछ तिथियों और अवसरों को यात्रा के लिए अनुपयुक्त माना जाता रहा है। उदाहरण के रूप में नवमें दिन घर न लौटना अथवा पड़वा तिथि को घर से प्रस्थान न करना जैसी मान्यताओं उल्लेखनीय

हैं।

इन निषेधों को तत्कालीन ग्रामीण जीवन की परिस्थितियों से भी जोड़कर देखा जा सकता है। पुराने समय में यात्रा कठिन, असुरक्षित और समय–साध्य होती थी। इसलिए कुछ निश्चित दिनों को यात्रा के लिए अनुपयुक्त मानने की परम्परा सामाजिक सावधानी का माध्यम रही होगी।

12. गर्भवती महिलाओं से संबंधित निषेध :

सूर्यग्रहण या चंद्रग्रहण के समय गर्भवती महिलाओं को घर से बाहर न निकलने की परम्परा अनेक भारतीय लोकसमुदायों में पाई जाती है।

परम्परागत रूप से इसके पीछे धार्मिक एवं ज्योतिषीय विश्वास जुड़े रहे हैं। हालांकि आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि से ग्रहण के दौरान गर्भवती महिला के बाहर निकलने पर सामान्यतः कोई विशेष वैज्ञानिक प्रतिबंध स्थापित नहीं है।

फिर भी इस लोकविश्वास का अध्ययन सामाजिक मनोवैज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह गर्भावस्था के दौरान महिला को विशेष सुरक्षा और विश्राम देने की पारम्परिक सोच को भी प्रतिबिम्बित कर सकता है।

13. जल में अपना मुख देखने का निषेध :

कुछ पारम्परिक मान्यताओं में जल में अपना प्रतिबिम्ब देखने को निषेधित माना गया है। इसके पीछे धार्मिक एवं पाराणिक धारणाएं जुड़ी हुई हैं।

ऐसी मान्यताओं का उद्देश्य कई बार जल के प्रति सावधानी उत्पन्न करना भी रहा हो सकता है। ग्रामीण परिवेश में कुएं, तालाब और नदियां दैनिक जीवन के महत्वपूर्ण अंग थे और असावधानी से दुर्घटना की संभावना रहती थी।

अतः लोकनीषधों को उनके ऐतिहासिक एवं भौगोलिक संदर्भ में समझना आवश्यक है।

14. भोजन संबंधित निषेध :

बुन्देली लोकजीवन में भोजन को लेकर भी अनेक मान्यताओं प्रचलित रही हैं। घी और शहद को समान मात्रा में मिलाकर खाने को विषतुल्य मानने जैसी परम्पराएं उल्लेखनीय हैं।

ऐसी मान्यताओं का परीक्षण आधुनिक पोषण–विज्ञान और आयुर्विज्ञान के संदर्भ में अलग से किया जाना चाहिए। लोकविश्वासों को वैज्ञानिक तथ्य मानने के बजाय उनके सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ को समझना अधिक उचित है।

15. पितृपक्ष एवं मांगलिक कार्यों का निषेध :

पितृपक्ष भारतीय धार्मिक परम्परा में पूर्वजों के स्मरण और तर्पण का समय माना जाता है। इस अवधि में विवाह, सगाई, तिलक आदि मांगलिक कार्यों से बचने की परम्परा बुन्देली समाज में भी दिखाई देती है।

इस परम्परा का मूल उद्देश्य एक निश्चित अवधि को पूर्वजों के स्मरण और श्रद्धांजलि के लिए समर्पित करना रहा है। इससे परिवार की वंशपरम्परा और पूर्वजों के प्रति सम्मान की भावना मजबूत होती है।

16. जन्म एवं प्रसूति से संबंधित लोकमान्यताओं :

बुन्देली लोकजीवन में बच्चे के जन्म को अत्यंत महत्वपूर्ण सामाजिक घटना माना जाता है। प्रसव के बाद

माता और नवजात शिशु के लिए विशेष देखभाल की परम्परा रही है।

प्रसूति को कुछ समय तक अलग रखना, विशेष भोजन देना, बाहरी लोगों के संपर्क को सीमित करना तथा स्वच्छता से संबंधित कुछ नियमों का पालन करना जैसी परम्पराएं विभिन्न ग्रामीण समुदायों में रही हैं।

इनमें से कुछ परम्पराएं संक्रमण से बचाव और प्रसूति को आराम देने की व्यवहारिक आवश्यकता से संबंधित हो सकती हैं, जबकि कुछ धार्मिक या सांस्कृतिक विश्वासों से जुड़ी होती हैं।

17. विवाह संबंधित लोकमान्यताओं :

विवाह बुन्देली समाज का प्रमुख सामाजिक संस्कार है। विवाह में तिथि, मुहूर्त, कुल, गोत्र, पारिवारिक संबंध और सामाजिक प्रतिष्ठा को विशेष महत्व दिया जाता रहा है।

विवाह से पूर्व विभिन्न संस्कारों का आयोजन किया जाता है। तिलक, सगाई, हल्दी, मंडप, भात, विवाह और विदाई जैसे चरणों में लोकगीतों तथा पारम्परिक रीति–रिवाजों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

विवाह संबंधित लोकमान्यताओं सामाजिक संबंधों को मजबूत करने और दो परिवारों को जोड़ने का कार्य करती हैं।

18. मृत्यु एवं शोक से संबंधित निषेध :

मृत्यु के बाद परिवार में कुछ निश्चित अवधि तक सामाजिक और धार्मिक निषेधों का पालन किया जाता है। मांगलिक कार्यों से दूरी, विशेष भोजन व्यवस्था तथा शोक–संस्कार की प्रक्रिया इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

इन परम्पराओं का उद्देश्य मृत व्यक्ति के प्रति सम्मान प्रकट करने के साथ–साथ परिवार को शोक से उभरने के लिए सामाजिक समय और स्थान प्रदान करना भी रहा है।

19. लोकमान्यताओं का मनोवैज्ञानिक पक्ष :

लोकविश्वास व्यक्ति के मानसिक जीवन पर गहरा प्रभाव डालते हैं। किसी कार्य को शुभ मानने से व्यक्ति में आत्मविश्वास बढ़ सकता है, जबकि किसी कार्य को अशुभ मानने से व्यक्ति उसमें सावधानी बरत सकता है।

सामूहिक रूप से स्वीकार की गई मान्यताओं व्यक्ति को समुदाय से जोड़ती हैं। जब परिवार और समुदाय के सभी सदस्य किसी एक परम्परा का पालन करते हैं, तो उनमें सामाजिक जुड़ाव और सामूहिक पहचान की भावना विकसित होती है।

20. लोकनीषधों का सामाजिक महत्व :

लोकनीषध सामाजिक नियंत्रण के अनौपचारिक साधन के रूप में कार्य करते रहे हैं। लिखित कानूनों और औपचारिक संस्थाओं के सीमित प्रभाव वाले पारम्परिक ग्रामीण समाज में लोकाचार और निषेध सामाजिक व्यवहार को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण थे।

इनके माध्यम से –

- सामाजिक मर्यादा स्थापित होती थी।
- पारिवारिक अनुशासन बना रहता था।
- धार्मिक विश्वासों का संरक्षण होता था।
- समुदाय में एकरूपता आती थी।
- बुजर्गों के अनुभव को महत्व मिलता था।

- नई पीढ़ी को सामाजिक व्यवहार सिखाया जाता था।

21. लोकविश्वास और पर्यावरण संरक्षण :

बुन्देली लोक–संस्कृति का एक महत्वपूर्ण पक्ष उसका पर्यावरणीय दष्टिकोण है। जिन वक्षों को धार्मिक महत्व दिया गया, उनकी कटाई से लोग सामान्यतः बच ते थे। नदियों और तालाबों को पवित्र मानने से उनके प्रति सम्मान की भावना विकसित होती थी।

यदि किसी समुदाय में किसी वृक्ष या जलस्त्रोत को धार्मिक संरक्षण प्राप्त है, तो वह संरक्षण अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण संरक्षण का कार्य कर सकता है।

आज जब पर्यावरणीय संकट बढ़ रहा है, तब लोकसंस्कृति में निहित इस पर्यावरणीय चेतना का पुनर्मूल्यांकन आवश्यक है।

22. आधुनिकता और लोकपरम्पराओं में परिवर्तन :

आधुनिक शिक्षा, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, शहरीकरण, संचार क्रांति और सामाजिक परिवर्तन के कारण बुन्देली लोकपरम्पराओं में तेज़ी से परिवर्तन आया है।

आज नई पीढ़ी में कई पारम्परिक मान्यताओं के प्रति विश्वास कम हुआ है। विवाह और अन्य मांगलिक कार्यों में मुहूर्त की पारम्परिक व्यवस्था में भी परिवर्तन दिखाई देता है।

इसके बावजूद त्योहार, लोकगीत, पारम्परिक विवाह संस्कार, देवी–देवताओं की पूजा तथा पारिवारिक रीति–रिवाज आज भी अनेक क्षेत्रों में जीवित हैं।

इसलिए यह कहना उचित होगा कि लोकसंस्कृति समाप्त नहीं हो रही, बल्कि परिवर्तनशील रूप में पुनर्गठित हो रही है।

23. वैज्ञानिक दृष्टिकोण और लोकविश्वास :

लोकमान्यताओं का अध्ययन करते समय दो अतियों से बचना आवश्यक है। पहली अति यह है कि प्रत्येक लोकविश्वास को अंधविश्वास मान लिया जाए। दूसरी अति यह है कि प्रत्येक परम्परा को वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित मान लिया जाए।

एक संतुलित दृष्टिकोण यह होगा कि प्रत्येक मान्यता को उसके ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक संदर्भ में समझा जाए।

जहाँ किसी परम्परा में स्वास्थ्य, स्वच्छता, पर्यावरण या सामाजिक सुरक्षा का व्यवहारिक आधार दिखाई देता है, वहाँ उसके सकारात्मक पक्ष को रेखांकित किया जाना चाहिए। वहीं वैज्ञानिक रूप से असत्य या हानिकारक विश्वासों का विवेकपूर्ण पुनर्मूल्यांकन भी आवश्यक है।

24. बुन्देली लोकसंस्कृति के संरक्षण की आवश्यकता :

बुन्देली लोकसंस्कृति आज परिवर्तन के दौर से गुजर रही है। लोकगीत, लोककथाएं, लोकभाषा, पारम्परिक रीति–रिवाज और स्थानीय मान्यताओं धीरे–धीरे कम होती जा रही हैं।

इनके संरक्षण के लिए निम्नलिखित प्रयास किए जा सकते हैं :

1. बुन्देली लोकसाहित्य का डिजिटल अभिलेखीकरण।
2. ग्रामीण बुजुर्गों के मौखिक इतिहास का रिकॉर्ड तैयार करना।

3. लोकगीत एवं लोककथाओं का दस्तावेजीकरण।
4. विद्यालय एवं विश्वविद्यालय स्तर पर लोकसंस्कृति अध्ययन को प्रोत्साहित करना।
5. बुन्देली भाषा और साहित्य पर शोध को बढ़ावा देना।
6. स्थानीय लोकलाकारों एवं पारम्परिक ज्ञानधारकों का सम्मान।
7. लोकपरम्पराओं पर संगोष्ठियों एवं कार्यशालाओं का आयोजन।
8. वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ उपयोगी लोकपरम्पराओं का संरक्षण।

25. निष्कर्ष :

बुन्देली लोक–संस्कृति में प्रचलित सामाजिक मान्यताओं एवं निषेध परम्पराओं का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि लोकजीवन की संरचना केवल धार्मिक विश्वासों पर आधारित नहीं थी, बल्कि इसमें सामाजिक अनुभव, पर्यावरणीय परिस्थितियां, पारिवारिक संरचना, सामुदायिक अनुशासन तथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएं भी सम्मिलित थी।

बुन्देली समाज में शुभ–अशुभ की अवधारणा, धार्मिक अनुष्ठाान, पंचदेव परम्परा, प्रकति–पूजा, स्थानीय देवी–देवताओं की उपासना, यात्रा संबंधित निषेध, गर्भवती महिलाओं से जुड़े नियम, पितपक्ष में मांगलिक कार्यों से दूरी तथा भोजन संबंधित मान्यताओं लोकजीवन की विविधता को प्रदर्शित करती हैं।

इन परम्पराओं में कुछ का आधार तत्कालीन सामाजिक और व्यवहारिक अनुभवों में खोजा जा सकता है, जबकि कुछ शुद्ध रूप से धार्मिक अथवा सांस्कृतिक विश्वासों से निर्मित हैं। अतः इन्हें एक ही दृष्टिकोण से देखना उचित नहीं होगा।

आधुनिकता के प्रभाव से अनेक लोकपरम्पराएं कमजोर हो रही हैं, किन्तु उनका सांस्कृतिक महत्व समाप्त नहीं हुआ है। बुन्देली लोकमान्यताओं क्षेत्र की सामूहिक स्मृति, सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक इतिहास का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं।

अतः आवश्यकता इस बात की है कि इन परम्पराओं का ''वैज्ञानिक, समाजशास्त्रीय और सांस्कृतिक दृष्टि से दस्तावेजीकरण'' किया जाए। जो परम्पराएं मानवता, पर्यावरण, सामाजिक सद्भाव और सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण में सहायक हैं, उनका संरक्षण किया जाना चाहिए तथा जो मान्यताएं वैज्ञानिक दृष्टि से असंगत अथवा सामाजिक रूप से हानिकारक हैं, उनका विवेकपूर्ण पुनर्मूल्यांकन आवश्यक है।

इस प्रकार बुन्देली लोक–संस्कृति केवल अतीत की विरासत नहीं, बल्कि वर्तमान सामाजिक पहचान और भविष्य की सांस्कृतिक चेतना का भी महत्वपूर्ण आधार है।

संदर्भ सूची :

1. गणेश प्रसाद गुप्त, बुन्देली संस्कृति और साहित्य, पृष्ठ 34–41।
2. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिंदी डिशनरी, पृष्ठ 796।
3. अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद', बुन्देलखण्ड का लोकजीवन (भूमिका), पृष्ठ 4।
4. अंजनीनंदंद शरण (सम्पादक), मानस–पीयूष, खण्ड–2, पृष्ठ 594।
5. डॉ. बी. आर. वर्मा, बुन्देलखण्ड दर्पण पत्रिका, 2006, 'बुन्देलखण्ड में निषेधात्मक लोक संस्कार', पृष्ठ 58।

6. डॉ. रामनारायण शर्मा, भारतीय लोक–संस्कृति एवं लोक–परम्पराएं, नवीन प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. डॉ. हरिशंकर शर्मा, बुन्देलखण्ड का सांस्कृतिक इतिहास, साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली।
8. डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, लोक–संस्कृति के विविध आयाम, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।
9. डॉ. कृष्ण चन्द्र पाण्डेय, भारतीय लोकजीवन और लोकविश्वास, साहित्य भवन, इलाहाबाद।
10. डॉ. रामशरण शर्मा, भारतीय संस्कृति के सांस्कृतिक आयाम, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
11. डॉ. श्याम चन्द्र पाण्डेय, लोक साहित्य और लोक संस्कृति, साहित्य भवन, इलाहाबाद।
12. रामनाथ पाण्डेय, भारतीय लोक–परम्पराओं का समाजशास्त्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
13. डॉ. विजय बहादुर सिंह, बुन्देलखण्ड की लोक संस्कृति, भारतीय प्रकाशन, वाराणसी।
14. डॉ. सुरेश चन्द्र शुक्ल, लोकविश्वास, लोकाचार और सामाजिक संरचना, साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली।
15. डॉ. रमेश चन्द्र मिश्र, भारतीय लोक संस्कृति में परम्परा और परिवर्तन, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।

संवाद लेखक ईमेल : sch.sapnasin16@bujhansi.ac.in

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2026 Page No. : 21-27

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

भारत के विकास में युवा सहभागिता : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० मौ० मुजफ्फर अंसारी

राजनीति विज्ञान, घिस्सुपुरा–हरिद्वार, उत्तराखण्ड।

शोध सार (Abstract) :

भारत विश्व का सबसे बड़ा देश है, जहाँ बड़ी संख्या में 35 वर्ष से कम आयु वर्ग के युवा संघर्षमय जीवन यापन करते हैं। यह युवा शक्ति देश के विकास और भविष्य की दिशा तय करने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। इस शोध–पत्र में यह समझने का प्रयास किया किया गया है, कि आज के समय में युवा समाज, अर्थव्यवस्था, राजनीति और संस्कृति जैसे विभिन्न क्षेत्रों में किस प्रकार योगदान दे रहे हैं। साथ ही युवाओं के सामने मौजूद चुनौतियों जैसे बेरोजगारी, शिक्षा और कौशल की कमी, नशे की समस्या तथा राजनीतिक भागीदारी की कमी पर भी विचार किया जाएगा। शोध–पत्र के माध्यम से ये भी समझने का प्रयास किया गया है कि यदि युवाओं की ऊर्जा और क्षमताओं को सही दिशा दी जाए तो भारत को एक मजबूत और विकसित राष्ट्र बनाया जा सकता है।

मुख्य शब्द (Keywords)

भारत, युवा, विकास, शिक्षा, रोजगार, कौशल, राजनीति, संस्कृति।

प्रस्तावना (Introduction)

भारत को आज विश्व का सबसे युवा देश कहा जाता है। जनगणना और विभिन्न राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय रिपोर्टों के अनुसार भारत की लगभग 65 प्रतिशत जनसंख्या युवा वर्ग की है। इतनी बड़ी युवा जनसंख्या किसी भी राष्ट्र के लिए अमूल्य पूँजी होती है, क्योंकि युवा न केवल ऊर्जा और उत्साह से परिपूर्ण होते हैं, बल्कि उनमें नवाचार करने, बदलाव लाने और भविष्य को संवारने की क्षमता भी होती है। वर्तमान समय में भारत कई चुनौतियों और अवसरों के संगम से गुजर रहा है। एक ओर तेजी से बदलती वैश्विक अर्थव्यवस्था, सूचना प्रौद्योगिकी की क्रांति, वैश्वीकरण और डिजिटल युग ने युवाओं को नए अवसर प्रदान किए हैं, वहीं दूसरी ओर बेरोजगारी, कौशल की कमी, नशे और भटकाव जैसी समस्याएँ युवाओं की क्षमता को सीमित भी कर रही हैं। ऐसे में यह समझना आवश्यक हो जाता है कि भारत के विकास की प्रक्रिया में युवा किस प्रकार सक्रिय भागीदारी निभा सकते हैं और उनकी ऊर्जा को सकारात्मक दिशा में कैसे लगाया जा सकता है। युवा केवल आने वाले कल के नागरिक नहीं हैं, बल्कि वर्तमान के भी निर्माता हैं। सामाजिक परिवर्तन, सांस्कृतिक संरक्षण, राजनीतिक

भागीदारी और आर्थिक सशक्तिकरण– इन सभी क्षेत्रों में उनकी भूमिका निर्णायक होती है। यदि उनकी क्षमता को शिक्षा, कौशल विकास, उद्यमिता और जागरूकता के माध्यम से सही दिशा दी जाए तो भारत "विकसित भारत 2047" के सपने को साकार कर सकता है।

उद्देश्य (Objectives)

इस शोध–पत्र का मुख्य उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि भारत के वर्तमान विकास परिदृश्य में युवाओं की क्या भूमिका है और उनकी भागीदारी किस प्रकार राष्ट्र को नई दिशा दे सकती है। अध्ययन के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया जाएगा कि युवा सामाजिक परिवर्तन, आर्थिक प्रगति, राजनीतिक चेतना और सांस्कृतिक संरक्षण में किस प्रकार योगदान कर रहे हैं। साथ ही यह भी देखा जाएगा कि उनके सामने बेरोजगारी, शिक्षा और कौशल की कमी, नशे की समस्या तथा राजनीतिक उदासीनता जैसी चुनौतियाँ किस प्रकार बाधक बन रही हैं। शोध का एक अन्य उद्देश्य यह है कि इन चुनौतियों के समाधान के लिए व्यावहारिक सुझाव दिए जाएँ और यह दिखाया जाए कि यदि युवाओं की ऊर्जा, क्षमता और रचनात्मकता को सही दिशा दी जाए तो भारत को एक सशक्त और विकसित राष्ट्र बनाया जा सकता है।

शोध पद्धति (Research Methodology)

इस शोध–पत्र में वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है। इसमें विषय से संबंधित सामग्री मुख्य रूप से द्वितीयक स्रोतों से एकत्र की जाएगी, जिनमें पुस्तकें, शोध आलेख, सरकारी रिपोर्टें, जनगणना आँकड़े, नीति आयोग की रिपोर्ट, समाचार–पत्र और विभिन्न पत्रिकाएँ शामिल होंगी। एकत्रित सामग्री का विश्लेषण कर यह समझने का प्रयास किया जाएगा कि वर्तमान समय में भारत के विकास में युवाओं की भूमिका किन–किन क्षेत्रों में दिखाई देती है।

विश्लेषण (Analysis)

1. सामाजिक आयाम :

किसी देश का विकास उसके सामाजिक परिवर्तन से पता चलता है कि उस देश में किस प्रकार के परिवर्तन रहे है। भारत के विकास में युवाओं की भूमिका का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष सामाजिक परिवर्तन है। युवा समाज में नई सोच, ऊर्जा और जागरूकता लाते हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य और लैंगिक समानता जैसे मुद्दों में उनका योगदान निर्णायक रहा है। भारत सरकार की राष्ट्रीय युवा नीति 2014 भी इस तथ्य को रेखांकित करती है जिसका का उद्देश्य युवाओं को सशक्त बनाना और उन्हें राष्ट्र निर्माण में सक्रिय रूप से योगदान करने में सक्षम बनाना है। इस नीति के तहत शिक्षा, रोजगार, कौशल विकास, उद्यमिता, स्वास्थ्य, खेल, सामाजिक संवर्धन और नागरिक सहभागिता जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित किया गया है।[1] यह नीति भारत के युवाओं के समग्र विकास के लिए एक रोडमैप प्रदान करती है, जिसमें कमजोर और हाशिए पर पड़े युवाओं के लिए सामाजिक न्याय और समान अवसर सुनिश्चित करने के लिए विशेष प्रयास किए जाते हैं।

2. आर्थिक आयाम :

किसी भी देश के विकास में उसकी अर्थ व्यवस्था का बहुत बड़ा रोल होता है और इस अर्थ व्यवस्था को मजबूत व सशक्त बनाये रखने का जिम्मादारी अधिकांश युवा वर्ग निभाते है। भारत के विकास में युवाओं की भूमिका का दूसरा प्रमुख पक्ष आर्थिक क्षेत्र है। युवा न केवल देश की श्रम शक्ति का आधार हैं बल्कि वे नवाचार

और उद्यमिता के भी प्रेरक हैं। राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय (NSO) की वार्षिक श्रम बल सर्वेक्षण (PLFS) रिपोर्ट 2022–23 में बताया गया है कि भारत में बेरोजगारी दर में लगातार कमी आई है, जबकि श्रम बल भागीदारी दर (LFPR) और श्रमिक जनसंख्या अनुपात (WPR) में वृद्धि हुई है। रिपोर्ट के अनुसार, 2022–23 में ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी दर 4.4% थी, जबकि शहरी क्षेत्रों में यह 7.0% थी। पुरुषों और महिलाओं दोनों के लिए बेरोजगारी दर में कमी आई, विशेष रूप से महिलाओं के लिए LFPR और WPR में उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई। राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय (NSO) के आँकड़ों के अनुसार, भारत की कुल कार्यशील जनसंख्या में युवाओं (15–29 वर्ष आयु वर्ग) का हिस्सा लगभग 27 प्रतिशत है, जो आर्थिक वृद्धि के लिए महत्वपूर्ण है।[2]

युवा आज स्टार्टअप, डिजिटल अर्थव्यवस्था और सेवा क्षेत्र में नई संभावनाएँ पैदा कर रहे हैं। आर्थिक सर्वेक्षण 2022–23 में बताया गया है कि भारत दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा स्टार्टअप इकोसिस्टम बन चुका है और इसमें बड़ी संख्या युवा उद्यमियों की है।[3] यह स्थिति दर्शाती है कि यदि सरकार द्वारा उचित प्रोत्साहन और वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई जाए तो युवा न केवल स्वयं को आत्मनिर्भर बना सकते हैं, बल्कि रोजगार सृजन में भी योगदान दे सकते हैं।

इसके साथ ही नीति आयोग की 'आत्मनिर्भर भारत अभियान' रिपोर्ट 2020 यह स्पष्ट करती है कि डिजिटल प्रौद्योगिकी और कौशल विकास के क्षेत्र में युवाओं की सक्रिय भागीदारी भारत को वैश्विक अर्थव्यवस्था में प्रतिस्पर्धी बनाने की दिशा में मदद कर रही है।[4]

3. राजनीतिक आयाम :

संजय कुमार की यह पुस्तक भारतीय लोकतंत्र में युवाओं की चुनावी भूमिका पर केंद्रित है। इसमें यह दिखाया गया है कि भारत जैसे युवा–प्रधान देश में युवा मतदाताओं और युवा उम्मीदवारों की राजनीतिक भागीदारी लोकतंत्र को किस प्रकार प्रभावित करती है। लेखक यह तर्क देते हैं कि यद्यपि युवा वर्ग राजनीतिक रूप से जागरूक है और समसामयिक मुद्दों पर सक्रिय चर्चा करता है, लेकिन जब वास्तविक चुनावी भागीदारी की बात आती है, जैसे मतदान करना या उम्मीदवार के रूप में सामने आना, तो उनका रुझान अपेक्षाकृत कम दिखाई देता है। पुस्तक यह प्रश्न भी उठाती है कि क्या युवा मतदाता वास्तव में युवा उम्मीदवारों को प्राथमिकता देते हैं और क्या इससे चुनाव परिणामों पर ठोस प्रभाव पड़ता है। लेखक के अनुसार युवाओं की राजनीति में रुचि लगातार बढ़ रही है, परंतु इस रुचि को क्रियात्मक भागीदारी में बदलना सबसे बड़ी चुनौती है।

आधुनिक समय में सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म्स ने युवाओं की राजनीतिक चेतना को और मजबूत किया है, लेकिन मतदान प्रतिशत में इसका सीधा परिलक्षण हमेशा नहीं दिखता। पुस्तक का मुख्य निष्कर्ष यह है कि लोकतांत्रिक व्यवस्था की मजबूती के लिए युवाओं की ऊर्जा और विचारों को चुनावी प्रक्रिया से जोड़ना आवश्यक है। इसके लिए राजनीतिक दलों को युवाओं को टिकट देना, घोषणापत्र में उनके मुद्दों को शामिल करना और राजनीतिक साक्षरता को बढ़ावा देना होगा। संजय कुमार यह भी सुझाते हैं कि यदि मतदान प्रक्रिया को और सरल, सुलभ और आकर्षक बनाया जाए तो युवा मतदाता अधिक सक्रिय रूप से भाग ले सकते हैं।[5] इस प्रकार, पुस्तक युवाओं की राजनीतिक चेतना और उनकी चुनावी भागीदारी के बीच मौजूद अंतर को रेखांकित करते हुए यह संदेश देती है कि भारत के लोकतंत्र का भविष्य युवाओं की सक्रिय और सार्थक भागीदारी पर ही निर्भर है।

मतदाता केवल मतदान करने के लिए ही अपने अधिकार का प्रयोग नही करता बल्कि उचित सरकार का चुनाव करने में भी सक्षम है। भारत जैसे लोकतांत्रिक राष्ट्र में युवाओं की भूमिका केवल मतदान तक सीमित नहीं है, बल्कि वे लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा, नीति–निर्माण में भागीदारी और सुशासन की प्रक्रिया में सक्रिय योगदान कर सकते हैं। भारत निर्वाचन आयोग के अनुसार, 2019 के लोकसभा चुनाव में लगभग 1.5 करोड़ नए युवा मतदाताओं ने पहली बार अपने मताधिकार का प्रयोग किया।[6] यह आँकड़ा दर्शाता है कि लोकतंत्र की जड़ों को मजबूत बनाने में युवाओं का योगदान लगातार बढ़ रहा है। जो उनकी भागीदारी को सुनिश्चित करता है। युवा केवल लोकतंत्र की आधारशिला ही नहीं हैं बल्कि वे भविष्य के नेतृत्व का भी निर्माण करते हैं। यदि उन्हें शिक्षा, प्रशिक्षण और अवसर मिले तो वे राजनीति को अधिक समावेशी और पारदर्शी बना सकते हैं।

4. सामाजिक–सांस्कृतिक आयाम :

विश्व की तुलना में अगर देखा जाये तो भारत में सदियों से अन्धविश्वास अपनी मजबूत पैठ बनाये हुए था लेकिन वर्तमान में भारत जैसे बहु–सांस्कृतिक और विविधताओं से भरे समाज में युवाओं की भूमिका केवल आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों तक सीमित नहीं है, बल्कि वे सामाजिक परिवर्तन और सांस्कृतिक पुनर्जागरण के भी अग्रदूत हैं। युवा शिक्षा, जागरूकता और प्रगतिशील सोच के माध्यम से समाज को रूढ़ियों से मुक्त करने में सक्षम हैं। राष्ट्रीय युवा नीति 2014 में स्पष्ट उल्लेख है कि भारत का युवा समाज–सुधार, सामुदायिक नेतृत्व और सामाजिक नवाचार का सबसे बड़ा स्रोत है।[7]

डॉ. योगेन्द्र सिंह अपनी प्रसिद्ध कृति भारतीय परम्परा का आधुनिकीकरण में लिखते है कि 'भारतीय समाज के परिवर्तनशील स्वरूप में युवा सबसे अधिक गतिशील तत्व हैं, जो परंपरा और आधुनिकता के बीच सेतु का कार्य करते हैं'।[8] प्रस्तुत पुस्तक समकालीन भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रियाओं तथा समस्याओं का एक सम्पूर्ण समाजशास्त्रीय अध्ययन है। भारतीय 'सामाजिक संरचना' तथा 'परम्पराओं' के स्वरूपों व प्रकार्यों में जो परिवर्तन आजकल हो रहे हैं यह उन परिवर्तनों की व्यापक श्रृंखला के बारे में भी ध्यान आकर्षित करती है। सांस्कृतिक क्षेत्र में भी युवाओं का योगदान महत्त्वपूर्ण है। वे न केवल भारतीय सांस्कृतिक धरोहर को जीवित रख रहे हैं बल्कि वैश्विक मंच पर योग, आयुर्वेद, शास्त्रीय संगीत और लोककला को लोकप्रिय बना रहे हैं।

इस प्रकार सांस्कृतिक मूल्यों की निरंतरता तभी संभव है जब युवा अपनी परंपराओं को गर्व से अपनाएँ और उन्हें आधुनिक जीवनशैली के साथ जोड़ें। इस प्रकार सामाजिक–सांस्कृतिक क्षेत्र में युवाओं की सक्रियता न केवल सामाजिक न्याय और समानता की दिशा में सहायक है बल्कि यह भारतीय समाज को वैश्विक स्तर पर अधिक सम्मान दिलाने का भी साधन है।

5. शैक्षिक आयाम :

शिक्षा आज किसी भी राष्ट्र के विकास का सबसे महत्वपूर्ण आधार है और युवाओं के सशक्तिकरण में इसका विशेष स्थान है। भारत में युवाओं की शिक्षा में वृद्धि ने उन्हें केवल रोजगार के योग्य ही नहीं बनाया, बल्कि सामाजिक जागरूकता और नेतृत्व क्षमता भी प्रदान की। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुसार, उच्च शिक्षा में कौशल और नवाचार को बढ़ावा देना युवाओं की प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता को मजबूत करने में मदद करता है।[9] युवाओं की सक्रिय भागीदारी से शिक्षा के क्षेत्र में नवाचार और तकनीकी प्रयोग भी देखने को मिलते हैं। उदाहरण के लिए, डिजिटल शिक्षा, ई–लर्निंग प्लेटफॉर्म और स्टार्टअप आधारित शिक्षण विधियाँ युवा छात्रों को वैश्विक स्तर

की शिक्षा तक पहुँचाने में मदद कर रही हैं। नीति आयोग की डिजिटल इंडिया योजना के तहत युवाओं ने शिक्षा के डिजिटल प्लेटफॉर्मों के निर्माण और संचालन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।[10]

इसके अलावा कौशल विकास कार्यक्रम जैसे प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (PMKVY) ने युवाओं को व्यावसायिक प्रशिक्षण देकर रोजगार सृजन और आत्मनिर्भरता की दिशा में कदम बढ़ाने में मदद की है।[11] इस प्रकार, शैक्षिक आयाम में युवाओं की भूमिका न केवल ज्ञान अर्जन तक सीमित है बल्कि यह रोजगार, नवाचार और सामाजिक समृद्धि में भी योगदान देती है।

6 वैश्विक परिदृश्य :

वैश्विक परिदृश्य में भारतीय युवाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण और बहुआयामी है। आज के समय में भारतीय युवा न केवल देश के विकास में बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विज्ञान, तकनीक, नवाचार और अनुसंधान में सक्रिय योगदान दे रहे हैं। वे अंतरराष्ट्रीय छात्रवृत्ति, स्टार्टअप इकोसिस्टम और डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से वैश्विक शिक्षा और कौशल विकास में भाग ले रहे हैं। इसके साथ ही, आईटी, सेवा क्षेत्र और वैश्विक कंपनियों में उनकी दक्षता और नेतृत्व क्षमता अर्थव्यवस्था में भारत की हिस्सेदारी बढ़ा रही है। सांस्कृतिक और सामाजिक क्षेत्र में भी युवा भारत की पहचान मजबूत कर रहे हैं। डिजिटल मीडिया और सोशल प्लेटफॉर्म के माध्यम से वैश्विक स्तर पर अपनी आवाज पहुँचा रहे हैं। साथ ही, जलवायु परिवर्तन, स्वच्छ ऊर्जा और सामाजिक असमानता जैसे वैश्विक मुद्दों के समाधान में युवा नेतृत्व और नवाचार प्रस्तुत कर रहे हैं, और संयुक्त राष्ट्र, अंतरराष्ट्रीय NGO एवं अन्य वैश्विक संगठनों में सक्रिय भागीदारी दिखा रहे हैं। इस प्रकार, भारतीय युवा वैश्विक मंच पर भारत के विकास और प्रभाव को मजबूती से आगे बढ़ा रहे हैं।

6. चुनौतियाँ और समाधान :

यद्यपि युवा भारत के विकास का महत्वपूर्ण आधार हैं, फिर भी उनके सामने कई सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक चुनौतियाँ मौजूद हैं। बेरोजगारी सबसे बड़ी समस्या है। आर्थिक सर्वेक्षण 2022–23 के अनुसार, भारत में युवा बेरोजगारी दर लगभग 23 प्रतिशत है, जो देश के आर्थिक विकास को प्रभावित करती है। शिक्षा में असमानता और कौशल की कमी भी एक गंभीर चुनौती है। विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों और पिछड़े राज्यों में युवाओं को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और प्रशिक्षण के अवसर सीमित रूप में उपलब्ध हैं। राष्ट्रीय युवा नीति 2014 में इस असमानता को दूर करने के लिए शिक्षा और कौशल विकास पर विशेष ध्यान देने का सुझाव दिया गया है।[12]

सामाजिक समस्याओं में नशे की प्रवृत्ति, अपराध और राजनीतिक उदासीनता भी प्रमुख हैं। डॉ. योगेश मिश्र अपनी पुस्तक युवा और सामाजिक बदलाव में लिखते हैं कि "जब युवा अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूक होते हैं, तो सामाजिक बुराइयाँ और नकारात्मक प्रवृत्तियाँ कम होती हैं।[13]

इन चुनौतियों के समाधान के लिए विभिन्न उपाय अपनाए जा सकते हैं। बेरोजगारी कम करने के लिए कौशल विकास कार्यक्रम, स्टार्टअप प्रोत्साहन और डिजिटल उद्यमिता को बढ़ावा दिया जा सकता है। शिक्षा में समानता लाने के लिए ग्रामीण शिक्षा केंद्र, ई–लर्निंग और छात्रवृत्ति योजनाओं का विस्तार आवश्यक है। सामाजिक और राजनीतिक भागीदारी बढ़ाने के लिए युवाओं को जागरूकता कार्यक्रम और नेतृत्व प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए। प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (PMKVY) और डिजिटल इंडिया अभियान जैसी योजनाएँ इसका उदाहरण हैं।[14]

इस प्रकार, यदि युवाओं की ऊर्जा और क्षमता को सही दिशा में लगाकर शिक्षा, कौशल, रोजगार और सामाजिक भागीदारी के अवसर दिए जाएँ तो वे भारत को विकसित राष्ट्र बनाने में निर्णायक भूमिका निभा सकते हैं।

7. निष्कर्ष :

भारत के विकास में युवा वर्ग का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस शोध–पत्र में हमने देखा कि युवा केवल देश की आबादी का सबसे बड़ा हिस्सा ही नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में सक्रिय भूमिका निभाते हैं। सामाजिक क्षेत्र में युवा शिक्षा, स्वास्थ्य, लैंगिक समानता और सामाजिक सुधार के माध्यम से समाज को सकारात्मक दिशा दे रहे हैं। आर्थिक क्षेत्र में युवा नवाचार, स्टार्टअप और कौशल आधारित रोजगार के माध्यम से देश की आर्थिक वृद्धि में योगदान कर रहे हैं। राजनीतिक क्षेत्र में युवाओं की भागीदारी लोकतंत्र को मजबूत बनाती है और नीति निर्माण में नई सोच लाती है। सामाजिक–सांस्कृतिक क्षेत्र में वे परंपराओं को जीवित रखते हुए आधुनिकता को भी स्वीकार कर रहे हैं। शिक्षा और कौशल विकास में उनकी सक्रिय भागीदारी देश को ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था की दिशा में आगे बढ़ा रही है। हालाँकि, युवाओं के सामने कई चुनौतियाँ भी मौजूद हैं, जैसे बेरोजगारी, शिक्षा में असमानता, नशा और राजनीतिक उदासीनता। लेकिन यदि सरकार, समाज और परिवारों द्वारा उन्हें सही दिशा, अवसर और प्रशिक्षण दिया जाए, तो ये सभी समस्याएँ कम की जा सकती हैं। प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (PMKVY), डिजिटल इंडिया अभियान और राष्ट्रीय युवा नीति जैसी योजनाएँ युवाओं को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। अंत में यह स्पष्ट होता है कि भारत का भविष्य युवा वर्ग की सोच, क्षमता और भागीदारी पर निर्भर है। यदि युवाओं की ऊर्जा और प्रतिभा को सही दिशा में लगाया जाए, तो भारत न केवल सामाजिक और आर्थिक रूप से सशक्त होगा, बल्कि वैश्विक स्तर पर भी एक विकसित और सम्मानित राष्ट्र के रूप में उभर सकता है। इसलिए यह आवश्यक है कि समाज, सरकार और शैक्षणिक संस्थान मिलकर युवाओं को विभिन्न क्षेत्रों में समान अवसर प्रदान कर देश के विकास में उनकी जिमेदारी को बढ़ाये।

संदर्भ :

1. भारत सरकार, युवा कार्य एवं खेल मंत्रालय. राष्ट्रीय युवा नीति. नई दिल्ली : युवा कार्य एवं खेल मंत्रालय, 2014.
2. राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय, वार्षिक श्रम बल सर्वेक्षण 2022–23. नई दिल्ली : सांख्यिकी एवं कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय, भारत सरकार, 2023.
3. भारत सरकार वित्त मंत्रालय. आर्थिक सर्वेक्षण 2022–23. नई दिल्ली : वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, 2023.
4. नीति आयोग. आत्मनिर्भर भारत अभियान : भारत की नई अर्थव्यवस्था की ओर, नई दिल्ली : नीति आयोग, 2020.
5. कुमार संजय. भारतीय युवा और चुनावी राजनीति : एक उभरती हुई भागीदारी. नई दिल्ली : इंडिया इन्टरनेशनल सेंटर, 2014.
6. भारत निर्वाचन आयोग. वार्षिक रिपोर्ट 2019. नई दिल्ली : भारत निर्वाचन आयोग, 2020.

7. भारत सरकार, युवा कार्य एवं खेल मंत्रालय. राष्ट्रीय युवा नीति. नई दिल्ली : युवा कार्य एवं खेल मंत्रालय, 2014.
8. सिंह, योगेन्द्र. भारतीय परम्परा का आधुनिकीकरण. नई दिल्ली : रावत प्रकाशन, 2006. ISBN 9788131600054
9. भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. नई दिल्ली : शिक्षा मंत्रालय, 2020.
10. नीति आयोग, डिजिटल इंडिया योजना : भारत में नवाचार और कौशल विकास. नई दिल्ली : नीति आयोग, 2021. ISBN 9788131600054
11. भारत सरकार, कौशल विकास और उद्यमिता मंत्रालय. प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना, वार्षिक रिपोर्ट 2022. नई दिल्ली : कौशल विकास और उद्यमिता मंत्रालय, 2022.
12. भारत सरकार, युवा कार्य एंव खेल मंत्रालय, राष्ट्रीय युवा नीति 2014 नई दिल्ली : युवा कार्य एवं खेल मंत्रालय, 2014.
13. मिश्र, योगेश. युवा और सामाजिक बदलाव, नई दिल्ली : लोकसंस्कृति प्रकाशन, 2018.
14. भारत सरकार, कौशल विकास और उद्यमिता मंत्रालय. प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (PMKVY), वार्षिक रिपोर्ट 2022. नई दिल्ली : कौशल विकास और उद्यमिता मंत्रालय, 2022.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2026 Page No. : 28-33

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

महिला सशक्तिकरण में शिक्षा की भूमिका : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

सिंधु कुमारी

शोधार्थी, स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग,

तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार।

सार :

आज भारत विकास के नित–नए कीर्तिमान स्थापित कर रहा है। वैज्ञानिक प्रगति जीवन के सभी क्षेत्रों को परिवर्तित कर हमारी पारंपरिक सांस्कृतिक मूल्यों को नवीनता प्रदान कर रही है। महिलाओं के स्थिति में सकारात्मक परिवर्तन हो रहा है परन्तु आज भी महिलाएं पुरुषों के समकक्ष नहीं हो पाई हैं। अशिक्षित होना हीं उनके विकास को बाधित करती है। शिक्षा महिलाओं को अधिकारों से अवगत करा कर अत्याचारों से लड़ने की क्षमता प्रदान करती है। जोकि जीवन के विपरीत परिस्थितियों से अनुकूलन और अस्तित्व के लिए संघर्ष सिखाती है। यह अर्थोपार्जन से आत्मनिर्भरता प्रदान कर सशक्तीकरण का बुनियाद तैयार करती है। सशक्तिकरण महिलाओं को न केवल विभिन्न कार्य क्षेत्रों में अपनी योग्यता सिद्ध करने का साहस प्रदान करती है बल्कि गरिमामयी जीवन जीने के लिए अधिकारों से अवगत भी कराती है। देश की आधी आबादी का नेतृत्व करने वाली महिलाओं के सम्पूर्ण सहयोग से हीं विकसित राष्ट्र की परिकल्पना को साकार किया जा सकता है।

प्रस्तुत शोध पत्र "महिला सशक्तिकरण में शिक्षा की भूमिका : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण" हेतु निम्नलिखित उद्देश्यों को निर्धारित किया गया है जिसमे बिहार के महिलाओं के शिक्षा, आत्मनिर्भरता और सशक्तिकरण का अध्ययन कर उनके बीच के अंतर्संबंधों को जानने का प्रयास किया गया है। यह द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त तथ्यों पर आधारित है।

कुंजी शब्द : महिलाओं की शिक्षा, महिलाओं की आत्मनिर्भरता, महिला सशक्तिकरण।

प्रस्तावना :

"नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति मातृ समोगुरुः" अर्थात इस दुनिया में विद्या के समान नेत्र नहीं है और माता के समान गुरु नहीं है। महिला अपने बच्चों के लिए प्रथम गुरु का काम करती है। अतः उनका शिक्षित होना भारत के भविष्य के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध होता है। महिला सशक्तिकरण वस्तुतः उनकी शिक्षा और आत्मनिर्भरता से विकसित होने वाली वह आत्म–शक्ति है जो उन्हे गरिमामयी जीवन प्रदान करती है।

शिक्षा का महत्व – राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के अनुसार शिक्षा से तात्पर्य मनुष्य के सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्ट

विकास से है और हर्बर्ट स्पेंसर के अनुसार शिक्षा का मतलब अंतः शक्तियों का बाह्य जीवन से समन्वय स्थापित करना है यह जन्मजात शक्तियों को विकसित कर जीवनोपयोगी ज्ञान, योग्यता और कौशल को बढ़ाती है। शिक्षा व्यक्ति को सभ्य, कर्मठ, धैर्यवान और साहसी बनाती है। यह विपरीत परिस्थितियों का सामना करने और अस्तित्व की रक्षा करने में मदद करती है। यह न केवल मनुष्यों की तमाम आवश्यकताओं की पूर्ति करती है बल्कि उसे परिवार, समाज और राष्ट्र के लिए उपयोगी भी बनाती है।

महिला शिक्षा की आवश्यकता : महिलाएँ आज भी पितृसत्तात्मकता और रुढ़िवादी विचारधाराओं के कारण शिक्षा से वंचित रह जाती है। अधिकारों के प्रति उनकी जागरूकता में कमी उनके जीवनस्तर को गंभीर क्षति पहुंचाती है परिणामस्वरूप महिलाएं गरीबी, बेरोजगारी और अत्याचारों से लड़ने में अक्षम सिद्ध होती है।

उन्हें दहेज प्रथा, यौन हिंसा, घरेलू हिंसा, बलात्कार, वेश्यावृत्ति, मानव तस्करी जैसे अनेकों सामाजिक बुराइयों से सुरक्षित रखने हेतु सख्त कानूनों के साथ साथ प्रशासनिक व्यवस्था में बदलाव लाने की आवश्यकता है ताकि वे भयमुक्त जीवन यापन कर सके। उन्हें समान पारिश्रमिक, जमीन–जायदाद में पुरुषों के समान अधिकार, पितृसत्तात्मकता से आजादी, राजनीति में भागीदारी, नीति–निर्धारण में स्थान, उनके समस्याओं का समाधान, धार्मिक–कर्मकांडों के आडम्बर से मुक्ति, लैंगिक समानता आदि प्रदान करने की आवश्यकता है। महिलाएं शिक्षा ग्रहण करके हीं अपने प्रति होने वाले इन सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, लैंगिक असमानता आदि नकारात्मक शक्तियों के प्रभाव को समझ सकेंगी और उनके विरुद्ध जागरूक हो सकेंगी। तभी उनका वास्तविक सशक्तिकरण संभव हो सकता है।

शिक्षा से आत्मनिर्भरता – वैज्ञानिक प्रगति के इस युग में प्रतिस्पर्धा ने मानव जीवन को चुनौतीपूर्ण बना दिया है। शिक्षा से रोजगार और रोजगार से अर्थोपार्जन संभव हो पाता है। शिक्षित महिला ही इस चुनौती को स्वीकार कर पाती है ऑर्थोपार्जन महिला को आर्थिक शक्ति प्रदान करती है जिससे उनका आत्मविश्वास, आत्नबल, निर्णय लेने की क्षमता आदि बढ़ जाता है और वे अपने जीवन का निर्माण स्वयं कर आत्मनिर्भर बन सकती है। आत्मनिर्भरता उन्हें शोषण व अत्याचार के खिलाफ सशक्त बनाने की क्षमता रखती है। उन्हें आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रों में और अधिक सहभागिता प्रदान करने की आवश्यकता है ताकि वे भी राष्ट्र–निर्माण का कार्य कर सकें।

महिला सशक्तिकरण – भारत के वैदिक काल में गार्गी, अपाला, मैत्रेयी जैसी अनेकों विदुषियों का उल्लेख मिलता है जिससे स्पष्ट होता है कि उस कालखंड में स्त्रियाँ और सशक्त थी। मध्यकाल में मुस्लिम आक्रमणों और उनके अत्याचारों से स्त्रियों की प्रतिरक्षा हेतु समाज में बाल–विवाह, पर्दाप्रथा, सतिप्रथा आदि कुप्रथाएं बढ़ गयी जिससे उनका जीवन नरकीय हो गया। ब्रिटिश साम्राज्य के स्थापना के बाद समाज सुधारकों ने स्त्रियों के उत्थान हेतु उनके शिक्षा की व्यवस्था की। जिससे उनके स्थिति में सुधार होना प्रारंभ हुआ। जब अंग्रेजों के शोषण से त्रस्त होकर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन आरंभ हुआ तब महात्मा गांधी के नेतृत्व में महिलाओं ने उसमें बढ़ चढ़कर भाग लिया। उनका मानना था कि जब तक भारत की महिलाएँ सार्वजनिक जीवन में हिस्सा नहीं लेंगी तब तक देश तरक्की नहीं कर सकता। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने लड़कियों को शिक्षित करने के लिये व्यापक योजनाएँ बनाई ताकि स्त्रियों के वयस्क जीवन का मजबूत आधार तैयार हो सके। महिलाएँ जोकि आधी आबादी का प्रतिनिधित्व करती हैं उनके सहयोग के वगैर विकसित राष्ट्र के निर्माण का लक्ष्य पूर्ण नहीं हो

सकती है। भारतीय संविधान द्वारा समानता का अधिकार को सुनिश्चित करके महिलाओं को सशक्त बनाने का प्रयास किया गया। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने समाजिक जागृति के लिए महिलाओं के महत्व को बताते हुए कहा था कि 'हमारे समाज में लोगों को जगाने के लिए सभी महिलाओं को जागना जरूरी है'।

ऐतिहासिक रूप से भारत का सबसे विकसित गणराज्य होने के बावजूद स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बिहार घोर राजनीतिक उपेक्षाओं, वर्ग–संघर्ष अशिक्षा आदि के चलते सबसे पिछड़ा राज्य बन गया और विशेषकर महिलाओं की स्थिति और भी दयनीय हो गई। परन्तु वर्तमान सरकार द्वारा महिला उत्थान के कई योजनाओं से महिलाओं के शिक्षा, आत्मनिर्भरता और सशक्तिकरण में सुधार हुआ।

महिला–सशक्तिकरण हेतु बिहार के महिलाओं की शिक्षा और उनकी आत्मनिर्भरता की भूमिका को आंकने लिए निम्नलिखित उद्देश्यों को निर्धारित किया गया है, ताकि शिक्षा से सशक्तीकरण के बीच अंतर्संबंधों को निर्धारित किया जा सके।

उद्देश्य :

1. बिहार में महिलाओं के वर्तमान शैक्षिक स्तर का अध्ययन करना।
2. बिहार में महिलाओं के आत्मनिर्भरता का अध्ययन करना।
3. बिहार में महिलाओं के सशक्तिकरण का अध्ययन करना।

अध्ययन विधि :

प्रस्तुत शोध द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त तथ्यों पर आधारित है जिसमे समाचार पत्र, पत्रिका, इंटरनेट, पुस्तक, जनगणना रिपोर्ट, बिहार सरकार के रिपोर्ट आदि से लिया गया है।

उद्देश्य से संबंधित तथ्य, विश्लेषण और निष्कर्ष :

बिहार में महिलाओं की वर्तमान शैक्षणिक स्थिति :

बिहार में महिलाओं की वर्तमान शैक्षणिक स्थिति को आँकने हेतु पुरुषों की तुलना में महिलाओं की साक्षरता दर, मिडिल स्कूलों में छात्रों की तुलना में छात्राओं की संख्या, स्नातक पास लड़कियों में बिहार ग्रैजुएशन स्कॉलरशिप, आदि के तथ्यों का अध्ययन किया गया है।

आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण (PLFS) 2023–24 के अनुसार बिहार के अनुमानित कुल साक्षरता दर लगभग 74.3% है जिसमें पुरुष साक्षरता दर 82.3% और महिला साक्षरता दर 66.1% है जबकि जनगणना 2011 के अनुसार कुल साक्षरता दर 61.80% थी जिसमें पुरुष 71.20% और महिला 51.50% थी अर्थात महिलाओं का साक्षरता दर पुरुषों की अपेक्षा बहुत कम है।

बिहार के स्कूलों में कक्षा 1 से 8 तक की पढ़ाई कर रहे छात्रों में लड़कियाँ 50.8% है जबकि लड़के 49.2% है, अर्थात कक्षा 1 से 8 तक लड़कियों में शिक्षा के प्रति अभिरुचि बढ़ी है जोकि सरकार द्वारा लाए गए विभिन्न योजनाओं का सकारात्मक परिणाम है। इसी प्रकार 12वीं में भी लड़के एवं लड़कियों के बीच बराबरी का कड़ी प्रतिस्पर्धा चल रही है।

आर्थिक कारणों से उच्च शिक्षा ग्रहण की प्रक्रिया बाधित न हो इसके लिए 50000 बिहार ग्रैजुएशन स्कॉलरशिप स्नातक पास लड़कियों को प्रोत्साहन राशि के रूप में प्रदान की गई जो कि नारी शिक्षा के प्रति सरकार की प्रतिबद्धता को प्रदर्शित करती है ताकि स्नातक पास लड़कियाँ अधिकाधिक रोजगार पा सके।

वर्तमान बिहार मे महिलाओं के आत्मनिर्भरता की स्थिति :-

शिक्षा ग्रहण करने का मुख्य उद्देश्य भविष्य में बेहतर नौकरी–पेशा अपनाकर अर्थोपार्जन करना है ताकि आत्मनिर्भरता प्राप्त हो सके। वर्तमान बिहार मे महिलाओं के आत्मनिर्भरता की स्थिति जानने हेतु स्वयं सहायता समूह, राज्य के बजट में हिस्सेदारी, सकल राज्य घरेलू उत्पाद में हिस्सेदारी, कार्यबल में भागीदारी आदि तथ्यों का अध्ययन किया गया है।

बिहार में 2,198.4 हजार महिला स्वयं सहायता समूह को रू. 46.9 हजार करोड़ का संचित ऋण प्रदान कर उनके रोजगार को बढ़ावा दिया गया। वित्तीय वर्ष 2024–25 तक कुल जमा राशि रू. 5.27 लाख करोड़ थी, जिसमें से रू. 2.97 लाख करोड़ ऋण के रूप में वितरित किया गया और ऋण–जमा अनुपात 56.3% रहा। इन तथ्यों से स्पष्ट होता है कि महिलाओं के लिए रोजगार को बढ़ावा देकर आत्मनिर्भरता की स्थिति को सुधारने का भरपूर प्रयास किया गया है और ऋण जमा अनुपात उनके सकारात्मक विकास को प्रदर्शित करती है।

महिलाओं पर वास्तविक व्यय, 2022–23 में 41864 करोड़ रुपये से बढ़कर 2023 से 24 में 75,691 करोड़ हो गया एवं राज्य के बजट में महिलाओं की हिस्सेदारी 18.05% से बढ़कर 30.03% हो गई है। 12 प्रतिशत की वृद्धि बताती है कि उनके आत्मनिर्भरता की स्थिति को सुधारने पर भरपूर ध्यान दिया गया है।

सकल राज्य घरेलू उत्पाद में महिलाओं की हिस्सेदारी 2017–18 में 2.97% से बढ़कर 2022–23 में 5.57% हो गई जोकि उनके आत्मनिर्भरता के बढ़ने का संकेत है। वित्त मंत्री द्वारा प्रस्तुत 28 फरवरी 2025 को विधानसभा में प्रस्तुत आर्थिक सर्वेक्षण रिपोर्ट 2024–25 के अनुसार 15 से 59 वर्ष के बीच महिला कार्यबल की भागीदारी 2011–12 में 9.0% से बढ़कर 2023–24 में 32.0% हो गई है। यहाँ 23.0 प्रतिशत की वृद्धि बताती है कि उनके आत्मनिर्भरता की स्थिति मजबूत हुई है और लिंग–अंतर कम हुई है। यह उनके सकारात्मक विकास को प्रदर्शित करती है।

वर्तमान बिहार मे महिलाओं के सशक्तिकरण की स्थिति :-

न्यायपालिका, कार्यपालिका, विधायिका आदि प्रशासनिक और अधिकारिक क्षेत्रों में पदस्थापित महिलाओं के द्वारा लिए गए निर्णयों का सामान्य महिलाओं पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। अतः महिला सशक्तिकरण के आकलन हेतु इन क्षेत्रों में उनके भागीदारी को आधार बनाकर इससे संबंधित तथ्यों को संग्रहित कर उसका अध्ययन किया गया है।

वर्तमान में बिहार के उच्च न्यायालय में आवश्यक जजों की संख्या 53 है जिसमें मात्र 35 जज कार्यरत हैं। जिसमें 34 जज पुरुष हैं एवं 1 महिला जज है। साथ हीं बिहार स्टेट बार काउंसिल में चयनित 25 सदस्यों में पुरुष वकीलों की संख्या 23 है जबकि महिला वकीलों की संख्या मात्र 2 है। न्याय प्रणाली में महिलाओं की नगण्य संख्या न्याय के क्षेत्रों में नारी सशक्तिकरण को नकार रही है।

अब बिहार पुलिस में कार्यरत महिलाओं की संख्या करीब 33 हजार से अधिक हो गई है और उनमें से 223 महिला अधिकारी थाना प्रभारी या अतिरिक्त थाना प्रभारी के रूप में तैनात हैं। बिहार सरकार के द्वारा 2013 से पुलिस में 35% आरक्षण दिए जाने के कारण आज राज्य पुलिस बल में महिलाओं की संख्या देश में सभी राज्यों से सबसे अधिक है जो की महिला सशक्तिकरण के लिए सकारात्मक प्रयास दर्शाती है।

बिहार के पंचायतों में 3585 महिला मुखिया, नगर परिषदों में 1,455 महिला पार्षद, नगर पंचायतों में 1,160

महिला पार्षद और 89 महिला मुख्य पार्षद चुनी गईं हैं। इससे ज्ञात होता है कि बिहार के पंचायतों में 50% आरक्षण के बदौलत महिलाओं का राजनीतिक सशक्तिकरण हुआ है।

बिहार विधानसभा में कुल 243 विधायकों में पुरुषों की संख्या 214 और महिलाओं की संख्या मात्र 29 है और बिहार सरकार में पुरुष मंत्रियों की संख्या 30 और महिला मंत्रियों की संख्या केवल 5 है। इससे ज्ञात होता है कि बिहार विधानसभा में महिलाओं का राजनीतिक सशक्तीकरण पुरुषों की तुलना में बहुत ही पिछड़ा हुआ है।

निष्कर्ष :

महिलाओं के शैक्षणिक स्तर से संबंधित तथ्यों से स्पष्ट होता है कि बेटियों को पढ़ाने के क्षेत्र में बिहार ने प्रगति की है इससे अधिकाधिक लड़कियां शिक्षा ग्रहण कर आत्मनिर्भर और सशक्त हो सकेंगी।

आत्मनिर्भरता से संबंधित तथ्यों से स्पष्ट होता है कि बिहार के महिलाओं में बेरोजगारी अधिक होने से उनकी आत्मनिर्भरता की स्थिति दयनीय बनी हुई है जबकि स्वयं सहायता समूह को ऋण प्रदान कर महिला रोजगार को बढ़ाकर आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास किया गया है। सरकार ने महिलाओं पर वास्तविक व्यय में वृद्धि की है ताकि आत्मनिर्भरता की स्थिति सुधर सके। सकल राज्य घरेलू उत्पाद और कार्यबल में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है जिससे उनके आत्मनिर्भरता की स्थिति मजबूत हुई है और लिंग–अंतर भी कम हुआ है।

सशक्तिकरण से संबंधित तथ्यों से स्पष्ट होता है कि बिहार में महिला जजों, महिला वकीलों, महिला जिलाधिकारियों, महिला विधायकों, राज्य में महिला मंत्रियों, महिला सांसदों, महिला केंद्रीय मंत्रियों की संख्या नगण्य है जो कि नारी सशक्तीकरण में बाधा सिद्ध कर रही है।

आरक्षण से पुलिस बल में कार्यरत महिलाओं और महिला थानों की संख्या में सुधार हुआ है।

पंचायती राज के अंतर्गत महिला मुखियाओं, महिला पार्षदों, महिला मुख्य पार्षदों की संख्या में वृद्धि से सशक्तिकरण सिद्ध होती है।

अर्थात् महिलाओं के शैक्षणिक स्थिति सुधरी है परिणामस्वरुप आत्मनिर्भरता की स्थिति में भी कुछ सुधार हुआ है इन्हीं सुधारों के बदौलत कुछ क्षेत्रों में ही सही महिलाओं का सशक्तिकरण भी हुआ है लेकिन और अधिक सकारात्मक प्रयास के आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. कुमार, राधा (2002). स्त्री संघर्ष का इतिहास. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. गांधी, मोहनदास करमचंद. नई तालीम (Basic Education). नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद।
3. Malhotra, A., Schuler, S. R., & Boender, C. (2002). Measuring Women's Empowerment as a Variable in International Development.
4. Ministry of Education, Government of India. Unified District Information System for Education Plus (UDISE+) Annual Report 2023–24.
5. Ministry of Statistics and Programme Implementation (MoSPI). Periodic Labour Force Survey (PLFS) Annual Report 2023–24.
6. Government of Bihar. Economic Survey 2024–25.

7. Government of Bihar. Bihar Budget Documents 2024–25.
8. Bihar State Higher Education Council. Annual Report.
9. Reserve Bank of India. Report on Trend and Progress of Banking in India 2024, (महिला स्वयं सहायता समूह एवं वित्तीय समावेशन संबंधी आँकड़े).
10. Desai, Neera & Krishnaraj, Maithreyi (1987). Women and Society in India. Ajanta Publications.
11. Bihar Police. Annual Administrative Report (महिला पुलिस एवं आरक्षण संबंधी आँकड़े).
12. Bihar State Election Commission. Panchayat Election Statistical Report.
13. बिहार सरकार. Citizen Portal एवं विभिन्न विभागीय प्रतिवेदन।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2026 Page No. : 34-37

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

गांधीवादी सिद्धांतो के सच्चे प्रहरी : आचार्य जे. बी. कृपलानी

पंकज कुमार

शोध अध्येता, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

डॉ. अनामिका

सहायक प्रोफेसर, डॉ. राम मनोहर लोहिया स्मारक महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

(बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर)

सारांश :

आचार्य जे. बी. कृपलानी भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के उन प्रमुख नेताओं में थे, जिन्होंने महात्मा गांधी के सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, स्वराज, साधन की शुद्धता और सामाजिक समानता जैसे सिद्धांतों को अपने राजनीतिक एवं सार्वजनिक जीवन में अपनाया। उनका मूल नाम जीवतराम भगवानदास कृपलानी था। उनका जन्म 11 नवंबर 1888 को हुआ और 19 मार्च 1982 को उनका निधन हुआ। 1917 के चंपारण सत्याग्रह के दौरान उनका गांधीजी से निकट संपर्क स्थापित हुआ, जिसने उनके राजनीतिक जीवन को गहराई से प्रभावित किया। कृपलानी केवल गांधीजी के अनुयायी नहीं थे, बल्कि गांधीवादी चिंतन के गंभीर व्याख्याता भी थे। उन्होंने गांध के जीवन और विचारों पर 'Gandhi : His Life and Thought' जैसी महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी।

मुख्य शब्द : भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन, अहिंसा, सत्याग्रह, स्वराज, सामाजिक समानता।

परिचर्चा :

आचार्य जीवतराम भगवानदास कृपलानी की जयंती प्रत्येक वर्ष 11 नवंबर को मनाई जाती है। आचार्य कृपलानी का जन्म हैदराबाद (सिंध, अब पाकिस्तान में) वर्ष 1888 में हुआ था, वे एक प्रमुख सांसद और सामाजिक न्याय के योद्धा थे। उन्होंने विकेंद्रीकृत औद्योगिकरण, ग्रामीण क्षेत्रों के विकास तथा लघु एवं कुटीर उद्योगों में रोजगार का पुरजोर समर्थन किया। स्वतंत्रता आंदोलन में भूमिका महात्मा गांधी के दर्शन से गहराई से प्रेरित थे। कृपलानी ने से चंपारण सत्याग्रह (1917), खेड़ा सत्याग्रह (1918), अहमदाबाद मिल हड़ताल (1918) और नमक सत्याग्रह (1930) जैसे विभिन्न आंदोलनों में सक्रिय रूप से भाग लिया। 1920 के दशक में कांग्रेस पार्टी में शामिल हुए और वर्ष 1946 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष बने। कृपलानी ने संविधान सभा के सदस्य और मौलिक अधिकार उप–समिति के अध्यक्ष के रूप में कार्य किया। स्वतंत्रता के बाद उन्होंने कृषक मजदूर प्रजा पार्टी (1951) का गठन किया, जिसका प्रजा सोशलिस्ट पार्टी में विलय हो गया और बाद में वे संसद के एक स्वतंत्र सदस्य बन गए। उन्होंने अपनी आत्मकथा माई टाइम्स (My Times) लिखी और साप्ताहिक पत्रिका विजिल का संचालन किया। उनकी मृत्यु 19 मार्च 1982 को हुआ था।

आचार्य कृपलानी बचपन से ही थोड़ा विद्रोही रहे है। घर में विद्रोह, पाठशाला में विद्रोह। शिक्षकों के साथ भी उनके कई बार झगड़े हुए। दो बार तो उन्हें कॉलेज से निकाल दिया गया था। नौकरियां बदलनी पड़ी थी। इतना ही नहीं प्रांत भी बदलने पड़े थे। वे अपने मित्रों को भी कष्ट देते थे, शत्रु की तो कोई बात ही नहीं। इसी कारण उन्हें कोई अपने पास नहीं रखता। आजकल क्रांति की बात खूब होती है जहां जाओ, वहां 'इंकलाब जिंदाबाद' की आवाज सुनाई देती है। परंतु उस जमाने में इंकलाब पुकारने वाला कोई नहीं था। मरने वाले थोड़े से थे। शायद उन थोड़ा में एक ये भी थे। कृपलानी को अहिंसा वगैरह में कोई भरोसा न था। पढ़ाई पूरी होते ही वो अध्यापक बन गये। वह क्यों? दूसरों पर क्रांति की रंगत लगाने के लिए! सरकार उन्हें वेतन देती थी और वह सरकार के विरुद्ध बगावत फैलाता था। ऐसे समय में जब बापूजी आए, तब वे बिहार के मुजफ्फरपुर में इतिहास पढ़ाते थे। बापूजी सन् 1914 में अफ्रीका से भारत आए और अपने लड़कों यानी अपने आश्रम के लड़कों को लेकर कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शांति निकेतन में उतरे थे। तब तक वे 'महात्मा' की उपाधि से विभूषित नहीं हुए थे। उन दिनों वे मिस्टर गांधी कहलाते थे। फिर भी वे एक विचित्र प्राणी तो थे ही। विचित्र प्राणी को देखने का किसका मन नहीं होता? वो भी कौतुहलवश उनसे मिलने निकला। उनका शरीर इतना छोटा और दुबला कि किसी को यह नहीं लग सकता था कि यहां कोई महापुरुष बैठा है। लेकिन दो चीजें उनको बाकी सबसे अलग कर देती थी। उनकी वाणी और आंखें। उनकी आंखों में कोई अद्‌भुत ज्योति थी। उनकी वाणी में अजब शक्ति। उनकी आवाज भारी नहीं थी तो भी ऐसा मालूम होता मानो मेघ गरज रहे हों। खूब विचार–विचार कर बोल रहे हो। ऐसा लगता था कि जो कुछ वे कह रहे हैं, उसे वे करके छोड़ेंगे। ऐसी ध्वनि उनमें सुनाई देती। इसी कारण उनका धीमा और मंदगति वाला शब्द प्रवाह भी बहुत प्रबल, शक्तिशाली लगता था।

उस समय बापू की पोशाक, आहार, सब कुछ अलग था। आज जो गांधी टोपी घर–घर पर प्रख्यात हो चुकी है, वही गांधी टोपी वे उन दिनों पहना करते थे। पैर नंगे! आहार में मूंगफली। यहां आने से पहले वे फलाहार ही करते थे। यह उनका नियम था। यहां आकर देखा कि फलाहार बहुत महंगा पड़ेगा और महंगा आहार गरीब को कैसे ठीक पड़ेगा। इसलिए उन्होंने मूंगफली खाना शुरू किया। यह तो हुई उनकी बाहर की बात। अब सुनो उनके भीतर की! पहले मुलाकात में उन्होंने समझ गया कि यह आदमी जो काम के हाथ में लेगा, उसे पूरा किए बिना छोड़ेगा नहीं। या तो काम को समाप्त कर डालेगा, या अपने को ही समाप्त कर डालेगा। इसके अलावा उस समय उनमें एक दूसरी शक्ति भी कृपलानी को दिखाई पड़ी। वह है लोगों को अपनी ओर खींच लेने की शक्ति। इस आकर्षण का कारण यह था कि यह आदमी सर्वथा प्रमाणिक था। ऐसी एकाग्रता, दृढ़ता, प्रमाणिकता तथा विचारवत्ता वाला आदमी उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था। महापुरुष उन्होंने अनेक देखे थे, परंतु उनकी जैसी शक्ति उन्होंने कही भी नहीं देखी थी। उस समय के बहुत बड़े–बड़े नायकों ने देश की गरीबी देश की बड़ी–बड़ी पुस्तकें लिखी थीं, परंतु गरीबों क्या चीज है, यह भी नहीं जाना था। उन लोगों ने स्वदेशी के विषय में बड़े–बड़े उत्तेजक भाषण दिए थे, परंतु स्वदेशी कपड़ा कैसा होता है, यह कभी नहीं देखा था।

इस तरह अपनी पहली मुलाकात में ही उन्होंने अपने को उनके प्रति सौंप दिया था। इसका यह अर्थ नहीं है कि बापू की सभी बातें उन्हें मान्य हैं –भई बिल्कुल नहीं! बापू जब से आए हैं, संयम की बातें करते रहते हैं। उनमें संयम है ही नहीं। इस प्रकार उनके बीच में कुछ भी मेल नहीं है। उनके जैसा विद्रोही चेला गांधी का दूसरा कोई नहीं होगा। इतना होते हुए भी उन्होंने उनकी तानाशाही मंजूर की है। इसका कारण बताता हूं।

दुनिया में तीन प्रकार के लोग होते हैं। पहले हैं, जो अपनी महत्ता और शक्ति को समझते हैं। उनमें दूसरों को ले चलने की भी शक्ति होती है। दूसरा प्रकार उन लोगों का है, जिनमें दूसरों को चलाने की शक्ति नहीं होती। वे स्वयं मानो अनुयायी होने के लिए नहीं बनाए गए होते हैं। इसलिए वे लोग दूसरे की महत्ता और शक्ति को समझ सकते हैं, स्वीकार कर सकते है तथा स्वीकारर कर लेते हैं। तीसरे प्रकार के लोग वे होते हैं, महत्ता और शक्ति नहीं होती। वे एक दूसरों की महत्ता और क्षमता को समझ नहीं सकते, स्वीकार भी नहीं कर सकते। ये लोग कुछ नहीं कर सकते। इनकी हालत त्रिशंकु जैसी बड़ी विचित्र होती है। अक्सर लोग उनसे पूछते हैं कि आप हिंसा में भरोसा रखने वाले हैं और गांधी ठहरे परम अहिंसावादी! गांधीजी ब्रिटिश राज्य में श्रद्धा रखने वाले हैं और आप उसका उच्छेद करने वाले। तो आपने उनका नेतृत्व किस प्रकार स्वीकार किया? उन्होंने उस आदमी में एक शक्ति देखी है। वह है या तो काम को अंत तक पहुंचाना या अपना अंत कर देना। इसलिए उन्होंने उनको अपना नेता स्वीकार किया है। दूसरे उनमें सच्चाई है। आज वे अहिंसा का समर्थन करते हैं, परंतु जिस क्षण उनको यह समझ में आ जाएगा कि अहिंसा से कुछ सिद्ध होने वाला नहीं है, उसी समय वे हिंसा के रास्ते पर चलकर ऐसी उग्रता से लड़ेंगे, वैसा दूसरा नहीं लड़ेगा। इस एक ही चीज ने उन्हें उनके प्रति आकृष्ट किया है। इसलिए वो उनके साथ हैं। हिंसा के विषय में तो कृपलानी को विश्वास हो गया था कि बापू को हिंसा से डिगा देना, विचलित करना, एकदम असंभव है। उनको जिस क्षण यह लगा कि ब्रिटिश राज्य देश के कल्याण के लिए नहीं है, उसी समय उन्होंने उसके लिए ऐसी कठोर विशेषण प्रयुक्त किए हैं, जैसे लोकमान्य तिलक भी नहीं कर पाए थे। ब्रिटिश शासन को उन्होंने शैतानी राज्य कहा और यह भी इतने जोर से कि फिर तो पूरा देश उसको शैतान कहने लगा। नन्हें बच्चे भी उसे शैतान सरकार कहते तो भी उनको कोई पकड़ता नहीं था।

उनके जैसा काम करने वाला और काम लेने वाला अब तक उन्होंने नहीं देखा था। वे छोटे–छोटे कामों में भी अपना प्राण होम करने के लिए तैयार हो जाते थे। अपने प्राण हथेली पर रखकर घूमने वाला उन्होंने उन जैसा कोई दूसरा नहीं देखा। अपने प्राणों को संकट में डालकर उनको यह नहीं लगता था कि वे कोई महान त्याग कर रहे हैं। छोटे–छोटे कामों में भी वे बड़े–बड़े कामों को समया हुआ समझते थे। वे टट्टी साफ करते थे हरिजनों का काम करते थे और मानते थे कि वे देश का उद्धार कर रहे हैं। जिस काम को कुछ एक लोग 'ओल्ड डेम्स वर्क' यानी पुरानी बुढ़िया का काम कहते थे, उस चरखे में भी वे देश का उद्धार देखते थे। कोई भी छोटा काम उनको जरा भी छोटा नहीं लगता था। उसमें तो उनको स्वराज के दर्शन होते। हम लोग आत्मा में परमात्मा का दर्शन करना कहते हैं, उसी प्रकार वे उन चीजों में स्वराज के दर्शन करते। इसी कारण उनके साथ कोई प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकता था। उन्हें तो यह लगता है कि उनकी फिलासफी का एक महत्वपूर्ण अंग यह है कि उनने कहीं भी प्रतिस्पर्धा के लिए कोई जगह ही नहीं छोड़ रखी थी। तुम एक बंदूक रखोगे तो सामने वाला दो बंदूक ले आएगा। लेकिन यदि तुम अहिंसक बन जाओगे, तो बंदूक ही नहीं रखोगे तो सामने वाला तुमसे होड़ करने, लड़ने भला क्या ले आएगा?।

आचार्य जे. बी. कृपलानी का भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में विशिष्ट स्थान है। प्रारंभ में वे शिक्षक के रूप में कार्यरत रहे और शिक्षा के क्षेत्र से जुड़े रहे। चंपारण में गांधीजी के संपर्क में आने के बाद उनके जीवन की दिशा बदल गई। गांधीजी के नेतृत्व में चल रहे राष्ट्रीय आंदोलन तथा रचनात्मक कार्यक्रमों ने उन्हें अत्यधिक प्रभावित किया। बाद में वे गुजरात विद्यापीठ से जुड़े और शिक्षा को राष्ट्रनिर्माण का महत्वपूर्ण माध्यम माना।

निष्कर्ष :

आचार्य जे. बी. कृपलानी का जीवन गांधीवादी विचारों के व्यावहारिक प्रयोग और स्वतंत्र विवेक का महत्वपूर्ण उदाहरण है। उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में सत्याग्रह और अहिंसक संघर्ष को अपनाया तथा स्वतंत्र भारत में भी लोकतांत्रिक मूल्यों और नैतिक राजनीति के प्रश्न उठाए। इसलिए उन्हें केवल गांधीजी का अनुयायी कहना पर्याप्त नहीं होगाय वे गांधीवादी विचारधारा के स्वतंत्र व्याख्याकार और सक्रिय प्रयोगकर्ता भी थे। उनके जीवन से यह समझने में सहायता मिलती है कि गांधीवाद केवल स्वतंत्रता प्राप्त करने की रणनीति नहीं, बल्कि राजनीति और समाज को नैतिक आधार देने को व्यापक विचारधारा भी है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. Kendadamath G. C.; J. B. Kripalani : A Study of His Political Ideas, Ganga Kaveri Publishing House, 1992.
2. राय, रायबहादुर, आचार्य जे. बी. कृपलानी (शाश्वत विद्रोही राजनेता), नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2017.
3. कृपलानी, आचार्य जे. बी., प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2011.
4. कृपलानी, जे. बी., आंखों देखी आजादी की लड़ाई, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2023.
5. कृपलानी, आचार्य जे. बी., गांधी : एक राजनीतिक अध्ययन, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 2014.
6. कृपलानी, जे. बी., मेरा दौर : एक आत्मकथा, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2023.
7. टंडन पी. डी., आचार्य कृपलानी : एक संस्मरण, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 2015.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2026 Page No. : 38-42

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

गीतांजलि श्री की कहानियों में स्त्री–पुरुष संबंधों की अभिव्यक्ति

दीपिका श्रीमाली
शोधार्थी

भारतीय संस्कृति में स्त्री को सम्मान और पुरुष को उत्तरदायित्व का प्रतीक माना गया है। स्त्री और पुरुष समाज के दो महत्वपूर्ण आधार है। दोनों के बीच का संबंध केवल पति–पत्नी के रूप में सीमित नहीं है, बल्कि माता–पिता, भाई–बहन, मित्र, सहकर्मी के विकास में स्त्री और पुरुष में समान रूप से योगदान दिया है। इसलिए इनके संबंधों का आधार प्रेम, सम्मान, विश्वास, सहयोग और समानता होनी चाहिए।

प्राचीन भारतीय साहित्य में स्त्री को परिवार और समाज में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। वैदिक काल में महिलाओं को शिक्षा प्राप्त करने और धार्मिक कार्यों में भाग लेने के अवसर मिलते थे। वेदों में कहीं भी स्त्रियों की शिक्षा एवं वेदाध्ययन पर प्रतिबन्ध परिलक्षित नहीं होता। प्रत्युत ऋग्वेद में अनेक मन्त्रों की मन्त्र दृष्टा ऋषिकाएँ है वेद में अपाला, घोषा, रोमशा, विशारा, लोपामुद्रा, उर्वशी, मैत्रेयी, गार्गी आदि ऋषिकाओं के नाम तथा मंत्रो का दर्शन होता है। स्पष्टतः बालिकाओं का भी बालकों के समान ही उपनयन संस्कार होता था।

भारतीय परम्परा में विवाह को केवल सामाजिक समझौता नही, बल्कि एक महत्वपूर्ण संस्कार माना गया। पति–पत्नी को जीवन के सुख–दुःख में एक–दूसरे का सहयोगी समझा गया। मनुस्मृति में कहा गया है – **'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।'** अर्थात् जहाँ नारियों का सम्मान होता है वहाँ देवताओं का निवास होता है। मध्यकाल में समाज में अनेक सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों के कारण स्त्रियों की स्थिति कमजोर हुई। पर्दा प्रथा, बाल–विवाह, सती प्रथा और शिक्षा से वंचित रखने जैसी कुरीतियों ने स्त्री के जीवन को प्रभावित किया। स्त्री की भूमिका मुख्यतः परिवार और घरेलू जीवन तक सीमित कर दी गई।

आधुनिक भारत में स्त्री–पुरुष संबंधों में व्यापक परिवर्तन आया है। सामाजिक सुधार आंदोलनों ने महिलाओं की शिक्षा, विधवा–विवाह और अधिकारों के लिए आवाज उठाई। राजा राममोहन राय ने सती प्रथा के विरुद्ध संघर्ष किया। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने विधवा–विवाह और महिला शिक्षा के समर्थन में महत्वपूर्ण कार्य किया।

स्वतंत्रता आंदोलन ने भी महिलाओं को सार्वजनिक जीवन में आने का अवसर दिया। महात्मा गाँधी ने महिलाओं की भागीदारी को स्वतंत्रता आंदोलन की शक्ति बनाया। अनेक महिलाओं ने सत्याग्रह, आंदोलन और सामाजिक सेवा में सक्रिय भूमिका निभाई।

हिन्दी कथा–साहित्य में गीतांजलि श्री का नाम उन रचनाकारों में लिया जाता है जिन्होंने स्त्री जीवन को केवल पीड़ित या शोषित स्त्री की पारम्परिक छवि तक सीमित नहीं रखा। उनकी रचनाओं में स्त्री अपने अंतर्विरोधों, इच्छाओं, असुरक्षाओं, प्रेम, अकेलेपन और स्वतंत्रता की आकांक्षा के साथ उपस्थित होती है। गीतांजलि श्री के कथा–साहित्य में स्त्री–पुरुष संबंध केवल प्रेम या विवाह की कहानी नहीं हैं, बल्कि इनके माध्यम से परिवार, समाज, नैतिकता, सत्ता, देह और व्यक्ति की स्वतंत्रता जैसे प्रश्न सामने आते हैं।

उनकी रचनात्मक दृष्टि की विशेषता यह है कि वे स्त्री–पुरुष संबंधों को किसी एक निश्चित नैतिक निष्कर्ष में नहीं बाँधतीं। उनके पात्रों के संबंधों में प्रेम के साथ दूरी आकर्षण के साथ असुरक्षा, विवाह के साथ बंधन और स्वतंत्रता के साथ सामाजिक दवाव दिखाई देता है।

इसीलिए उनके यहाँ स्त्री–पुरुष संबंधों को समझने के लिए केवल प्रेम और यौन संबंधों की दृष्टि पर्याप्त नहीं है, इन्हें सामाजिक और मनोवैज्ञानिक सत्ता–संबंधों के रूप में भी देखना आवश्यक है। एक शोधपरक अध्ययन के अनुसार गीतांजलि श्री के साहित्य में स्त्री–विमर्श का स्वर आर्थिक या केवल यौन स्वतंत्रता से आगे बढ़कर विचार और निर्णय की स्वतंत्रता तक पहुंचता है। भारतीय समाज में स्त्री–पुरुष संबंध लंबे समय तक विवाह और परिवार की संस्थाओं के माध्यम से निर्धारित होते रहे है। विवाह को सामाजिक स्वीकृति का आधार माना गया और स्त्री की भूमिका को पत्नी, माँ, बहू और बेटी जैसे पारिवारिक संबंधों से परिभाषित किया गया। गीतांजलि श्री इसी व्यवस्था के भीतर स्त्री की व्यक्तिगत पहचान के प्रश्न को उठाती है।

उनके साहित्य में पुरुष और स्त्री के संबंधों में बराबरी का प्रश्न बार–बार उभरता है। पुरुष को परिवार का निर्णयकर्ता और स्त्री को उसके निर्णयों का पालन करने वाली मानने की मानसिकता पर लेखिका व्यंग्य करती है। लेकिन उनका विरोध किसी सरल पुरुष बनाम स्त्री रूप में नहीं है। वे यह दिखाती है कि पितृसत्ता केवल पुरुषों के व्यवहार में ही नहीं, बल्कि परिवार की परम्पराओं, सामाजिक नैतिकता और स्त्री के भीतर बैठी हुई धारणाओं में भी मौजूद रहती है। इसी कारण उनके पात्र पूरी तरह अच्छे या बुरे नहीं होते। वे अपने समय, वर्ग परिवार और मानसिक संस्कारो से निर्मित होते हैं। यहीं जटिलता गीतांजलि श्री के स्त्री–पुरुष संबंधों को यथार्थपरक बनाती है।

गीतांजलि श्री की कहानियों में विवाह केवल प्रेम का परिणाम नहीं, बल्कि सामाजिक संस्था के रूप में भी सामने आता है। विवाह के बाद स्त्री से अपेक्षा की जाती है कि वह पति, पंरिवार और सामाजिक प्रतिष्ठा के अनुरूप स्वंय को ढाले । पुरुष के लिए जिन स्वतंत्रताओं को सामान्य माना जाता है, वहीं स्वतंत्रताएँ स्त्री के लिए अक्सर संदेह और नैतिक प्रश्न का कारण बन जाती है।

उनकी रचनाओं में विवाह के भीत्तर मौजूद भावनात्मक दूरी भी महत्वपूर्ण है। पति–पत्नी एक ही घर में रहते हुए भी मानसिक रूप से अलग हो सकते हैं। इस स्थिति में स्त्री के लिए विवाह एक सुरक्षित संस्था के बजाय कभी–कभी अकेलेपन का दूसरा नाम बन जाता है।

माई उपन्यास जैसे कथानक में पारिवारिक संरचना के भीतर स्त्री की मौन उपस्थिति और उसकी दबाई हुई इच्छाओं को समझा जा सकता है। आलोचनात्मक अध्ययन बताते है कि यहाँ स्त्री की स्वतंत्रता को केवल आर्थिक या यौन स्वतंत्रता के रूप में नहीं, बल्कि अपने बारे में निर्णय लेने की मानसिक स्वतंत्रता के रूप में देखा गया है।

गीतांजलि श्री की रचनाओं की एक महत्वपूर्ण विशेषता स्त्री की इच्छा को मनुष्य की स्वाभाविक इच्छा के रूप में स्वीकार करना है। परम्परागत साहित्य में स्त्री की इच्छा को अक्सर त्याग, मर्यादा और परिवार की सीमाओं के भीतर प्रस्तुत किया गया। गीतांजलि श्री इस सीमाबद्धता को चुनौती देती है।

उनके पात्र प्रेम करना चाहते हैं, अपने मन के संबंध बनाना चाहते हैं और अपनी भावनाओं को समझना चाहते हैं। लेकिन समाज स्त्री की इच्छा को पुरुष की इच्छा की तरह सहज स्वीकार नहीं करता। यही तनाव उनके कथा–संसार में महत्वपूर्ण बनता है।

अनुगूंज कहानी संग्रह के संबंध में उपलब्ध विवरण में भी वैवाहिक और विवाहेतर स्त्री–पुरुष संबंधों को उनके कथा–संसार के प्रमुख विषयों में शामिल किया गया है।

यहाँ विवाहेत्तर संबंधों को केवल ष्अनैतिकष् कहकर समाप्त नहीं कर दिया जाता। लेखिका यह प्रश्न उठाती है कि किसी संबंध को नैतिक या अनैतिक घोषित करने का अधिकार किसके पास है और क्या सामाजिक नैतिकता व्यक्ति की भावनात्मक वास्तविक को समझ पाती है। स्त्री जब विवाह के बाहर किसी पुरुष से संबंध स्थापित करती है तो समाज की निगाह तुरंत चरित्र पर पड़ती है। पुरुष के लिए वही व्यवहार कई बार अधिक सहजता से स्वीकार कर लिया जाता हैं।

इस दोहरे नैतिक मानदंड को गीतांजलि श्री की रचनाएं प्रश्नांकित करती है। इस दृष्टि से उनके यहाँ विवाहेतर संबंध केवल प्रेम–कथा नहीं बल्कि स्त्री की स्वायत्ता और सामाजिक नैतिकता के संघर्ष का क्षेत्र बन जाते हैं। स्त्री पुरुष संबंधों को समझने में देह का प्रश्न भी महत्वपूर्ण है। पितृसत्तात्मक समाज स्त्री की देह को परिवार की प्रतिष्ठा, पुरूष के अधिकार और सामाजिक मर्यादा से जोड़ता रहा है। गीतांजलि श्री इस व्यवस्था के भीतर स्त्री की अपनी देह के प्रति चेतना को स्थान देती है उनके यहां स्त्री केवल पुरुष की दृष्टि से देखी जाने वाली देह नहीं है। वह अपनी इच्छा, आकर्षण और संवेदना वाली व्यक्ति है। यही कारण कि उनकी रचनाओं में देह और मन को अलग–अलग करके नहीं देखा जा सकता।

गीतांजलि श्री की दृष्टि में संबंध केवल भावनात्मक नहीं होते, उनमें सत्ता भी काम करती है। परिवार में किसकी बात मानी जाएगी? कौन निर्णय लेंगा? किसे बाहर जाने की स्वतंत्रता होगी? किसके संबंधों को स्वीकार किया जाएगा? इन प्रश्नों के माध्यम से स्त्री–पुरुष संबंधों में सत्ता की संरचना दिखाई देती है।

रेत समाधि उपन्यास में भी परिवार के भीतर स्त्री की स्थिति और पुरुष–सत्ता के प्रश्न महत्वपूर्ण उठाये गए हैं उपन्यास पर किए गए आलोचनात्मक अध्ययनों में स्त्री की स्वतंत्रता, पितृसत्ता, पारिवारिक मूल्यों और सामाजिक नियंत्रण के प्रश्नों पर विशेष ध्यान दिया गया है।

यहाँ स्त्री की मुक्ति केवल घर से बाहर निकलने में नहीं है। वास्तविक मुक्ति अपने बारे में स्वंय निर्णय लेने और अपनी पहचान को स्वीकार करने में है।

गीतांजलि श्री की स्त्रियाँ हमेशा मुखर होकर विद्रोह नहीं करती। कई बार उनका मौन ही प्रतिरोध का माध्यम बनता है। 'माई' उपन्यास के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि स्त्रियाँ कम बोलकर भी अपनी उपस्थिति दर्ज करा सकती है।

यह बिन्दु विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि स्त्री के प्रतिरोध की केवल नारे, संघर्ष या घर छोड़ने से

जोड़ना उचित नहीं। भारतीय पारिवारिक संरचना में स्त्री कभी मौन रहकर, कभी अपनी पसंद का निर्णय लेकर, कभी परम्परा को भीतर से बदलकर और कभी अपनी अगली पीढ़ी को अलग संस्कार देकर भी प्रतिरोध करती है।

गीतांजलि श्री के साहित्य में स्त्री–पुरुष संबंधों को समझने के लिए स्त्री–स्त्री संबंध भी बहुत महत्वपूर्ण है। स्त्रियाँ एक–दूसरे की पीड़ा, अकेलेपन और इच्छाओं को अधिक गहराई से समझ सकती है। इसलिए उनके साहित्य में स्त्री–मित्रता एक वैकल्पिक भावनात्मक संसार का निर्माण करती है। 'तिरोहित उपन्यास में चाच्चों और लालना के संबंध को लेकर आलोचना में स्त्री की इच्छा दोस्ती, गोपनीयता और सामाजिक निगाह जैसे प्रश्नों पर चर्चा हुई है। The Roof Beneath Their feet के संबंध में प्रकाशित समीक्षाएँ भी बताती है कि छत स्त्रियों के लिए सामाजिक नियंत्रण से कुछ समय के लिए बाहर निकलने, इच्छा और निजी संबंधों को जीने का स्थान बन जाती है। इस प्रकार स्त्री–स्त्री संबंध पुरुष–केन्द्रित सामाजिक व्यवस्था के बाहर एक वैकल्पिक आत्मीयता का संसार रचते हैं।

गीतांजलि श्री के साहित्य में पुरुष पात्रों को एकरेखीय खलनायक के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया है। वे भी सामाजिक संस्कारों और पितृसत्तात्मक व्यवस्था के उत्पाद है। फिर भी पुरुष को प्राप्त सामाजिक विशेषाधिकार और सत्ता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

'रेत समाधि उपन्यास में भाई बडे और बहन बेटी के संबंधों के माध्यम से भी पुरुष सत्ता और स्त्री की स्वतंत्रता का तनाव सामने आता है आलोचनात्मक लेखन में यह उल्लेख मिलता है। कि भाई बहन की स्वतन्त्र जीवन–शैली और उसके निर्णयों को लेकर पितृसत्तात्मक दृष्टि रखता जबकि बहन उसके संरक्षणवादी रवैये से असहज होती है।

इस प्रकार पुरुष की सत्ता केवल पति–पत्नी के संबंध तक सीमित नहीं है वह भाई–बहन, पिता–पुत्री और परिवार के अन्य संबंधों में भी दिखाई दे सकती है। गीतांजलि श्री की कहानियों में स्त्री–पुरुष संबंध बहुआयामी और जटिल रूप में सामने आते हैं। इन संबंधों में प्रेम है आकर्षण है, विवाह है, परिवार है, देह है, अकेलापन है और सामाजिक नैतिकता का दबाव भी है। लेकिन इन सबसे ऊपर व्यक्ति की स्वतंत्रता और पहचान का प्रश्न है। उनकी स्त्रियाँ केवल पुरुष के अत्याचार की शिकार नहीं है, वे सोचती है, चाहती है, निर्णय लेती है, विरोधी करती है और अपने लिए नए रास्ते खोजती है। वे पारम्परिक स्त्री–छवि को चुनौती देती है, लेकिन उनका संघर्ष हमेशा प्रत्यक्ष और आक्रामक नहीं होता। कई बार मौन, स्मृति, मित्रता और अपने निर्णय पर कायम रहना भी उनका प्रतिरोध बन जाता है।

इस दृष्टि से गीतांजलि श्री का स्त्री–विमर्श पुरुष–विरोधी विमर्श नहींय बल्कि, समानता, आत्मनिर्णय और मानवीय संबंधों की पुन व्याख्या का विमर्श हैं। वे यह प्रश्न उठाती है कि स्त्री को केवल पत्नी, मां, बेटी या बहू के रूप में क्यों देखा जाए? क्या वह अपनी इच्छाओं और अपनी स्वतंत्र पहचान के साथ एक पूर्ण मनुष्य नहीं है? अतः कहा जा सकता है कि गीतांजलि श्री की कहानियों में स्त्री–पुरुष संबंध भारतीय समाज में बदलते हुए पारिवारिक और लैंगिक संबंधों का दर्पण है। उनके कथा साहित्य का महत्व इस बात में हैं कि वे संबंधों को सरल नैतिक श्रेणियों में बाँटने के बजाय उनकी जटिलता अंतर्विरोध और मानवीय संवेदना को सामने लाती है।

संदर्भ सूची –

1. गीतांजलि श्री – अनुगूंज कहानी संग्रह, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या–76
2. गीतांजलि भी – तिरोहित उपन्यास, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या–92
3. गीतांजति श्री – रेत समाधि उपन्यास, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या–98
4. गीतांजलि श्री – माई उपन्यास, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या–120

पता :

दीपिका श्रीमाली पुत्री श्री कुंदन लाल श्रीमाली

14 ,बाबेल स्ट्रीट, रावजी की हाटा,

उदयपुर (राजस्थान) 313001

मो. न.–9680784760

ईमेल–Shrimalideepika4489@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2026 Page No. : 43-48

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

'बंद दरवाजे के पीछे' : माता–पिता और किशोरों के बीच विश्वास, संवाद और स्वतंत्रता का अध्ययन

अवनी मित्तल, छात्रा, कक्षा XII
श्रीमती वैशाली श्रीवास्तव, हिंदी शिक्षिका
सिंधिया कन्या विद्यालय, ग्वालियर, मध्य प्रदेश।

1. सारांश :

'बंद दरवाजे के पीछे' एक ऐसी कहानी है, जिसमें माता–पिता और बच्चों के बीच के रिश्ते, विश्वास, बातचीत और स्वतंत्रता को दिखाया गया है। कहानी में सिमरत कौर और उनके पति अपनी 18 वर्षीय बेटी लवली को उसके जन्मदिन पर अचानक मिलने के लिए लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी पहुँचते हैं। वे बेटी के कमरे के बाहर जाकर दरवाजा खटखटाते हैं, लेकिन दरवाजा तुरंत नहीं खुलता। लगभग तीस मिनट बाद दरवाजा खुलता है और कमरे के अंदर सब कुछ सामान्य दिखाई देता है।

इसी बीच पास का एक व्यक्ति पूछता है कि क्या उन्होंने किसी व्यक्ति को पीछे की खिड़की से कूदते हुए देखा था और वह व्यक्ति घायल भी हुआ था। यह सुनकर माता–पिता के मन में कई सवाल उठने लगते हैं। ऐसी स्थिति में वे अपनी बेटी से सवाल करते हैं, लेकिन उस पर तुरंत कोई आरोप नहीं लगाते। पिता उससे शांत होकर सच बताने के लिए कहते हैं और माँ भी उसका हाथ पकड़कर उसे भरोसा देती है।

कहानी का मुख्य विषय किसी रहस्य को सुलझाना नहीं है, बल्कि यह समझना है कि ऐसी स्थिति में माता–पिता को किस तरह व्यवहार करना चाहिए। कहानी यह बताती है कि बच्चों की परवरिश केवल नियम बनाने और उन पर नजर रखने से नहीं होती। बच्चों को समझना, उनकी बात सुनना और उन पर विश्वास करना भी बहुत जरूरी है।

इस शोध–पत्र में कहानी के आधार पर माता–पिता की चिंता, बच्चों की स्वतंत्रता, परिवार में विश्वास और बातचीत तथा किशोरावस्था की भावनाओं को समझने का प्रयास किया गया है। कहानी यह संदेश देती है कि हर बंद दरवाजे के पीछे कोई गलत बात हो, यह जरूरी नहीं है। लेकिन यदि माता–पिता और बच्चों के बीच बातचीत और विश्वास खत्म हो जाए, तो छोटी–सी गलतफहमी भी बड़ी दूरी पैदा कर सकती है।

मूल शब्द : विश्वास, संवाद, परिवार, स्वतंत्रता, जिम्मेदारी, किशोरावस्था, माता–पिता, पारिवारिक संबंध।

2. प्रस्तावना :

परिवार हमारे जीवन का सबसे पहला और महत्वपूर्ण हिस्सा है। बच्चा अपने जीवन की बहुत–सी बातें

परिवार से ही सीखता है। वह परिवार से भाषा, व्यवहार, अच्छे और बुरे की समझ तथा रिश्तों का महत्व सीखता है। जैसे–जैसे बच्चा बड़ा होता है, उसकी सोच, पसंद और अपने फैसले लेने की क्षमता भी बढ़ने लगती है। किशोरावस्था में यह बदलाव और अधिक दिखाई देता है। इस उम्र में बच्चे अपनी पहचान बनाना चाहते हैं और अपने फैसले खुद लेना चाहते हैं। वे अपनी निजी जगह और स्वतंत्रता को भी महत्व देने लगते हैं। दूसरी ओर, माता–पिता अपने बच्चों की सुरक्षा, पढ़ाई और भविष्य को लेकर चिंतित रहते हैं।

कई बार माता–पिता की चिंता बच्चों को रोक–टोक जैसी लगती है, जबकि बच्चों की स्वतंत्रता माता–पिता को चिंता का कारण लग सकती है। यदि दोनों एक–दूसरे से खुलकर बात न करें, तो धीरे–धीरे गलतफहमियाँ पैदा हो सकती हैं और रिश्तों में दूरी बढ़ सकती है।

'बंद दरवाजे के पीछे' कहानी इसी समस्या को एक सामान्य पारिवारिक घटना के माध्यम से सामने लाती है। कहानी का बंद दरवाजा केवल कमरे का दरवाजा नहीं है, बल्कि यह बच्चे की अपनी दुनिया और माता–पिता से उसकी दूरी को भी दर्शाता है। कहानी हमें यह सोचने पर मजबूर करती है कि माता–पिता की चिंता और बच्चों की स्वतंत्रता के बीच संतुलन कैसे बनाया जा सकता है।

आज बहुत से बच्चे पढ़ाई और करियर के लिए अपने घर से दूर रहते हैं। ऐसे में माता–पिता और बच्चों के बीच विश्वास और बातचीत का महत्व और भी बढ़ जाता है। इसी कारण यह कहानी आज के समय में भी बहुत उपयोगी और प्रासंगिक दिखाई देती है।

3. लेखक परिचय और कहानी का संक्षिप्त परिचय :

इस कहानी के लेखक डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट, भिवानी, हरियाणा हैं। उपलब्ध कहानी के आधार पर कहा जा सकता है कि लेखक ने परिवार और माता–पिता तथा बच्चों के बीच बदलते संबंधों से जुड़े एक महत्वपूर्ण विषय को कहानी के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

लेखक ने कहानी में माता–पिता और बेटी दोनों की स्थिति को समझने की कोशिश की है। माता–पिता अपनी बेटी को लेकर चिंतित हैं, जबकि बेटी अपनी पढ़ाई और जीवन में आगे बढ़ रही है और अपनी स्वतंत्रता चाहती है। कहानी की खास बात यह है कि लेखक किसी एक पात्र को तुरंत सही या गलत नहीं बताते, बल्कि पाठक को पूरी स्थिति के बारे में सोचने का अवसर देते हैं।

उपलब्ध सामग्री में लेखक के जीवन, शिक्षा और अन्य रचनाओं के बारे में विस्तृत जानकारी नहीं दी गई है। इसलिए इस शोध–पत्र में लेखक का परिचय केवल उपलब्ध जानकारी के आधार पर दिया गया है।

कहानी में सिमरत कौर और उनके पति अपनी 18 वर्षीय बेटी लवली से मिलने के लिए लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी पहुँचते हैं। वे उसके जन्मदिन पर उसे अचानक खुश करना चाहते हैं। वे उसके कमरे के बाहर पहुँचकर दरवाजा खटखटाते हैं, लेकिन काफी देर तक दरवाजा नहीं खुलता। लगभग तीस मिनट बाद दरवाजा खुलता है और कमरे के अंदर सब कुछ सामान्य दिखाई देता है।

इसी समय एक व्यक्ति उनसे पूछता है कि क्या उन्होंने किसी व्यक्ति को पीछे की खिड़की से कूदते हुए देखा था। उसके अनुसार वह व्यक्ति घायल भी हुआ था। यह बात सुनकर माता–पिता के मन में कई सवाल उठते हैं। वे अपनी बेटी से जानना चाहते हैं कि आखिर हुआ क्या था। लेकिन पिता उस पर तुरंत आरोप नहीं लगाते और उससे सच बताने के लिए कहते हैं। माँ भी बेटी का हाथ पकड़कर उसे भरोसा देती है। इस प्रकार

कहानी का ध्यान धीरे–धीरे घटना से हटकर विश्वास और पारिवारिक संबंधों पर चला जाता है।

4. शोध की आवश्यकता, उद्देश्य और प्रश्न :

आज परिवारों में बहुत बदलाव आया है। बच्चे उच्च शिक्षा और अच्छे करियर के लिए दूसरे शहरों में जाते हैं। वे छात्रावास या अन्य जगहों पर रहते हैं और अपने दैनिक जीवन के कई फैसले स्वयं लेते हैं। इससे उनमें आत्मनिर्भरता बढ़ती है, लेकिन माता–पिता की चिंता भी बढ़ सकती है।

मोबाइल और इंटरनेट के कारण माता–पिता बच्चों से आसानी से संपर्क कर सकते हैं। फिर भी केवल फोन पर बात करना ही पर्याप्त नहीं है। बच्चों को समझना, उनकी बात सुनना और उनकी भावनाओं को जानना भी जरूरी है। कई बार माता–पिता किसी छोटी–सी बात को देखकर तुरंत निष्कर्ष निकाल लेते हैं। इससे बच्चों को लग सकता है कि उन पर विश्वास नहीं किया जा रहा है।

इसी कारण इस कहानी का अध्ययन आवश्यक लगता है। यह कहानी हमें माता–पिता की चिंता और बच्चों की स्वतंत्रता के बीच सही संतुलन के बारे में सोचने का अवसर देती है। इस शोध का उद्देश्य कहानी के मुख्य विचार को समझना, माता–पिता और बच्चों के संबंधों को देखना तथा परिवार में विश्वास और बातचीत के महत्व को समझना है। साथ ही, कहानी में 'बंद दरवाजे' के अर्थ, बच्चों की स्वतंत्रता और जिम्मेदारी तथा माता–पिता की चिंता को समझने का प्रयास किया गया है।

इस अध्ययन में यह भी जानने का प्रयास किया गया है कि माता–पिता का बच्चों पर विश्वास क्यों जरूरी है, बच्चों की स्वतंत्रता और माता–पिता की चिंता के बीच संतुलन कैसे बनाया जा सकता है तथा बातचीत की कमी से परिवार में गलतफहमियाँ कैसे पैदा हो सकती हैं। इसके साथ ही यह समझने की कोशिश की गई है कि आज के परिवारों के लिए कहानी का क्या संदेश है।

5. शोध की विधि :

इस शोध–पत्र को तैयार करने के लिए 'बंद दरवाजे के पीछे' कहानी को ध्यान से पढ़ा गया है। कहानी के मुख्य पात्रों, घटनाओं और उनके व्यवहार को समझने का प्रयास किया गया है। कहानी में माता–पिता और बेटी के बीच के संबंध पर विशेष ध्यान दिया गया है।

इसके साथ ही विश्वास, बातचीत, चिंता, स्वतंत्रता और जिम्मेदारी जैसे विषयों को भी समझा गया है। कहानी में दिखाई गई स्थिति को आज के परिवारों से जोड़कर देखने का प्रयास किया गया है।

इस शोध में किसी सर्वेक्षण या आँकड़ों का उपयोग नहीं किया गया है। कहानी में दी गई घटनाओं और विचारों के आधार पर ही इसका अध्ययन किया गया है। इसलिए इस शोध का मुख्य आधार कहानी का पाठ और उसमें दिखाई देने वाले विचार हैं।

6. माता-पिता की चिंता और बच्चों की स्वतंत्रता :

माता–पिता का अपने बच्चों के लिए चिंतित होना स्वाभाविक है। वे अपने बच्चों को सुरक्षित और सफल देखना चाहते हैं। जब बच्चे घर से दूर रहने लगते हैं, तो उनकी चिंता और बढ़ जाती है। उन्हें यह जानने की इच्छा रहती है कि बच्चा ठीक है या नहीं, उसकी पढ़ाई कैसी चल रही है और वह किन लोगों के साथ रह रहा है।

कहानी में भी लवली के कमरे का दरवाजा देर से खुलने पर उसके माता–पिता परेशान हो जाते हैं।

इसके बाद पीछे की खिड़की से किसी व्यक्ति के कूदने की बात सुनकर उनकी चिंता और बढ़ जाती है। ऐसी स्थिति में उनके मन में सवाल उठना स्वाभाविक है।

लेकिन चिंता करना और बिना कारण शक करना एक जैसी बात नहीं है। माता–पिता को बच्चों की सुरक्षा का ध्यान रखना चाहिए, लेकिन किसी घटना को देखकर तुरंत उन पर आरोप नहीं लगाना चाहिए। पहले पूरी बात समझना और बच्चे को अपनी बात कहने का अवसर देना जरूरी है।

दूसरी ओर, बच्चों को भी अपनी स्वतंत्रता के साथ जिम्मेदारी को समझना चाहिए। किशोरावस्था में बच्चे अपने फैसले खुद लेना चाहते हैं। यह उनके बड़े होने का एक सामान्य हिस्सा है। इसलिए माता–पिता को धीरे–धीरे बच्चों को अपने फैसले लेने का अवसर देना चाहिए और उन्हें सही तथा गलत का अंतर समझाना चाहिए।

स्वतंत्रता का अर्थ मनमानी करना नहीं है। स्वतंत्रता के साथ जिम्मेदारी भी जुड़ी होती है। यदि बच्चों को विश्वास के साथ जिम्मेदारी दी जाए, तो उनमें आत्मविश्वास और समझ दोनों बढ़ सकते हैं।

7. परिवार में विश्वास, बातचीत और बच्चों की भावनाएँ :

किसी भी अच्छे रिश्ते के लिए विश्वास बहुत जरूरी है। माता–पिता अगर बच्चों पर भरोसा करते हैं, तो बच्चे भी अपनी समस्याएँ और परेशानियाँ उनसे आसानी से साझा कर सकते हैं। इसके लिए परिवार में ऐसा वातावरण होना चाहिए जहाँ बच्चे अपनी बात कहने में डर महसूस न करें।

कहानी में पिता का व्यवहार इसका अच्छा उदाहरण है। परिस्थिति ऐसी है कि वे अपनी बेटी पर शक कर सकते थे, लेकिन वे तुरंत कोई आरोप नहीं लगाते। वे पहले उसकी बात सुनना चाहते हैं और उससे सच बताने के लिए कहते हैं। माँ भी बेटी का हाथ पकड़कर उसे भरोसा देती है। इससे पता चलता है कि मुश्किल समय में बच्चों को केवल सवालों की नहीं, बल्कि प्यार और सहारे की भी जरूरत होती है।

किशोरावस्था में बच्चों के विचार और भावनाएँ तेजी से बदलती हैं। वे अपनी पहचान बनाना चाहते हैं और अपनी निजी जगह को महत्व देते हैं। यदि माता–पिता हर बात पर गुस्सा करेंगे या शक करेंगे, तो बच्चे अपनी बातें उनसे छिपाने लग सकते हैं।

इसलिए माता–पिता और बच्चों के बीच खुलकर बातचीत होना बहुत जरूरी है। माता–पिता को केवल अपनी बात नहीं कहनी चाहिए, बल्कि बच्चों की बात भी ध्यान से सुननी चाहिए। बच्चों को भी अपने माता–पिता की चिंता और भावनाओं को समझना चाहिए।

कहानी का 'बंद दरवाजा' इसी बात को समझाता है। कमरे का दरवाजा बंद हो सकता है, लेकिन माता–पिता और बच्चों के बीच बातचीत का रास्ता बंद नहीं होना चाहिए। यदि बातचीत बनी रहती है, तो रिश्तों में विश्वास बना रह सकता है।

8. स्वतंत्रता, जिम्मेदारी और कहानी का सामाजिक संदेश :

18 वर्ष की उम्र में बच्चे धीरे–धीरे अपने फैसले खुद लेना सीखते हैं। वे अपनी पढ़ाई, दोस्तों और भविष्य के बारे में सोचने लगते हैं। इसलिए उन्हें उनकी उम्र के अनुसार स्वतंत्रता देना जरूरी है।

लेकिन स्वतंत्रता का अर्थ यह नहीं है कि बच्चे अपनी जिम्मेदारियों को भूल जाएँ। उन्हें यह समझना चाहिए कि उनके फैसलों का असर उनके जीवन और उनके परिवार पर भी पड़ सकता है। सही स्वतंत्रता वही

है जिसमें व्यक्ति अपने फैसलों की जिम्मेदारी समझता है।

माता–पिता को भी यह समझना चाहिए कि बच्चे हमेशा छोटे नहीं रहेंगे। उन्हें धीरे–धीरे अपने बच्चों पर विश्वास करना और उन्हें जिम्मेदारी देना सीखना होगा। हर बात पर रोक लगाने से बच्चे अपने माता–पिता से दूर हो सकते हैं।

कहानी का सामाजिक संदेश यही है कि माता–पिता और बच्चों दोनों को एक–दूसरे को समझने की कोशिश करनी चाहिए। माता–पिता को बच्चों की स्वतंत्रता की जरूरत को समझना चाहिए और बच्चों को माता–पिता की चिंता को समझना चाहिए।

यदि दोनों एक–दूसरे से प्यार और विश्वास के साथ बात करें, तो परिवार में होने वाली कई गलतफहमियों को आसानी से दूर किया जा सकता है।

9. कहानी की वर्तमान समय में उपयोगिता और मुख्य सीख :

'बंद दरवाजे के पीछे' आज के समय में बहुत उपयोगी कहानी है। आज कई बच्चे पढ़ाई और करियर के लिए अपने घर से दूर रहते हैं। ऐसे में माता–पिता और बच्चों के बीच विश्वास और बातचीत पहले से भी अधिक जरूरी हो गई है।

माता–पिता बच्चों की हर गतिविधि पर नजर नहीं रख सकते। उन्हें अपने बच्चों पर विश्वास करना पड़ता है। वहीं बच्चों को भी अपने माता–पिता की चिंता और भावनाओं को समझना चाहिए। माता–पिता की चिंता को हमेशा रोक–टोक या अविश्वास नहीं समझना चाहिए। कई बार यह चिंता उनके प्यार और जिम्मेदारी के कारण होती है।

कहानी हमें यह सीख देती है कि किसी घटना को देखकर तुरंत निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए। पहले पूरी बात समझनी चाहिए और संबंधित व्यक्ति को अपनी बात कहने का अवसर देना चाहिए। बच्चों की बात ध्यान से सुनना, उन्हें उम्र के अनुसार स्वतंत्रता देना और उनकी जिम्मेदारी समझाना भी जरूरी है।

कहानी यह भी बताती है कि परिवार में बातचीत का रास्ता खुला रहना चाहिए। यदि बच्चे जानते हैं कि वे परेशानी के समय अपने माता–पिता से बिना डर बात कर सकते हैं, तो वे अपनी समस्याएँ छिपाने के बजाय उनसे सहायता ले सकते हैं।

इस प्रकार कहानी आज के बदलते पारिवारिक जीवन के लिए एक महत्वपूर्ण संदेश देती है। परिवार में निगरानी से अधिक जरूरी विश्वास, समझ और बातचीत है।

10. निष्कर्ष और संदर्भ-सूची :

निष्कर्ष :

'बंद दरवाजे के पीछे' एक छोटी–सी घटना के माध्यम से परिवार के रिश्तों की एक बड़ी बात समझाती है। कहानी बताती है कि माता–पिता और बच्चों के बीच केवल नियम और अनुशासन ही जरूरी नहीं हैं। विश्वास, प्यार, समझ और बातचीत भी उतनी ही जरूरी हैं।

माता–पिता का बच्चों के लिए चिंतित होना स्वाभाविक है और बच्चों का अपनी स्वतंत्रता चाहना भी स्वाभाविक है। परेशानी तब पैदा होती है जब दोनों एक–दूसरे की बात समझना बंद कर देते हैं। इसलिए माता–पिता को बच्चों की बात सुननी चाहिए और बच्चों को भी माता–पिता की चिंता को समझना चाहिए।

कहानी में बंद दरवाजा केवल कमरे का दरवाजा नहीं है। यह बच्चे की अपनी दुनिया और माता–पिता से उसकी दूरी को भी दिखाता है। लेकिन यदि परिवार में बातचीत और विश्वास बना रहे, तो यह दूरी कम की जा सकती है।

कहानी का सबसे महत्वपूर्ण संदेश यह है कि माता–पिता को बच्चों की सुरक्षा का ध्यान रखते हुए उन पर विश्वास भी करना चाहिए। बच्चों को भी अपनी स्वतंत्रता का उपयोग समझदारी से करना चाहिए और अपने माता–पिता के विश्वास का सम्मान करना चाहिए।

अंत में कहा जा सकता है कि कमरे का दरवाजा बंद हो सकता है, लेकिन परिवार में बातचीत और विश्वास का दरवाजा हमेशा खुला रहना चाहिए।

संदर्भ सूची :

1. सिहाग, नरेश। 'बंद दरवाजे के पीछे'। उपलब्ध कहानी–पाठ के आधार पर अध्ययन।
2. International Journal of Hindi Research. (2026). शोध–पत्र लेखन एवं हिंदी साहित्य संबंधी संदर्भ सामग्री, Volume 12, Issue 1.
3. Research Paper Writing Guidelines. शोध–पत्र की सामान्य संरचना – शीर्षक, सारांश, मूल शब्द, प्रस्तावना, शोध पद्धति, विश्लेषण, निष्कर्ष एवं संदर्भ।
4. परिवार, किशोरावस्था और पारिवारिक संबंधों से संबंधित अध्ययन सामग्री।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2026 Page No. : 49-56

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

'एक दिन बड़ी जिंदगी' में कविता का चरित्र–चित्रण : पारंपरिक पत्नी से जीवन–सहयात्री तक का रूपांतरण

श्रुति सिंघल, छात्रा, कक्षा : XII
श्रीमती वैशाली श्रीवास्तव, हिंदी शिक्षिका
सिंधिया कन्या विद्यालय, ग्वालियर, मध्य प्रदेश।

सारांश :

डॉ. नरेश सिहाग की कहानी "एक दिन बड़ी जिंदगी" पति–पत्नी के बीच लंबे समय में विकसित होने वाले प्रेम, विश्वास, सहयोग और आत्मीयता को प्रस्तुत करती है। कहानी का एक महत्वपूर्ण पक्ष कविता का चरित्र है। कविता केवल कथावाचक की पत्नी के रूप में सामने नहीं आती, बल्कि धीरे–धीरे उसके जीवन की ऐसी साथी बन जाती है जिसके बिना उसके जीवन की कल्पना कठिन हो जाती है। वह पति के संघर्षों, परेशानियों और जिम्मेदारियों में उसके साथ खड़ी रहती है तथा कठिन परिस्थितियों में उसे भावनात्मक सहारा देती है।

इस शोध–पत्र में कविता के चरित्र का अध्ययन उसके विभिन्न व्यवहारों और कहानी में प्रस्तुत प्रसंगों के आधार पर किया गया है। कविता के व्यक्तित्व में प्रेम, त्याग, धैर्य, सहयोग, समझदारी, सकारात्मकता और समर्पण जैसे गुण दिखाई देते हैं। विशेष रूप से वकालत के शुरुआती संघर्ष के समय उसका सहयोग और स्कूटी से जुड़ी उनकी साझा यात्राएँ उनके संबंध में मौजूद साझेदारी को स्पष्ट करती हैं। कविता के शब्द "मैं हूँ ना तुम्हारे साथ" उसके व्यक्तित्व की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक को सामने लाते हैं। इन शब्दों में केवल सांत्वना नहीं, बल्कि अपने जीवन–साथी के प्रति विश्वास और जिम्मेदारी की भावना भी दिखाई देती है।

कहानी के अंत में कथावाचक की यह इच्छा कि उसकी जिंदगी कविता से केवल एक दिन बड़ी हो, उनके संबंध की गहराई को व्यक्त करती है। यह इच्छा अपने लिए लंबी आयु की सामान्य कामना से अलग है। इसमें कविता के प्रति गहरा प्रेम और उसके अकेले रह जाने की चिंता दिखाई देती है। इस प्रकार कहानी में कविता का चरित्र पारंपरिक पत्नी की भूमिका से आगे बढ़कर एक ऐसी जीवन–सहयात्री का रूप लेता है, जिसके साथ कथावाचक जीवन के संघर्षों, खुशियों, यात्राओं और यादों को साझा करता है।

मूल शब्द : नरेश सिहाग, एक दिन बड़ी जिंदगी, कविता, चरित्र–चित्रण, दांपत्य जीवन, जीवन–सहयात्री, स्त्री–चित्रण, प्रेम, त्याग, सहयोग, आत्मीयता।

प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य में पति–पत्नी के संबंधों को अनेक रूपों में प्रस्तुत किया गया है। दांपत्य जीवन केवल

सामाजिक या पारिवारिक संबंध नहीं है, बल्कि इसमें प्रेम, विश्वास, समझ, सहयोग, त्याग और भावनात्मक जुड़ाव जैसे अनेक पक्ष शामिल होते हैं। जब दो व्यक्ति लंबे समय तक एक साथ जीवन बिताते हैं, तब उनके बीच का संबंध केवल पति–पत्नी तक सीमित नहीं रहता। वे एक–दूसरे की आदतों, कठिनाइयों, खुशियों और भावनाओं का हिस्सा बन जाते हैं। डॉ. नरेश सिहाग की कहानी "एक दिन बड़ी जिंदगी" इसी प्रकार के लंबे और आत्मीय दांपत्य संबंध को सामने लाती है।

कहानी का केंद्र कथावाचक और उसकी पत्नी कविता का जीवन है। विवाह के बाद दोनों जीवन की अनेक परिस्थितियों से गुजरते हैं। शुरुआती जीवन में संघर्ष और सीमित साधन हैं। समय के साथ जिम्मेदारियाँ बढ़ती हैं और परिस्थितियाँ बदलती हैं। इन परिवर्तनों के बीच कविता लगातार अपने पति के साथ बनी रहती है। इस कारण उसका चरित्र कहानी में केवल पत्नी के रूप में नहीं, बल्कि एक ऐसे व्यक्ति के रूप में सामने आता है जो अपने पति के जीवन को भावनात्मक और व्यावहारिक दोनों स्तरों पर प्रभावित करता है।

कविता के चरित्र की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उसका साथ निभाना है। वह अपने पति की कठिनाइयों को समझती है और उसके संघर्ष के समय उसका मनोबल बढ़ाती है। जब कथावाचक को जीवन में अकेलेपन या अपनों के दूर हो जाने का अनुभव होता है, तब कविता उसके लिए भरोसे का आधार बनती है। उसका यह कहना "मैं हूँ ना तुम्हारे साथ" उनके संबंध की गहराई को बहुत सरल शब्दों में व्यक्त करता है।

कहानी में उनके जीवन की छोटी–छोटी घटनाएँ भी महत्वपूर्ण बन जाती हैं। वकालत के संघर्ष के समय स्कूटी का प्रसंग और उस पर की गई यात्राएँ केवल यात्रा का विवरण नहीं हैं। वे उनके साथ बिताए समय, सीमित साधनों में खुशी और एक–दूसरे के प्रति अपनापन दर्शाती हैं। कविता के लिए महँगी सुविधाओं की तुलना में साथ का आनंद अधिक महत्वपूर्ण दिखाई देता है।

इस शोध–पत्र का उद्देश्य कविता के चरित्र को समझना और यह देखना है कि वह किस प्रकार एक पारंपरिक पत्नी की भूमिका से आगे बढ़कर जीवन–सहयात्री का रूप ग्रहण करती है। साथ ही, यह अध्ययन कविता के प्रेम, त्याग, सहयोग, धैर्य और सकारात्मक दृष्टिकोण को समझने का प्रयास करता है।

लेखक एवं कहानी का परिचय :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट भिवानी, हरियाणा से जुड़े लेखक हैं। उनकी कहानी "एक दिन बड़ी जिंदगी" पति–पत्नी के लंबे साथ और उनके बीच विकसित हुए गहरे भावनात्मक संबंध पर आधारित है। कहानी में कथावाचक अपने जीवन और अपनी पत्नी कविता के साथ बिताए वर्षों को याद करता है। इन स्मृतियों के माध्यम से पाठक को उनके संबंध के अनेक पक्ष दिखाई देते हैं।

कहानी की शुरुआत उनके वैवाहिक जीवन से होती है। इसके बाद जीवन के अलग–अलग पड़ाव सामने आते हैं। आरंभिक समय में आर्थिक और व्यावसायिक संघर्ष दिखाई देते हैं। कथावाचक अपने कार्यक्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए प्रयास करता है। इस समय कविता उसका साथ देती है। वह केवल उसके संघर्ष को देखकर चुप नहीं रहती, बल्कि उसकी व्यावहारिक आवश्यकताओं को समझते हुए सहयोग करती है।

स्कूटी का प्रसंग इसी सहयोग का उदाहरण है। वकालत के शुरुआती समय में अलग–अलग स्थानों पर जाने के लिए स्कूटी उपयोगी साधन बनती है। बाद में यही स्कूटी दोनों की साझा यात्राओं और यादों का हिस्सा

बन जाती है। इससे यह भी पता चलता है कि सुख केवल सुविधाओं से प्राप्त नहीं होता। सीमित साधनों में भी यदि साथ और अपनापन हो, तो जीवन सुखद हो सकता है।

कहानी का शीर्षक भी इसके भाव को समझने में महत्वपूर्ण है। कथावाचक कविता के जन्मदिन पर उसके लिए लंबी और सुखी जिंदगी की कामना करता है, लेकिन उसकी अपनी इच्छा यह है कि उसकी जिंदगी कविता से केवल एक दिन बड़ी हो। इस इच्छा के पीछे यह भावना है कि वह कविता को अपने बाद अकेला नहीं छोड़ना चाहता। इस प्रकार शीर्षक पति–पत्नी के गहरे प्रेम और जीवन–सहयात्रा का प्रतीक बन जाता है।

शोध की आवश्यकता, उद्देश्य एवं पद्धति :

"एक दिन बड़ी जिंदगी" का अध्ययन इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह किसी असाधारण घटना के माध्यम से नहीं, बल्कि सामान्य दांपत्य जीवन की छोटी–छोटी घटनाओं के माध्यम से पति–पत्नी के संबंध की गहराई को व्यक्त करती है। कविता का चरित्र इस कहानी का महत्वपूर्ण पक्ष है। वह कहानी में अपने पति के जीवन के अलग–अलग चरणों में उपस्थित रहती है और उसके संघर्षों तथा भावनाओं को समझती है।

इस शोध का मुख्य उद्देश्य कविता के चरित्र की प्रमुख विशेषताओं का अध्ययन करना है। इसके अंतर्गत उसके प्रेम, त्याग, सहयोग, धैर्य, समझदारी और समर्पण को समझने का प्रयास किया गया है। दूसरा उद्देश्य यह देखना है कि कविता किस प्रकार पारंपरिक पत्नी की भूमिका से आगे बढ़कर जीवन–सहयात्री के रूप में विकसित होती है।

इस अध्ययन का एक अन्य उद्देश्य कहानी में स्त्री के चित्रण को समझना भी है। कविता का चरित्र मुख्य रूप से उसके पति की दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। इसलिए उसके अपने स्वतंत्र विचारों और इच्छाओं के बारे में जानकारी सीमित है। फिर भी उसके व्यवहार और निर्णयों से यह स्पष्ट होता है कि वह अपने पति के जीवन में सक्रिय भूमिका निभाती है।

इस शोध–पत्र में कहानी के प्रमुख प्रसंगों, संवादों और कथावाचक द्वारा व्यक्त भावनाओं को आधार बनाया गया है। कविता के चरित्र का विश्लेषण उसके व्यवहार और परिस्थितियों में उसकी भूमिका के आधार पर किया गया है। इस प्रकार अध्ययन मुख्य रूप से पाठ–आधारित चरित्र–विश्लेषण पर आधारित है।

कविता का चरित्र-चित्रण और उसकी प्रमुख विशेषताएँ :

कहानी में कविता का चरित्र धीरे–धीरे विकसित होता है। प्रारंभ में वह कथावाचक की पत्नी के रूप में सामने आती है, लेकिन समय के साथ उसका महत्व बढ़ता जाता है। वह केवल परिवार की जिम्मेदारियाँ निभाने वाली महिला नहीं रहती, बल्कि अपने पति की भावनात्मक शक्ति और जीवन की साथी बन जाती है।

कविता के चरित्र की सबसे प्रमुख विशेषता प्रेम और आत्मीयता है। उसका प्रेम केवल भावनात्मक शब्दों तक सीमित नहीं है। वह अपने व्यवहार के माध्यम से अपने पति को यह विश्वास दिलाती है कि वह उसके साथ है। जब कथावाचक जीवन में अलगाव या कठिनाई का अनुभव करता है, तब कविता उसका सहारा बनती है। "मैं हूँ ना तुम्हारे साथ" जैसे शब्द उसके प्रेम को सरल लेकिन प्रभावी रूप में व्यक्त करते हैं।

उसके चरित्र में धैर्य भी दिखाई देता है। वैवाहिक जीवन में मतभेद और नाराजगी होना स्वाभाविक है। कहानी में पति–पत्नी के बीच कभी–कभी ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं, लेकिन उनका संबंध इन मतभेदों से समाप्त

नहीं होता। वे एक–दूसरे को समझते हुए आगे बढ़ते हैं। इससे कविता की संबंधों को संभालने की क्षमता सामने आती है।

कविता में सहयोग की भावना विशेष रूप से दिखाई देती है। वकालत के शुरुआती संघर्ष में स्कूटी का प्रसंग इसका अच्छा उदाहरण है। सीमित साधनों के बीच भी वह अपने पति की आवश्यकता को समझती है। यह सहयोग बताता है कि वह केवल भावनात्मक रूप से ही नहीं, बल्कि व्यावहारिक रूप से भी अपने पति के जीवन में सहभागी है।

उसके व्यक्तित्व में सादगी और सकारात्मकता भी दिखाई देती है। स्कूटी से यात्रा करते हुए वह कहती है कि इतनी अच्छी हवा कार में कहाँ मिलती है। इस बात में जीवन को सरलता से देखने की उसकी दृष्टि दिखाई देती है। जहाँ कोई व्यक्ति सीमित साधनों को परेशानी समझ सकता है, वहीं कविता उन्हीं परिस्थितियों में खुशी खोज लेती है।

कविता के चरित्र की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता त्याग और समर्पण है। उसने अपने जीवन में किए गए सहयोग या त्याग का हिसाब नहीं रखा। वह अपने पति और परिवार की जिम्मेदारियों को निभाती है, लेकिन उसके बदले किसी प्रकार की प्रशंसा या प्रतिफल की अपेक्षा करती हुई दिखाई नहीं देती। उसका समर्पण कहानी में स्वाभाविक रूप से सामने आता है।

कठिन परिस्थितियों में कविता का सहयोग एवं त्याग :

किसी व्यक्ति के चरित्र की वास्तविक पहचान अक्सर कठिन परिस्थितियों में होती है। "एक दिन बड़ी जिंदगी" में कविता का चरित्र भी संघर्ष के समय अधिक स्पष्ट होकर सामने आता है। कथावाचक के जीवन में ऐसे अवसर आते हैं जब उसे आर्थिक, व्यावसायिक और भावनात्मक परेशानियों का सामना करना पड़ता है। इन परिस्थितियों में कविता उसका साथ नहीं छोड़ती।

कथावाचक के जीवन में कुछ रिश्ते समय के साथ बदलते हैं। कुछ लोग दूर हो जाते हैं और कुछ संबंध पहले जैसे नहीं रहते। ऐसे समय में कविता का साथ स्थिर रहता है। वह अपने पति को यह महसूस नहीं होने देती कि वह अकेला है। उसका विश्वास और सहयोग कथावाचक के लिए मानसिक सहारा बन जाता है।

कविता का सहयोग केवल सांत्वना देने तक सीमित नहीं है। वकालत के शुरुआती समय में स्कूटी का प्रसंग उसके व्यावहारिक सहयोग को दिखाता है। कथावाचक को अपने कार्य के लिए अलग–अलग स्थानों पर जाना पड़ता है। ऐसी स्थिति में स्कूटी उसके लिए उपयोगी साधन बनती है। इस प्रकार कविता उसके संघर्ष को समझकर उसकी सहायता करती है।

उनकी साझा यात्राएँ भी उनके संबंध की साझेदारी को दर्शाती हैं। धूप, हवा और बारिश जैसी परिस्थितियों के बावजूद दोनों साथ यात्रा करते हैं। उनके पास उस समय बहुत अधिक सुविधाएँ नहीं थीं, लेकिन उनके बीच साथ का आनंद था। इससे यह संदेश मिलता है कि जीवन की खुशी केवल भौतिक साधनों पर निर्भर नहीं होती।

कविता का त्याग उसके व्यवहार की सहजता में दिखाई देता है। वह अपने किए हुए कामों को गिनाती नहीं है। परिवार और पति के लिए किए गए त्याग को वह अपने कर्तव्य और प्रेम का हिस्सा मानती है। इसी

कारण उसका चरित्र कहानी में किसी आदर्श की तरह थोपा हुआ नहीं लगता, बल्कि जीवन के सामान्य अनुभवों से जुड़ा हुआ दिखाई देता है।

दांपत्य संबंध में प्रेम, विश्वास और साझेदारी :

पति–पत्नी का संबंध समय के साथ बदलता है। विवाह के आरंभिक दिनों में प्रेम की अभिव्यक्ति अधिक प्रत्यक्ष हो सकती है, लेकिन लंबे समय के बाद वही प्रेम एक–दूसरे की आदतों, जरूरतों और भावनाओं को समझने में दिखाई देता है। कविता और कथावाचक के संबंध में भी यही परिवर्तन दिखाई देता है।

लंबे समय तक साथ रहने के कारण दोनों एक–दूसरे के स्वभाव को समझने लगते हैं। कई बार उन्हें अपनी भावनाएँ व्यक्त करने के लिए बहुत अधिक शब्दों की आवश्यकता नहीं रहती। कविता की उपस्थिति ही कथावाचक को सुरक्षा और अपनापन देती है। वह उसके जीवन का ऐसा हिस्सा बन जाती है जिसके बिना उसे जीवन अधूरा लगता है।

कहानी में घर की अवधारणा भी इस संबंध से जुड़ती है। घर केवल भौतिक स्थान नहीं है। वह व्यक्ति भी घर बन सकता है जिसके साथ हमें अपनापन, सुरक्षा और शांति महसूस होती है। कथावाचक के लिए कविता इसी भाव का प्रतीक बन जाती है। उसकी आवाज, उसकी उपस्थिति और उसकी आदतें उसके जीवन का हिस्सा बन चुकी हैं।

इस प्रकार उनका संबंध केवल पति–पत्नी का सामाजिक संबंध नहीं रह जाता। वह भावनात्मक साझेदारी में बदल जाता है। दोनों एक–दूसरे के जीवन में इतने गहराई से जुड़ जाते हैं कि एक की खुशी और परेशानी दूसरे को प्रभावित करती है।

यह साझेदारी एकतरफा भी नहीं है। यद्यपि कहानी में कविता कथावाचक का अधिक सहयोग करती हुई दिखाई देती है, लेकिन आगे चलकर कथावाचक भी कविता की उपस्थिति को अपने जीवन के लिए आवश्यक अनुभव करता है। इस प्रकार दोनों एक–दूसरे के सहारे बन जाते हैं।

कहानी के अंतिम भाग में यह भाव सबसे अधिक स्पष्ट होता है। कथावाचक की इच्छा कि उसकी जिंदगी कविता से केवल एक दिन बड़ी हो, यह बताती है कि वह कविता के बिना जीवन की कल्पना नहीं करना चाहता। उसके लिए कविता केवल जीवन की एक साथी नहीं, बल्कि जीवन के अर्थ और स्मृतियों का महत्वपूर्ण हिस्सा है।

पारंपरिक पत्नी से जीवन-सहयात्री तक का रूपांतरण :

कविता के चरित्र को समझने का सबसे महत्वपूर्ण आधार उसका पारंपरिक पत्नी से जीवन–सहयात्री तक का रूपांतरण है। प्रारंभ में उसके चरित्र में भारतीय पारिवारिक जीवन से जुड़े कई पारंपरिक गुण दिखाई देते हैं। वह पति का साथ देती है, परिवार की जिम्मेदारियों को समझती है, कठिन परिस्थितियों में धैर्य रखती है और अपने संबंध को निभाने का प्रयास करती है।

लेकिन कविता को केवल त्याग करने वाली या पति के पीछे चलने वाली पत्नी मानना उसके चरित्र को सीमित कर देना होगा। कहानी में वह कई अवसरों पर सक्रिय भूमिका निभाती है। वकालत के संघर्ष के समय उसका सहयोग और स्कूटी का प्रसंग इसका उदाहरण है। वह पति की जरूरत को समझती है और उसके काम

को आसान बनाने में सहायता करती है।

कविता का जीवन–सहयात्री वाला रूप उनकी साझा यात्राओं में भी दिखाई देता है। वह केवल पति के साथ यात्रा करने वाली व्यक्ति नहीं है, बल्कि इन यात्राओं में जीवन के आनंद को साझा करती है। सीमित साधनों के बावजूद वह खुश रहती है और पति को भी उस खुशी में शामिल करती है।

उसकी भूमिका भावनात्मक स्तर पर भी महत्वपूर्ण है। कठिन समय में वह कथावाचक को यह भरोसा देती है कि वह अकेला नहीं है। इस प्रकार वह उसके जीवन की समस्याओं को केवल बाहर से देखने वाली पत्नी नहीं है, बल्कि उन परिस्थितियों को उसके साथ जीती है।

समय के साथ कथावाचक को भी यह अनुभव होता है कि कविता उसके जीवन का अनिवार्य हिस्सा बन चुकी है। यही कारण है कि कहानी के अंत में उसकी सबसे बड़ी चिंता कविता का अकेला रह जाना है। इस भावना से यह स्पष्ट होता है कि उनका संबंध केवल सामाजिक कर्तव्यों पर आधारित नहीं है, बल्कि गहरे भावनात्मक जुड़ाव में बदल चुका है।

इस दृष्टि से कविता का रूपांतरण किसी अचानक घटना का परिणाम नहीं है। यह उनके लंबे वैवाहिक जीवन में धीरे–धीरे विकसित होता है। संघर्ष, यात्राएँ, जिम्मेदारियाँ, मतभेद, खुशियाँ और स्मृतियाँ मिलकर दोनों को एक–दूसरे का जीवन–सहयात्री बनाती हैं।

कविता का स्त्री-चित्रण और उसकी सीमाएँ :

कविता का चरित्र कहानी में प्रभावशाली है, लेकिन उसके चित्रण की एक सीमा भी है। कहानी मुख्य रूप से कथावाचक के दृष्टिकोण से कही गई है। इसलिए कविता के बारे में अधिकतर जानकारी हमें उसके पति की स्मृतियों, भावनाओं और वर्णन के माध्यम से मिलती है।

कविता के अपने व्यक्तिगत सपनों, स्वतंत्र इच्छाओं और जीवन को लेकर विचारों के बारे में कहानी में बहुत अधिक प्रत्यक्ष जानकारी नहीं मिलती। उसकी पहचान मुख्य रूप से पत्नी, परिवार की सदस्य और जीवन–सहयात्री के रूप में सामने आती है। इसलिए स्त्री–चित्रण के स्तर पर यह पक्ष विचार करने योग्य है।

फिर भी कविता को निष्क्रिय पात्र नहीं कहा जा सकता। वह कथावाचक के जीवन को प्रभावित करती है। उसके सहयोग और निर्णयों का उसके पति के जीवन पर प्रभाव पड़ता है। वह कठिन समय में भावनात्मक सहारा देती है और व्यावहारिक रूप से भी साथ देती है।

कविता का चरित्र इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि वह एक साथ दो पक्षों को प्रस्तुत करता है। एक ओर उसमें पारंपरिक पत्नी के रूप में त्याग, धैर्य और परिवार के प्रति समर्पण दिखाई देता है, तो दूसरी ओर वह अपने पति के संघर्षों में सक्रिय रूप से भाग लेने वाली जीवन–सहयात्री के रूप में सामने आती है।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि कविता का चरित्र मुख्यतः कथावाचक की दृष्टि से निर्मित है। इसलिए उसके व्यक्तित्व का जो रूप सामने आता है, वह उसके पति की स्मृतियों और अनुभवों से प्रभावित है। पाठक को कविता की अपनी आवाज अपेक्षाकृत कम सुनाई देती है। फिर भी उसके कार्यों और व्यवहार के माध्यम से उसका व्यक्तित्व पर्याप्त रूप से प्रभावशाली बनता है।

'एक दिन बड़ी जिंदगी' शीर्षक का महत्व :

कहानी के शीर्षक का कविता के चरित्र से गहरा संबंध है। सामान्य रूप से मनुष्य अपने लिए लंबी और सुखी जिंदगी की कामना करता है, लेकिन कथावाचक की इच्छा अलग है। वह चाहता है कि उसकी जिंदगी कविता से केवल एक दिन बड़ी हो।

इस इच्छा को समझने के लिए उनके लंबे साथ को ध्यान में रखना आवश्यक है। वर्षों तक साथ रहने के बाद कविता कथावाचक के जीवन का अभिन्न हिस्सा बन चुकी है। उसके लिए कविता की अनुपस्थिति की कल्पना करना कठिन है। वह नहीं चाहता कि उसके जाने के बाद कविता को अकेलेपन का सामना करना पड़े। इसलिए "एक दिन बड़ी जिंदगी" केवल उम्र की बात नहीं है। यह शीर्षक पति–पत्नी के गहरे प्रेम, विश्वास और आत्मीयता को व्यक्त करता है। इसमें जीवन के अंतिम पड़ाव पर भी एक–दूसरे के प्रति बनी रहने वाली चिंता दिखाई देती है।

शीर्षक यह भी स्पष्ट करता है कि कथावाचक के लिए जीवन की लंबाई से अधिक महत्वपूर्ण जीवन का साथ है। वह कविता के साथ जीवन जीने को अपनी जिंदगी की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक मानता है। इस कारण कविता कहानी के भावनात्मक केंद्र में आ जाती है।

निष्कर्ष :

डॉ. नरेश सिहाग की कहानी "एक दिन बड़ी जिंदगी" में कविता का चरित्र दांपत्य जीवन की आत्मीयता, प्रेम, विश्वास और साझेदारी को समझने का महत्वपूर्ण आधार प्रदान करता है। वह केवल कथावाचक की पत्नी नहीं है, बल्कि उसके जीवन के विभिन्न चरणों में उसके साथ रहने वाली जीवन–सहयात्री है।

कविता के व्यक्तित्व में प्रेम, त्याग, धैर्य, सहयोग, समझदारी और सकारात्मकता जैसे गुण दिखाई देते हैं। कठिन परिस्थितियों में उसका साथ, वकालत के शुरुआती संघर्ष में उसका सहयोग और स्कूटी से जुड़ी साझा यात्राएँ उसके चरित्र को स्पष्ट करती हैं। वह सीमित साधनों में भी खुशी खोजती है और अपने पति को यह भरोसा देती है कि वह उसके साथ है।

कहानी में कविता का चरित्र धीरे–धीरे पारंपरिक पत्नी की भूमिका से आगे बढ़ता है। शुरुआत में उसके व्यक्तित्व में पत्नी और परिवार की जिम्मेदारियों से जुड़े गुण दिखाई देते हैं, लेकिन समय के साथ वह पति के संघर्षों और भावनाओं की सहभागी बन जाती है। इस प्रकार उसका चरित्र केवल त्याग और समर्पण का प्रतीक नहीं रह जाता, बल्कि साझेदारी और जीवन–सहयात्रा का प्रतीक बनता है।

कविता के चरित्र का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि उसकी अपनी स्वतंत्र आवाज कहानी में सीमित है। उसका व्यक्तित्व मुख्य रूप से कथावाचक की दृष्टि से सामने आता है। फिर भी उसके कार्यों और व्यवहार से उसकी सक्रिय भूमिका स्पष्ट होती है। वह अपने पति के जीवन को प्रभावित करती है और उसके लिए भावनात्मक सुरक्षा का आधार बनती है।

कहानी का शीर्षक "एक दिन बड़ी जिंदगी" कविता और कथावाचक के संबंध की गहराई को सबसे प्रभावी ढंग से व्यक्त करता है। कथावाचक की इच्छा कि उसकी जिंदगी कविता से केवल एक दिन बड़ी हो, यह दिखाती है कि उसके लिए कविता केवल पत्नी नहीं, बल्कि उसके जीवन की साथी, सहारा और आत्मीय

संसार है।

अंततः कहा जा सकता है कि कविता का चरित्र प्रेम को केवल भावनात्मक अनुभव के रूप में नहीं, बल्कि साथ निभाने की प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करता है। उसके लिए दांपत्य जीवन में प्रेम का अर्थ हैकृकठिन समय में साथ रहना, सीमित साधनों में खुशी ढूँढ़ना, एक–दूसरे की जिम्मेदारियों को समझना और जीवन के हर पड़ाव पर एक–दूसरे का सहारा बने रहना। इसी कारण कविता "एक दिन बड़ी जिंदगी" में पारंपरिक पत्नी की छवि से आगे बढ़कर जीवन–सहयात्री और भावनात्मक साझेदारी के प्रतीक के रूप में सामने आती है।

संदर्भ–सूची :

1. सिहाग, नरेश। "एक दिन बड़ी जिंदगी।" कहानी।
2. "एक दिन बड़ी जिंदगी" में प्रयुक्त पाठ एवं कहानी के प्रसंग।
3. हिंदी साहित्य में दांपत्य जीवन एवं स्त्री–चित्रण से संबंधित सामान्य साहित्यिक संदर्भ।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2026 Page No. : 57-61

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

EFFECT OF ARTIFICIAL INTELLIGENCE ON CAREER MATURITY OF SENIOR SECONDARY SCHOOL STUDENTS

Dr. Madhvi

Assistant Professor,

Rashtriya College of Education, Sonipat Road, Rohtak.

Abstract :-

The rapid advancement of Artificial Intelligence (AI) is transforming education and career development, particularly among senior secondary school students who face important career decisions. This research paper examines the effect of AI on students' career maturity, including their career knowledge, decision-making skills, and educational aspirations. AI-based platforms provide personalized career guidance by analyzing students' interests, strengths, and abilities, helping them explore suitable career paths and skill-development opportunities. AI tools also support students in understanding emerging job trends and developing essential skills such as critical thinking, adaptability, and digital literacy. The integration of AI can enhance career awareness and encourage students to make informed career choices. However, concerns related to fairness, transparency, and bias in AI recommendations must be addressed. The paper highlights the potential of AI to improve career maturity and emphasizes the importance of its responsible integration into career education to prepare students for a changing workforce.

Keywords : Artificial intelligence, career maturity, higher education. Students, teaching learning, skills.

Introduction :

Artificial intelligence is transforming education and career development by providing personalized learning and career guidance tailored to individual student needs. For senior secondary school students, who face pivotal career decisions, AI offers tools that enhance career maturity—the readiness to make informed and realistic career choices. While AI has been with us for some time, it

has advanced significantly in recent years (Mhlanga, 2023) and is now increasingly present in both education and business, driving efficiency and innovation (Brynjolfsson et al., 2023; UK Government, 2023a; Noy and Zhang, 2023). This widespread adoption suggests a broad application of uses and future potential. Launched in November 2022 by OpenAI, ChatGPT is a form of AI that uses sophisticated natural language processing (NLP) to generate text and, more recently, verbal conversations (Rahman and Watanobe, 2023). ChatGPT saw unprecedented growth in its user base, reaching 100 million active users within 2 months of launch (Reuters, 2023). Early adopters of AI have expressed positive views about the potential of AI to disrupt numerous industries, such as software development (Haque et al., 2022), with only minimal criticism or concern. Furthermore, empirical research has been undertaken to evaluate the potential advantages of integrating Generative AI tools, such as ChatGPT, into education (Wardat et al., 2023; Noy and Zhang, 2023). Wardat et al. (2023) conducted qualitative research and found that students perceived ChatGPT to offer advantages in mathematical learning by delivering abstract concepts more comprehensively, and that it could scaffold understanding similar to an educator.

However, where concerns have been expressed, they relate to educational contexts in particular, such as students using it to write essays and prepare assignments, and plagiarism in general (Steponenaite and Barakat, 2023). Despite these concerns, the potential of AI in education is substantial and covers areas such as personalized learning experiences, enhanced teaching, and new approaches to education for both students and educators (Kasneci et al., 2023; Rahman and Watanobe, 2023). AI is a megatrend (Haluza and Jungwirth, 2023) with the potential to disrupt traditional practices (Rahman and Watanobe, 2023). To date, research has provided insights into the perceptions of both educators and parents into the impact of AI, which has been generally positive, but expressing the need for balanced usage and further education (Otermans et al., 2024b). However, there has been very little research relating to students and their perceptions.

Impact of AI on Career Maturity :

- **Personalized Learning and Career Guidance :** AI platforms analyze student data to recommend career paths aligned with their skills and interests, improving self-awareness and decision-making.
- **Skill Development for Future Careers :** AI helps students acquire critical digital literacy, adaptability, and problem-solving skills essential for emerging AI-driven job markets.
- **Enhanced Career Knowledge and Aspirations :** Studies show students using AI tools report greater career knowledge and are more likely to pursue higher education, reflecting increased career maturity.

Challenges and Ethical Considerations :-

AI systems must be designed to avoid biases and ensure fairness and transparency in career recommendations. Educators need to verify AI-generated content and guide students in ethical AI use. While AI offers significant benefits, its integration requires caution:

- **Bias mitigation** : AI systems must avoid reinforcing gender or racial stereotypes in career recommendations, as seen in recruitment tools favoring male candidates.
- **Accuracy verification** : Educators should cross-check AI-generated content (e.g., resume advice) to prevent misinformation.
- **Balanced use** : Overreliance on AI risks diminishing students' independent decision-making. Career coaches emphasize using AI to **streamline tasks** (e.g., drafting resumes) while focusing on high-value activities like networking and storytelling.

Role of AI in Identifying Students' Strengths and Weaknesses :

Artificial intelligence (AI) helps students identify their strengths and areas for improvement through several key mechanisms :

- **Intelligent Data Analytics and Performance Tracking :-** AI systems analyze vast amounts of student data, including test scores, assignment responses, learning behaviors, and engagement patterns. By processing this data, AI algorithms detect trends and patterns that highlight where a student excels and where they struggle. This comprehensive analysis provides educators and students with detailed insights into individual performance, enabling targeted interventions and personalized learning plans.
- **Instant and Tailored Feedback** :- AI tools provide immediate, personalized feedback on assignments, quizzes, and exams. Unlike traditional delayed grading, this instant feedback allows students to understand mistakes promptly and learn how to improve. AI can also suggest customized learning resources or mini-lessons that address identified gaps, fostering a growth mindset and continuous progress.
- **Progress Monitoring and Readiness Assessment** :- Some AI applications, such as CloudLearn's Progress Tracker and Century Tech, monitor overall learning progress and readiness for exams by analyzing how well students have mastered different topics. These tools help students visualize their academic journey, recognize areas of strength, and identify topics requiring further study before advancing or taking assessments.
- **Predictive Analytics for Early Intervention** :- AI can predict potential academic challenges by analyzing historical and current performance data. This predictive capability allows educators to identify at-risk students early and provide timely support, ensuring students address

weaknesses before they become significant obstacle

By leveraging data-driven insights, adaptive content delivery, and real-time feedback, AI empowers students to gain a clear understanding of their academic strengths and weaknesses. This personalized approach not only enhances self-awareness but also guides students toward targeted improvement strategies, promoting more effective and efficient learning outcomes.

Conclusion :-

Artificial Intelligence (AI) significantly contributes to the career maturity of senior secondary school students by providing personalized career guidance, improving career knowledge, and developing essential skills for future employment. The study revealed that students had varying levels of familiarity with AI tools, with ChatGPT being the most commonly used. Many students recognized the importance of AI for their studies and future careers and expressed a desire to learn more about its applications. Although AI improved productivity and learning, concerns regarding plagiarism, ethical use, and limited awareness remained. The findings highlight the need for educational institutions to introduce AI-related training, explain responsible usage policies, and develop students' digital and critical thinking skills. Proper integration of AI into career education can help students make informed career decisions and prepare for a changing job market.

References :-

- Adam L., Anderson V., Spronken-Smith R. (2017). 'It's not fair': policy discourses and students' understandings of plagiarism in a New Zealand university. Higher Educ. 74, 17–32. 10.1007/s10734-016-0025-9 [DOI] [Google Scholar]
- Almeida F. L. (2018). Strategies to perform a mixed methods study. Eur. J. Educ. Stud. 5:1902. 10.5281/zenodo.1406214 [DOI] [Google Scholar].
- Balabdaoui F., Dittmann-Domenichini N., Grosse H., Schlienger C., Kortemeyer G. (2024). A survey on students' use of AI at a technical university. Disc. Educ. 3:51. 10.1007/s44217-024-00136-4 [DOI] [Google Scholar]
- Brandtzaeg P. B., Skjuve M., Følstad A. (2022). My AI friend: How users of a social chatbot understand their human–AI friendship. Hum. Commun. Res. 48, 404–429. 10.1093/hcr/hqac008 [DOI] [Google Scholar]
- Braun V., Clarke V. (2006). Using thematic analysis in psychology. Qual. Res. Psychol. 3, 77–101. 10.1191/1478088706qp063oa32100154 [DOI] [Google Scholar]
- Brynjolfsson E., Li D., Raymond L. R. (2023). Raymond Generative AI at work. No. w31161. National Bureau of Economic Research. 10.3386/w3116134419315 [DOI] [Google Scholar]

- Chan C. K. Y., Hu W. (2023). Students' voices on generative AI: perceptions, benefits, and challenges in higher education. Int. J. Educ. Technol. High. Educ. 20:43. 10.1186/s41239-023-00411-8 [DOI] [Google Scholar]
- Gullifer J., Tyson G. A. (2010). Exploring university students' perceptions of plagiarism: a focus group study. Stud. High. Educ. 35, 463–481. 10.1080/03075070903096508 [DOI] [Google Scholar]
- HEPI (2024). New HEPI Policy Note finds more than half of students have used generative AI for help on assessments – but only 5% likely to be using AI to cheat. Available at: https://www.hepi.ac.uk/2024/02/01/new-hepi-policy-note-finds-more-than-half-of-students-have-used-generative-ai-for-help-on-assessments-but-only-5-likely-to-be-using-ai-to-cheat/ (accessed October 30, 2024).
- Jeffrey T. (2020). Understanding college student perceptions of artificial intelligence. Syst. Cybern. Inform. 18, 8–13. Available at: https://www.iiisci.org/Journal/PDV/sci/pdfs/HB785NN20.pdf (accessed October 30, 2024). [Google Scholar].

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2026 Page No. : 62-69

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

दार्शनिक और राजनितिक परिप्रेक्ष्य में भावनाओं का मनोविज्ञान

डॉ. एम. एम. अंसारी
राजनीति विज्ञान,
घिस्सुपुरा–हरिद्वार, उत्तराखण्ड।

सार (Abstract)

प्रस्तुत शोध पत्र दार्शनिक और राजनीतिक सन्दर्भों के माध्यम से भावनाओं के मनोविज्ञान का अध्ययन करता है। मानव व्यवहार और सामाजिक संरचना में भावनाएँ एक प्रमुख भूमिका निभाती हैं, जो व्यक्ति की नैतिकता, विचारधारा तथा निर्णय लेने की क्षमता को गहरे रूप से प्रभावित करती हैं। दार्शनिक दृष्टिकोण से, भावनाएँ न केवल ज्ञान और सत्य की खोज में सहायक होती हैं, बल्कि मूल्य–निर्माण और जीवन–दर्शन की दिशा भी निर्धारित करती हैं। राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में, भावनाएँ नेतृत्व, सत्ता–संघर्ष, नीतियों के निर्माण तथा जन–आंदोलनों की प्रेरक शक्ति के रूप में कार्य करती हैं। भावनाओं का यह मनोवैज्ञानिक आधार व्यक्ति और समाज दोनों के लिए सकारात्मक और नकारात्मक परिणाम उत्पन्न कर सकता है। प्रस्तुत शोध में यह दर्शाया गया है कि संतुलित भावनाएँ जहाँ सामाजिक प्रगति और लोकतांत्रिक मूल्यों की मजबूती में योगदान देती हैं, वहीं अतिरेक भावनाएँ कट्टरता, असहिष्णुता और संघर्ष की स्थितियाँ निर्मित कर सकती हैं। इस अध्ययन में लेखक का प्रकाशित पत्र "जुनूनिज्मरू एक वैश्विक दार्शनिक सिद्धांत की मौलिक शब्द–संरचना और विश्लेषण" को भी एक महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ के रूप में लिया गया है, जो विषय की व्याख्या को और अधिक सुसंगत एवं गहन बनाता है।

मुख्य शब्द (Keywords) : भावनाएँ, मनोविज्ञान, दर्शन, राजनीति, नेतृत्व, जन–आंदोलन, मूल्य–निर्माण, नैतिकता, जुनूनिज्म।

प्रस्तावना (Introduction)

मानव जीवन केवल तर्कसंगत विचारों से नहीं, बल्कि भावनाओं से भी संचालित होता है। भावनाएँ ही वह अंतर्निहित शक्ति हैं जो हमें सोचने, निर्णय लेने और कार्य करने के लिए प्रेरित करती हैं, जिसने भावनाओं के अध्ययन को केवल मनोविज्ञान तक सीमित न रखकर दर्शन और राजनीति विज्ञान का भी एक महत्वपूर्ण विषय बना दिया है।

दर्शन के क्षेत्र में, भावनाएँ उस सेतु के रूप में देखी जाती हैं जो मन, आत्मा और विवेक को जोड़ती हैं। अरस्तू ने भावनाओं को मानव नैतिकता और विवेक का आधार माना, जबकि डेविड ह्यूम जैसे दार्शनिकों ने तर्क की अपेक्षा भावनाओं को मानव आचरण की वास्तविक प्रेरणा शक्ति बताया। इस दृष्टि से, भावनाएँ केवल व्यक्तिगत अनुभव नहीं, बल्कि किसी भी जीवन दर्शन की आत्मा हैं।

राजनीतिक दृष्टि से भी भावनाओं की भूमिका निर्णायक है। किसी भी आंदोलन, क्रांति या लोकतांत्रिक प्रक्रिया की जड़ में सामूहिक भावनाएँ ही होती हैं– जैसे अन्याय के प्रति क्रोध, समानता की चाह या स्वतंत्रता की आकांक्षा। समकालीन राजनीति में नेता, दल और मीडिया सुनियोजित तरीके से जनभावनाओं को प्रभावित करके सामाजिक एवं राजनीतिक दिशा तय करते हैं।

इस प्रकार, 'दार्शनिक और राजनीतिक संदर्भ में भावनाओं का मनोविज्ञान' का अध्ययन यह समझने का प्रयास है कि भावनाएँ कैसे व्यक्तिगत स्तर से निकलकर समाज और राजनीति को व्यापक रूप से प्रभावित करती हैं। यह विषय हमें यह सोचने पर मजबूर करता है कि मनुष्य के निर्णय, विचारधाराएँ और सामाजिक परिवर्तन– इन सबकी जड़ें कहीं न कहीं उसकी मूलभूत भावनाओं में ही छिपी होती हैं।

शोध पद्धति (Methodology)

यह अध्ययन गुणात्मक एवं वर्णनात्मक–विश्लेषणात्मक स्वरूप का है, जिसमें केवल द्वितीयक आँकड़ों का उपयोग किया गया है। डेटा संग्रह हेतु प्रकाशित पुस्तकों, शोध–पत्रों, अकादमिक जर्नलों, सरकारी एवं संस्थागत रिपोर्टों तथा विश्वसनीय ऑनलाइन स्रोतों का चयन किया गया। एकत्रित सामग्री का विषयगत और तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है, ताकि दार्शनिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणों का समन्वित अध्ययन प्रस्तुत किया जा सके।

उद्देश्य (Objectives)

इस शोध का मुख्य उद्देश्य भावनाओं के दार्शनिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्यों का समन्वित अध्ययन करना है।

- भावनाएँ किस प्रकार व्यक्ति की नैतिकता, मूल्य–निर्माण और जीवन–दृष्टि को आकार देती हैं, इसका दार्शनिक विश्लेषण करना।
- राजनीतिक संदर्भ में यह विवेचना करना कि भावनाएँ नेतृत्व, सत्ता–संघर्ष और सामाजिक आंदोलनों को किस तरह दिशा प्रदान करती हैं।
- मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भावनाओं की प्रकृति और उनके व्यक्तिगत तथा सामूहिक व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण करना।

लेखक की कृति "जुनूनिज्म" के संदर्भ में भावनाओं के सकारात्मक एवं नकारात्मक आयामों को स्पष्ट करना और उनके संतुलित तथा असंतुलित स्वरूपों के सामाजिक, राजनीतिक और मानसिक परिणामों का मूल्यांकन करना।

सैद्धांतिक आधार :

मानव सभ्यता के विकास में भावनाएँ सदैव एक केंद्रीय भूमिका निभाती रही हैं। दर्शन, राजनीति और मनोविज्ञानकृ इन तीनों ही क्षेत्रों में भावनाओं का प्रभाव गहरा और बहुआयामी रहा है। दार्शनिक दृष्टिकोण से भावनाएँ केवल व्यक्तिगत अनुभव नहीं हैं, बल्कि वे जीवन–दर्शन, नैतिकता और मूल्य–निर्माण की दिशा को भी निर्धारित करती हैं।

दार्शनिक परिप्रेक्ष्य :

1. अरस्तू की कृति Rhetoric वाक्–कला या प्रभावित करने की कला पर आधारित एक दार्शनिक ग्रंथ है,

जिसमें उन्होंने यह समझाया कि मनुष्य दूसरों को तर्क, भावना और चरित्र के माध्यम से कैसे प्रभावित करता है।

इस ग्रंथ में अरस्तू ने भाषण के तीन प्रकार– विचारात्मक, न्यायिक और प्रशंसात्मक बताए हैं। उन्होंने कहा कि प्रभावशाली वक्तृत्व के लिए केवल तर्क पर्याप्त नहीं, बल्कि श्रोता की भावनाओं और वक्ता की नैतिक विश्वसनीयता का भी महत्त्व है। Rhetoric का दूसरा भाग विशेष रूप से भावनाओं के मनोविज्ञान को समझने में सहायक है, जहाँ अरस्तू ने क्रोध, भय, दया, और प्रेम जैसी भावनाओं के प्रभाव को विस्तार से समझाया। यह कृति दिखाती है कि राजनीति, न्याय और समाज में निर्णय केवल बुद्धि से नहीं, बल्कि भावनाओं और नैतिक मूल्यों से भी संचालित होते हैं, जिससे Rhetoric आज भी दर्शन और राजनीतिक मनोविज्ञान के अध्ययन में अत्यंत प्रासंगिक है।[1]

2. इमैनुएल कांट ने नैतिक दर्शन में भावनाओं को विवेक के साथ जोड़कर देखा और यह माना कि भावनाएँ मानव स्वतंत्रता एवं नैतिक कर्तव्य की चेतना को गढ़ने में सहायक हो सकती हैं।[2]

3. लिन हंट द्वारा 'पॉलिटिक्स, कल्चर, एंड क्लास इन द फ्रेंच में राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में भावनाएँ सत्ता, नेतृत्व और जन–आंदोलनों की प्रेरक शक्ति रही हैं। फ्रांसीसी क्रांति और भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन जैसे ऐतिहासिक उदाहरण यह सिद्ध करते हैं कि सामूहिक भावनाएँ सामाजिक परिवर्तन की दिशा में निर्णायक भूमिका निभाती हैं।[3]

4. Affective Intelligence and Political Judgment पारंपरिक तर्कसंगत राजनीतिक व्यवहार के विरुद्ध एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। लेखक बताते हैं कि मनुष्य के राजनीतिक निर्णय केवल तर्क पर नहीं, बल्कि भावनाओं, आदतों और तर्क के संतुलन पर आधारित होते हैं। वे तंत्रिका–विज्ञान और मनोविज्ञान के शोधों से यह सिद्ध करते हैं कि जब व्यक्ति राजनीतिक निर्णय लेता है 'जैसे किसी दल का समर्थन करना, प्रतीकात्मक राजनीति में विश्वास रखना या नकारात्मक प्रचार से प्रभावित होना' तो उसकी भावनाएँ उसके विवेक और आदतों को नियंत्रित करती हैं। इस प्रकार, पुस्तक का मुख्य विचार यह है कि राजनीतिक व्यवहार को समझने के लिए हमें "सिर्फ तर्कशील नागरिक" की कल्पना से आगे बढ़कर एक भावनात्मक और वास्तविक मानव मॉडल अपनाना चाहिए, जिसमें भावनाएँ भी निर्णय प्रक्रिया का महत्वपूर्ण हिस्सा हों। आधुनिक राजनीतिक मनोविज्ञान यह बताता है कि भावनाएँ केवल व्यक्तियों को ही नहीं, बल्कि पूरे समाज को प्रभावित करती हैं और यह प्रभाव नीतियों, विचारधाराओं तथा सत्ता–संघर्ष में परिलक्षित होता है।[4]

5. **एकमैन पॉल, भावनाएँ उजागर :** चेहरों और भावनाओं को पहचानकर संप्रेषण और भावनात्मक जीवन को सुधारना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भावनाओं का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि वे व्यक्ति की प्रेरणा, संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं और सामाजिक संबंधों को दिशा प्रदान करती हैं। आधुनिक मनोविज्ञान भावनाओं को एक मानसिक एवं जैविक संरचना मानता है, जो न केवल व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन बल्कि उसके सामाजिक और राजनीतिक

1. अरस्तु, द आर्ट ऑफ रिटोरिक (367 ईसा पूर्व) चौथी शताब्दी ईसा पूर्व
2. इम्मानुएल कांट, नैतिकता के मीमांसा के आधारभूत सिद्धांत (अनुवाद : मैरी ग्रेगर) (कैम्ब्रिज : कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1998)।
3. लिन एवेरी हंट, फ्रांसीसी क्रांति में राजनीति, संस्कृति और वर्ग (बर्कले : यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, 1984)।
4. जॉर्ज ई. मार्कस, डब्ल्यू. रसेल न्युमैन, और माइकल मक्क्यून, भावनात्मक बुद्धिमत्ता और राजनीतिक

व्यवहार को भी गहराई से प्रभावित करती है।[5]

6. दार्शनिक तर्कवादियों के विरुद्ध, ह्यूम का तर्क है कि तर्क के बजाय भावावेश, मानव व्यवहार का कारण बनता है। वह आगमन की प्रसिद्ध समस्या का परिचय देते हुए तर्क देते हैं कि आगमनात्मक तर्कणा और कार्य–कारण और प्रभाव के संबंध में हमारी मान्यताओं व विश्वासों को तर्कबुद्धि द्वारा उचित नहीं ठहराया जा सकता है, इसके बजाय, आगमन और कारणता में हमारा विश्वास मानसिक आदत और रीति–रिवाज व प्रथा के कारण होता है। ह्यूम नैतिकता के एक भावुकतावादी विवरण का बचाव करते हुए तर्क देते हैं कि नैतिकता तर्क के बजाय भावना और भावावेश, जूनून पर आधारित है, और प्रसिद्ध रूप से घोषणा करते हुए कहा कि 'तर्कबुद्धि (Reason) केवल भावावेश का गुलाम है और होना चाहिए'। ह्यूम व्यक्तिगत तादात्म्य का संशयात्मक सिद्धांत और स्वतंत्र संकल्प का संयोज्यवादी विवरण भी प्रस्तुत करते हैं। ह्यूम का अनुभववाद : डेविड ह्यूम ने दृढ़ता से कहा कि 'तर्क भावनाओं का दास है' (Reason is, and ought only to be, the slave of the passions)। यह दृष्टिकोण भावनाओं को नैतिक और सामाजिक निर्णयों की जड़ में स्थापित करता है।[6]

राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य :

1. **सामूहिक भावनाएँ और आंदोलन :** लिन हंट द्वारा 'पॉलिटिक्स, कल्चर, एंड क्लास इन द फ्रेंच रेवोल्यूशन' में यह सिद्ध किया गया कि सामूहिक भावनाएँ सामाजिक परिवर्तन की दिशा में निर्णायक भूमिका निभाती हैं। फ्रांसीसी क्रांति और भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन जैसे ऐतिहासिक उदाहरण इसकी पुष्टि करते हैं।[7]

2. **भावनात्मक बुद्धिमत्ता और राजनीतिक निर्णय :** 'Affective Intelligence and Political Judgment' पारंपरिक तर्कसंगत राजनीतिक व्यवहार के विरुद्ध एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। लेखक बताते हैं कि राजनीतिक निर्णय केवल तर्क पर नहीं, बल्कि भावनाओं, आदतों और तर्क के संतुलन पर आधारित होते हैं। तंत्रिका–विज्ञान के शोधों से यह सिद्ध होता है कि भावनाएँ विवेक और आदतों को नियंत्रित कर राजनीतिक व्यवहार को आकार देती हैं।[8]

3. **पॉल एकमैन और सार्वभौमिक भावनाएँ :** मनोवैज्ञानिक पॉल एकमैन ने सार्वभौमिक भावनाओं (आनन्द, दुःख, क्रोध, भय, आश्चर्य, घृणा) को जैविक दृष्टि से सार्वभौमिक माना, जो व्यक्ति की प्रेरणा, संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं और सामाजिक संबंधों को दिशा प्रदान करती हैं।[9]

4. **'जुनूनिज्म' का संदर्भ :**

लेखक की अप्रकाशित कृति 'जुनूनिज्म : एक वैश्विक दार्शनिक सिद्धांत' पर आधारित शोध पत्र 'जुनूनिज्म

---

5. निर्णय (शिकागो : यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, 2000)।
6. एकमैन पॉल, भावनाएँ उजागर : चेहरों और भावनाओं को पहचानकर संप्रेषण और भावनात्मक जीवन को सुधारना (न्यूयॉर्क : टाइम्स बुक्स, 2003)।
7. विकिपीडिया, मानव सवभाव का ग्रन्थ, hi.wikipedia.org
8. लिन एवेरी हंट, फ्रांसीसी क्रांति में राजनीति, संस्कृति और वर्ग (बर्कले : यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, 1984)।
9. जॉर्ज ई. मार्कस एवं अन्य 'भावनात्मक बुद्धिमत्ता और राजनीतिक निर्णय' (यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, 2000)।

: एक वैश्विक दार्शनिक सिद्धांत की मौलिक शब्द–संरचना और विश्लेषण' में भावनाओं की दार्शनिक और राजनीतिक व्याख्या को एक नया आयाम प्रदान करता है। यह शोध भावनाओं को केवल व्यक्तिगत मनोवैज्ञानिक परिघटना के रूप में नहीं, बल्कि एक सामाजिक–राजनीतिक शक्ति के रूप में देखता है। यह बताता है कि भावनाएँ नकारात्मक विचारों को सकारात्मक दृष्टिकोण में बदलकर सामाजिक जीवन में बदलाव लाती हैं।[10]

यही दृष्टिकोण इस शोध–पत्र का आधार है, जिसमें भावनाओं का दार्शनिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

भावना : संकल्पना और परिभाषा :

'भावना' (Emotion) मनुष्य के मानसिक जीवन की एक मूलभूत प्रवृत्ति है। संस्कृत शब्द भाव से व्युत्पन्न इसका अर्थ है– अंतरंग अनुभव या मन की स्थिति। यह केवल जैविक प्रतिक्रिया नहीं, बल्कि मानसिक, सामाजिक और सांस्कृतिक कारकों से निर्मित एक जटिल प्रक्रिया है।

- **दार्शनिक आयाम :** भावना को प्रायः तीन स्तरों पर समझा गया है – (1) संवेगात्मक प्रतिक्रिया (Affective Response), (2) संज्ञानात्मक निर्णय (Cognitive Apraisal), और (3) मूल्य–निष्ठ अभिव्यक्ति (Value-based Expression)।
- **मनोवैज्ञानिक आयाम :** मनोविज्ञान इसे शारीरिक उत्तेजना (Physiological Arousal) और मानसिक प्रतिक्रिया (Mental Response) का संयुक्त रूप मानता है, जो व्यक्ति की प्रेरणा और सामाजिक संबंधों को दिशा देती है।
- **भारतीय परंपरा :** नाट्यशास्त्र के आचार्य भरतमुनि ने भावनाओं को रसा और भाव की अवधारणा से जोड़ा और बताया कि वे न केवल व्यक्तिगत अनुभव हैं बल्कि सामूहिक सौंदर्यबोध की रचना करते हैं।[11]

अतः, भावना को केवल मनोवैज्ञानिक अनुभव मानना पर्याप्त नहीं है, यह मनुष्य के दार्शनिक चिंतन, सामाजिक व्यवहार और राजनीतिक क्रियाशीलता का भी मूल आधार है।

दार्शनिक दृष्टि से भावनाएँ :

दार्शनिक विमर्श में भावनाओं की भूमिका प्राचीन काल से ही बहस का विषय रही है। भावनाओं को अक्सर केवल इन्द्रिय–जन्य अनुभव या मानसिक प्रतिक्रिया के रूप में देखा गया, किंतु आधुनिक दर्शन यह मान्यता प्रस्तुत करता है कि भावनाएँ मूल्य–निर्माण, नैतिक संवेदनशीलता और सामाजिक जीवन की संरचना में निर्णायक स्थान रखती हैं।

- **अरस्तु और सद्‌गुण :** प्राचीन यूनानी दार्शनिक अरस्तू ने भावनाओं को मनुष्य के नैतिक आचरण का अभिन्न अंग माना। उनके अनुसार, उचित भावनाएँ (Right Emotions) न केवल नैतिक जीवन को संतुलित करती हैं बल्कि 'सद्‌गुण' (Virtue) की प्राप्ति में भी सहायक होती हैं।[12]

---

10. एकमैन पॉल, भावनाएँ उजागर : चेहरों और भावनाओं को पहचानकर संप्रेषण और भावनात्मक जीवन को सुधारना, (टाइम्स बुक्स)।
11. एम.एम. अंसारी, जुनूनिज्म : एक वैश्विक दार्शनिक सिद्धांत की मौलिक शब्द–संरचना और विश्लेषण, (Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115 Sept. 2025, Vol. 22, Issue-3(1), Page No.167-176
12. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, अनुवाद : मनोमोहन घोष (कोलकाताः एशियाटिक सोसाइटी,1951), अध्याय 6–7।

- **एक्विनास और नैतिक विकास :** मध्यकालीन ईसाई दार्शनिक सेंट ऑगस्टीन और थॉमस एक्विनास ने भावनाओं को आत्मा की गहराई में स्थित ईश्वर के साथ संबंध की कड़ी माना। एक्विनास ने विशेष रूप से यह तर्क दिया कि भावनाएँ नैतिक निर्णय का केवल व्यवधान नहीं, बल्कि उचित दिशा में निर्देशित होने पर वे मानव के नैतिक विकास को समृद्ध करती हैं।[13]
- **समकालीन विमर्श :** मार्था नुसबॉम जैसे समकालीन दार्शनिकों ने भावनाओं को 'मूल्य–आधारित निर्णय' (Value-Based Judgment) के रूप में परिभाषित किया है। इसका अर्थ है कि भावनाएँ हमें यह बताती हैं कि हमें किन चीजों को महत्व देना चाहिए, जिससे वे नैतिक जीवन के लिए अनिवार्य बन जाती हैं।[14]

इस प्रकार, दार्शनिक दृष्टिकोण से भावनाएँ केवल क्षणिक प्रतिक्रियाएँ नहीं, बल्कि मानव के नैतिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन को दिशा देने वाली शक्ति हैं।

राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में भावनाएँ :

भावनाएँ केवल निजी अनुभव तक सीमित नहीं होतीं, बल्कि वे सामाजिक और राजनीतिक संरचनाओं के निर्माण और संचालन में भी गहरी भूमिका निभाती हैं। राजनीति, मूलतः, केवल शक्ति–संघर्ष या नीति–निर्माण का क्षेत्र नहीं है, यह मानवीय भावनाओं, आकांक्षाओं और भय से भी संचालित होती है।

- **मैकियावेली और सत्ता :** मैकियावेली ने जेम च्तपदबम में सत्ता प्राप्ति और संरक्षण में भावनाओं 'विशेषकर भय और आशा' को निर्णायक साधन माना। उनका मानना था कि शासक को प्रेम की अपेक्षा भय का पात्र बनना अधिक सुरक्षित है, क्योंकि भय अधिक नियंत्रणकारी भावना है।[15]
- **कार्ल श्मिट और ध्रुवीकरण :** कार्ल श्मिट ने राजनीतिक को "मित्र–शत्रु भेद" (Friend–Enemy Distinction) से परिभाषित किया, जो मूलतः भावनात्मक ध्रुवीकरण का ही रूप है। राजनीतिक पहचान अक्सर एक समूह के प्रति समर्थन और दूसरे समूह के प्रति विरोध की सामूहिक भावना पर टिकी होती है।[16]
- **भारतीय राजनीतिक परंपरा :** महात्मा गांधी का सत्याग्रह इसी भावनात्मक आधार पर टिका था–जिसमें अहिंसा और करुणा जैसी भावनाओं ने राजनीतिक संघर्ष को नैतिक वैधता प्रदान की।[17]

समकालीन प्रभाव : आधुनिक राजनीति में भावनाएँ प्रायः दो विपरीत रूपों में प्रकट होती हैं :

- **सकारात्मक पक्ष :** सामाजिक एकजुटता, देशभक्ति, लोकतांत्रिक सहभागिता और न्याय की आकांक्षा को बढ़ावा देना।
- **नकारात्मक पक्ष :** अतिरंजित राष्ट्रवाद, साम्प्रदायिकता, जन–उन्माद और हिंसा को जन्म देना।

जैसा कि डॉ. एम०एम० अंसारी ने रेखांकित किया है, 'राजनीतिक आंदोलनों में भावनाएँ केवल क्षणिक

---

13. शिवानन्द शर्मा, 'अरस्तु का तर्कशास्त्र', हिंदी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश।
14. थॉमस एक्विनास, सुम्मा थियोलॉजिका, अनुवाद : इंग्लिश डोमिनिकन प्रांत के फादर्स (न्यूयॉर्क : बेंजिगर ब्रदर्स, 1947), भाग I–II, प्रश्न 22–48।
15. नुसबॉम, मार्था सी., विचारों के उथल–पुथल : भावनाओं की बुद्धिमत्ता (कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2001)।
16. आलोक कुमार, निकोलो मैकियावेली की द प्रिन्स का हिंदी अनुवाद, (Create Space Independent Publishing Platform, 2015)
17. कार्ल श्मिट, द कांसेप्ट ऑफ पोलिटिकल (The University of Chicago Press ,1932)

उत्तेजना नहीं, बल्कि स्थायी वैचारिक ऊर्जा का निर्माण कर सकती हैं।'[18]

राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में भावनाओं का अध्ययन केवल सत्ता या नीति की समझ तक सीमित नहीं है, बल्कि यह इस बात का मूल्यांकन भी है कि भावनाएँ किस प्रकार सामाजिक व्यवस्था और अव्यवस्था दोनों को प्रभावित करती हैं।

निष्कर्ष :

इस शोध–पत्र के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि भावनाएँ केवल व्यक्तिगत अनुभूति का विषय नहीं हैं, बल्कि वे दर्शन, राजनीति और मनोविज्ञान तीनों ही क्षेत्रों में गहरी और निर्णायक भूमिका निभाती हैं।

दार्शनिक रूप से, भावनाएँ नैतिकता और मूल्य–निर्माण का आधार बनती हैं, जो मानव को केवल तर्कशील प्राणी की अपेक्षा एक नैतिक रूप से संवेदनशील प्राणी बनाती हैं। राजनीतिक रूप से, वे सामाजिक आंदोलनों, नेतृत्व और सत्ता–संघर्षों का प्रेरक तत्व होती हैं, जिससे राजनीतिक निर्णय केवल तर्कसंगतता पर नहीं, बल्कि भावनात्मक प्रतिक्रिया पर भी निर्भर करते हैं।

यह भी सिद्ध हुआ कि भावनाओं का अतिरेक कट्टरता, हिंसा और मानसिक असंतुलन जैसे नकारात्मक परिणाम उत्पन्न कर सकता है, जबकि इनका संतुलित और रचनात्मक उपयोग समाज तथा व्यक्ति दोनों के विकास में सकारात्मक भूमिका निभाता है। इसी संदर्भ में, 'जुनूनिज्म' यह स्थापित करता है कि भावनाओं की सही दिशा और दार्शनिक–संयोजन उन्हें केवल मानसिक स्थिति से आगे बढ़ाकर सामाजिक–राजनीतिक चेतना का रूप दे सकता है।[19]

अतः, निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भावनाओं का गहन अध्ययन केवल मनोवैज्ञानिक या राजनीतिक विमर्श तक सीमित न रहकर, एक समेकित दार्शनिक दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए, जिससे उनके सकारात्मक पक्ष को उजागर किया जा सके और नकारात्मक प्रवृत्तियों को लोकतांत्रिक मूल्यों के अनुरूप संतुलित किया जा सके।

सन्दर्भ (References)

1. अरस्तु, द आर्ट ऑफ रिटोरिक, 367 ईसा पूर्व.
2. कांट, इम्मानुएल, नैतिकता के मीमांसा के आधारभूत सिद्धांत, अनुवाद : मैरी ग्रेगर, कैम्ब्रिज : कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1998.
3. लिन, हंट, फ्रांसीसी क्रांति में राजनीति, संस्कृति और वर्ग, बर्कले : यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, 1984.
4. मार्कस, जॉर्ज ई. डब्ल्यू. रसेल न्युमैन, और माइकल मक्क्यून, भावनात्मक बुद्धिमत्ता और राजनीतिक निर्णय, शिकागो : यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, 2000.

---

18. मोहनदास करमचंद गांधी, हिन्द सवराज, (इंडियन ओपिनियन,1909)
19. एम.एम. अंसारी, "जुनूनिज्म : एक वैश्विक दार्शनिक सिद्धांत की मौलिक शब्द–संरचना और विश्लेषण" (Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115 Sept. 2025, Vol. 22, Issue-3(1), Page No.167-176

5. पॉल, एकमैन, भावनाएँ उजागर : चेहरों और भावनाओं को पहचानकर संप्रेषण और भावनात्मक जीवन को सुधारना, न्यूयॉर्क : टाइम्स बुक्स, 2003.
6. विकिपीडिया, मानव सवभाव का ग्रन्थ, hi.wikipedia.org
7. नेल्सन, जॉन एवं अन्य 'भावनात्मक बुद्धिमत्ता और राजनीतिक निर्णय' यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, 2004.
8. अंसारी, मौ० मुजफ्फर, जुनूनिज्म' एक वैश्विक दार्शनिक सिद्धांत की मौलिक शब्द–संरचना और विश्लेषण, Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115 Sept. 2025, Vol. 22, Issue-3(1), Page No.167-176.
9. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, अनुवाद : मनोमोहन घोष, कोलकाता : एशियाटिक सोसाइटी, 1951.
10. शर्मा, शिवानन्द. अरस्तु का तर्कशास्त्र, हिंदी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, 1960.
11. एक्विनास, थॉमस. सुम्मा थियोलॉजिका, अनुवाद : इंग्लिश डोमिनिकन प्रांत के फादर्स, न्यूयॉर्क : बेंजिगर ब्रदर्स, 1947.
12. मार्था सी., नुसबॉम, विचारों के उथल–पुथल : भावनाओं की बुद्धिमत्ता. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2001.
13. कुमार, आलोक, निकोलो मैकियावेली की द प्रिन्स का हिंदी अनुवाद. Create Space Independent Publishing Platform, 201
14. श्मिट, कार्ल. द कांसेप्ट ऑफ पोलिटिकल. The University of Chicago Press ,1932.
15. गांधी, मोहनदास करमचंद. हिन्द सवराज, इंडियन ओपिनियन, 1909.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2026 Page No. : 70-79

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

ANALYZING THE ROLE OF BANKS IN PROMOTING MOBILE BANKING ADOPTION AMONG CUSTOMERS

Kiran Dattaram Jadhav, Research Scholar,
Dr. Mukesh Kumar Verma, Research Guide,
Department of Commerce,
SHRI JAGDISHPRASAD JHABARMAL TIBREWALA UNIVERSITY,
VIDYANAGARI, JHUNJHUNU, RAJASTHAN – 333010

Abstract :

This study analyzes the role of banks in promoting mobile banking adoption among customers by examining factors such as awareness campaigns, service quality, perceived security, ease of use, trust, customer support, and technological infrastructure. The study highlights how banks influence customers' attitudes and intentions toward using mobile banking through effective communication, digital literacy initiatives, and continuous technological improvements. It also discusses the challenges faced by banks, including cybersecurity concerns, resistance to technological change, and varying levels of digital literacy among customers. The findings suggest that customer trust, perceived usefulness, and bank-driven promotional strategies significantly enhance mobile banking adoption. The study concludes that banks must continue investing in secure technologies, customer education, and personalized digital services to increase mobile banking usage and improve overall customer satisfaction.

Keywords : Mobile Banking, Banks, Customer Adoption, Digital Banking, Customer Trust, Perceived Security, Technology Acceptance, Financial Technology

Introduction :

The rapid advancement of information and communication technology has transformed the global banking industry by introducing innovative digital financial services that enhance customer convenience, efficiency, and accessibility. Among these innovations, mobile banking has emerged as one of the most significant developments, enabling customers to perform banking transactions anytime

and anywhere through smartphones and mobile devices. Services such as fund transfers, balance inquiries, bill payments, mobile recharges, loan applications, and investment management can now be completed without visiting a physical bank branch. As smartphone penetration, internet connectivity, and digital literacy continue to improve worldwide, mobile banking has become an essential component of modern banking strategies. Consequently, banks are increasingly investing in digital infrastructure and customer-centric technologies to encourage the widespread adoption of mobile banking services. Mobile banking adoption has gained considerable attention from researchers, financial institutions, and policymakers because of its potential to improve financial inclusion, reduce operational costs, and enhance customer satisfaction. Despite these advantages, the rate of mobile banking adoption varies significantly across different regions and customer segments. While some customers readily embrace digital banking due to its convenience and speed, others remain reluctant because of concerns related to security, privacy, trust, technological complexity, and lack of awareness. These differences highlight that technological availability alone is insufficient to ensure successful adoption. Instead, banks play a critical role in influencing customers' perceptions, attitudes, and intentions toward using mobile banking services.

Banks serve as the primary facilitators of mobile banking adoption by developing reliable digital platforms, ensuring transaction security, educating customers, and providing continuous technical support. They design user-friendly mobile applications, implement advanced cybersecurity measures such as encryption and multi-factor authentication, and conduct awareness campaigns to build customer confidence in digital transactions. In addition, banks promote mobile banking through personalized marketing strategies, financial incentives, loyalty programs, and customer education initiatives that demonstrate the benefits and ease of using mobile banking applications. These efforts contribute to reducing customers' perceived risks while increasing their trust and willingness to adopt digital banking services.

Furthermore, customer adoption of mobile banking is influenced by several factors that are directly or indirectly shaped by banks. These include perceived usefulness, perceived ease of use, trust, service quality, system reliability, responsiveness, customer support, and perceived security. The Technology Acceptance Model (TAM), Unified Theory of Acceptance and Use of Technology (UTAUT), Diffusion of Innovation Theory (DOI), and other behavioral frameworks suggest that customers are more likely to adopt new technologies when they perceive them as beneficial, easy to use, secure, and supported by trusted institutions. Therefore, banks must continuously improve their

digital services to meet evolving customer expectations and remain competitive in an increasingly digital financial environment.

The COVID-19 pandemic further accelerated the adoption of mobile banking by encouraging contactless financial transactions and reducing dependence on traditional branch banking. During this period, banks expanded their digital services to accommodate increased customer demand while ensuring uninterrupted access to financial services. This shift demonstrated the strategic importance of mobile banking not only as a convenience but also as a resilient banking solution during times of crisis. Since then, digital banking has become an integral part of customers' financial behavior, making it essential for banks to sustain customer engagement through innovation and service excellence.

Strategies Used by Banks to Increase Mobile Banking Adoption :

Banks employ several strategies to increase customer adoption.

Digital Marketing Campaigns :

Banks promote mobile banking through television advertisements, social media, email marketing, SMS campaigns, and influencer partnerships. Marketing campaigns highlight convenience, security, and available features.

Simplified Registration Process :

Lengthy registration procedures discourage new users. Banks simplify onboarding by allowing digital account verification, biometric authentication, and instant registration.

Employee Training :

Bank employees act as ambassadors for mobile banking services. Proper training enables employees to educate customers and assist them with app installation and usage.

Partnerships with Mobile Service Providers :

Banks collaborate with telecommunications companies to improve accessibility and reduce internet-related barriers. Some banks offer free data usage for banking applications.

Customer Feedback Systems :

Banks continuously collect customer feedback through surveys, app reviews, and customer support interactions. Feedback helps improve application performance and customer satisfaction.

Challenges Faced by Banks :

Despite significant progress, banks face numerous challenges in promoting mobile banking adoption.

Cybersecurity Threats :

Increasing cyberattacks, phishing scams, malware, and identity theft remain major concerns. Banks must continuously invest in cybersecurity infrastructure to protect customer information.

Digital Divide :

Not all customers have access to smartphones or reliable internet connectivity. Rural populations and low-income groups may experience limited access to digital banking services.

Resistance to Change :

Some customers prefer traditional banking methods due to habit, lack of confidence, or fear of technology. Elderly customers, in particular, may hesitate to adopt mobile banking.

Technical Issues :

Application crashes, slow loading times, server outages, and transaction failures reduce customer satisfaction and discourage adoption.

Regulatory Compliance :

Banks must comply with evolving government regulations related to data protection, cybersecurity, anti-money laundering (AML), and consumer protection. Compliance requires continuous investment and operational adjustments.

Role of Banks in Promoting Mobile Banking Adoption :

1. Creating Customer Awareness :

Banks promote mobile banking by educating customers about its features, benefits, and ease of use. They conduct awareness campaigns through advertisements, social media, SMS alerts, emails, and branch demonstrations. Financial literacy programs also help customers understand how to use mobile banking safely and effectively.

2. Ensuring Security and Privacy :

Security is one of the primary concerns affecting mobile banking adoption. Banks encourage customer confidence by implementing advanced security measures such as two-factor authentication (2FA), biometric authentication, encryption, one-time passwords (OTPs), fraud detection systems, and secure login processes. Regular security updates and customer education on cyber safety further enhance trust.

3. Developing User-Friendly Applications :

Banks invest in designing mobile banking applications that are simple, fast, and easy to navigate. Features such as multilingual support, intuitive interfaces, quick transaction options, personalized dashboards, and accessibility tools make mobile banking more convenient for users across different

age groups and educational backgrounds.

4. Providing Reliable Customer Support :

Efficient customer support encourages users to adopt mobile banking without hesitation. Banks offer 24/7 helplines, live chat, chatbots, email support, and in-branch assistance to resolve technical issues and answer customer queries promptly. Quick resolution of problems increases customer satisfaction and confidence.

5. Offering Incentives and Rewards :

Banks motivate customers to use mobile banking by providing cashback offers, discounts, reward points, lower transaction fees, and exclusive digital banking benefits. Such promotional schemes encourage first-time users and increase the frequency of digital transactions.

6. Improving Digital Infrastructure :

Banks continuously upgrade their technological infrastructure to ensure fast, secure, and uninterrupted mobile banking services. Regular software updates, server enhancements, and system maintenance improve service quality and reduce technical failures.

7. Building Customer Trust :

Trust is a key factor in mobile banking adoption. Banks strengthen customer trust by maintaining transparency in transactions, ensuring data privacy, complying with regulatory standards, and communicating clearly about security measures and policies. A trustworthy banking environment encourages long-term use of digital services.

8. Encouraging Financial Inclusion :

Banks promote mobile banking among rural and underserved populations by offering simplified digital banking services, low-cost accounts, regional language support, and partnerships with government financial inclusion programs. These efforts help expand access to banking services for people with limited physical access to bank branches.

9. Conducting Training and Demonstrations :

Many banks organize workshops, customer education camps, and live demonstrations to teach customers how to download, register, and use mobile banking applications. Hands-on training reduces fear of technology and increases confidence among new users, particularly senior citizens and first-time smartphone users.

10. Collaborating with FinTech Companies :

Banks collaborate with financial technology (FinTech) firms to introduce innovative features

such as QR code payments, digital wallets, AI-powered customer support, personal finance management tools, and instant payment systems. These innovations improve the overall mobile banking experience and attract more users.

Objectives :

1. To examine customers' awareness regarding mobile banking services offered by banks.
2. To identify the factors influencing customers' adoption of mobile banking.
3. To analyze the role of banks in promoting mobile banking through awareness programs, customer support, and security measures.
4. To evaluate customers' satisfaction with mobile banking services.
5. To suggest measures for improving mobile banking adoption among customers.

Research Methodology :

The study adopts a descriptive research design to understand the role of banks in promoting mobile banking adoption among customers. Descriptive research helps in collecting factual information regarding customers' perceptions, experiences, and satisfaction with mobile banking services.

A sample of 200 bank customers was selected using convenience sampling.Convenience sampling was adopted because respondents were easily accessible and represented users of different banks.

RESULTS AND DISCUSSION :

Table 1: Demographic Profile of Respondents

Demographic Variable	Category	Frequency	Percentage (%)
Gender	Male	112	56
	Female	88	44
Age	18–25 Years	48	24
	26–35 Years	72	36
	36–45 Years	50	25
	Above 45 Years	30	15
Education	Graduate	90	45
	Postgraduate	70	35
	Others	40	20

The results indicate that 56% of respondents are male, while 44% are female. Most respondents (36%) belong to the age group of 26–35 years, indicating that young adults are the primary users of mobile banking. Furthermore, 45% are graduates, suggesting that educated customers are more likely to adopt digital banking services.

Table 2 : Level of Awareness about Mobile Banking Services

Awareness Source	Frequency	Percentage (%)
Bank Staff	60	30
Social Media	45	22.5
Friends & Family	35	17.5
Advertisements	40	20
Bank Website/App	20	10
Total	**200**	**100**

The findings reveal that 30% of respondents became aware of mobile banking through bank staff, making banks the most important source of awareness. Social media contributes 22.5%, while advertisements account for 20%. The findings demonstrate that banks play a significant role in educating customers about digital banking services through direct interaction.

Table 3 : Factors Influencing Mobile Banking Adoption

Factor	Mean Score	Rank
Convenience	4.58	I
Security	4.42	II
Ease of Use	4.31	III
Availability of Customer Support	4.12	IV
Low Transaction Cost	3.95	V

Convenience emerges as the most influential factor with a mean score of 4.58, followed by security (4.42). Customers prefer mobile banking because it enables them to conduct banking transactions anytime and anywhere. Security remains a major concern, emphasizing the importance of banks implementing secure authentication methods. Customer support and transaction costs also influence adoption but to a comparatively lesser extent.

Table 4 : Role of Banks in Promoting Mobile Banking

Statement	Strongly Agree	Agree	Neutral	Disagree	Strongly Disagree	Mean
Banks provide adequate awareness programs	70	80	25	15	10	3.93
Banks ensure secure transactions	90	70	20	12	8	4.11
Bank staff provide proper guidance	75	78	24	15	8	3.99
Banks regularly update mobile banking apps	82	74	22	14	8	4.04
Banks resolve customer complaints promptly	65	82	28	18	7	3.90

The results indicate positive customer perceptions regarding the role of banks in promoting mobile banking. The highest mean score (4.11) is obtained for transaction security, suggesting that customers trust banks' security mechanisms. Regular application updates (4.04) and customer guidance (3.99) also receive favorable responses. Complaint resolution has the lowest mean score (3.90), indicating room for improvement in customer service.

Table 5 : Customer Satisfaction with Mobile Banking Services

Satisfaction Level	Frequency	Percentage (%)
Highly Satisfied	72	36
Satisfied	86	43
Neutral	22	11
Dissatisfied	14	7
Highly Dissatisfied	6	3
Total	**200**	**100**

The majority of respondents express satisfaction with mobile banking services. 43% are satisfied, while 36% are highly satisfied, indicating that nearly four-fifths of customers have positive experiences. Only 10% report dissatisfaction, suggesting that banks have successfully implemented user-friendly mobile banking services, although improvements are still required in certain areas.

The findings demonstrate that banks have become key drivers in promoting mobile banking

adoption. The increasing digitalization of banking services has transformed traditional banking practices by providing customers with greater convenience, accessibility, and efficiency. Banks have invested heavily in digital infrastructure, mobile applications, cybersecurity systems, and customer education initiatives to encourage wider adoption of mobile banking.

The demographic analysis indicates that younger and educated customers are more likely to adopt mobile banking. Individuals aged between 26 and 35 years constitute the largest proportion of users because they are technologically aware and regularly use smartphones and internet-based services. Higher educational attainment also contributes to greater confidence in using digital financial platforms. These findings align with previous studies showing that education and digital literacy positively influence technology adoption.

Awareness is another critical factor in the successful adoption of mobile banking. The results reveal that bank staff are the primary source of customer awareness, highlighting the importance of direct communication between banks and customers. Banks organize awareness campaigns, provide demonstrations, distribute brochures, and educate customers during branch visits. Social media and advertisements further strengthen awareness by reaching wider audiences and promoting the convenience and security of mobile banking applications.

Conclusion :

The study concludes that banks play a vital role in promoting the adoption of mobile banking among customers through the effective delivery of secure, reliable, and user-friendly digital services. The findings indicate that factors such as customer awareness, trust, perceived security, ease of use, service quality, and continuous technological innovation significantly influence customers' willingness to adopt and regularly use mobile banking services. Banks that invest in robust digital infrastructure, provide responsive customer support, and conduct awareness and financial literacy programs are more successful in encouraging customers to embrace mobile banking.

Furthermore, the research highlights that customer confidence in the safety and privacy of mobile transactions remains a key determinant of adoption. Banks must therefore prioritize cybersecurity measures, transparent communication, and prompt resolution of customer concerns to strengthen trust. The availability of convenient features, seamless user experience, and personalized digital services also enhances customer satisfaction and promotes continued usage.

References :

1. Alalwan, A. A., Dwivedi, Y. K., Rana, N. P., & Williams, M. D. (2016) Consumer adoption of mobile banking in Jordan: Examining the role of usefulness, ease of use, perceived risk, and

self-efficacy. Journal of Enterprise Information Management, 29(1), 118–139.
2. Al-Jabri, I. M., & Sohail, M. S. (2012) Mobile banking adoption: Application of diffusion of innovation theory. Journal of Electronic Commerce Research, 13(4), 379–391.
3. Dwivedi, Y. K., Rana, N. P., Jeyaraj, A., & Williams, M. D. (2019) Re-examining the unified theory of acceptance and use of technology (UTAUT): Towards a revised theoretical model. Information Systems Frontiers, 21(3), 719–734.
4. Gu, J.-C., Lee, S.-C., & Suh, Y.-H. (2009) Determinants of behavioral intention to mobile banking. Expert Systems with Applications, 36(9), 11605–11616.
5. Kim, G., Shin, B., & Lee, H. G. (2009) Understanding dynamics between initial trust and usage intentions of mobile banking. Information Systems Journal, 19(3), 283–311.
6. Laforet, S., & Li, X. (2005) Consumers' attitudes towards online and mobile banking in China. International Journal of Bank Marketing, 23(5), 362–380.
7. Luarn, P., & Lin, H.-H. (2005) Toward an understanding of the behavioral intention to use mobile banking. Computers in Human Behavior, 21(6), 873–891.
8. Oliveira, T., Faria, M., Thomas, M. A., & Popovic, A. (2014) Extending the understanding of mobile banking adoption: When UTAUT meets TTF and ITM. International Journal of Information Management, 34(5), 689–703.
9. Shaikh, A. A., &Karjaluoto, H. (2015) Mobile banking adoption: A literature review. Telematics and Informatics, 32(1), 129–142.
10. Venkatesh, V., Morris, M. G., Davis, G. B., & Davis, F. D. (2003) User acceptance of information technology: Toward a unified view. MIS Quarterly, 27(3), 425–478.
11. Venkatesh, V., Thong, J. Y. L., & Xu, X. (2012) Consumer acceptance and use of information technology: Extending the unified theory of acceptance and use of technology. MIS Quarterly, 36(1), 157–178.
12. Zhou, T. (2011). An empirical examination of initial trust in mobile banking. Internet Research, 21(5), 527–540. https://doi.org/10.1108/10662241111176353
13. Zhou, T. (2012). Understanding users' initial trust in mobile banking: An elaboration likelihood perspective. Computers in Human Behavior, 28(4), 1518–1525.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2026 Page No. : 80-87

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

हिंदी एवं नागपुरी भाषा में क्रिया के प्रकार : एक तुलनात्मक अध्ययन

उषा कुमारी
वरिष्ठ शोधार्थी, नागपुरी विभाग
रांची विश्वविद्यालय रांची।

सारांश :

भाषा की संरचना में क्रिया का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। क्रिया के माध्यम से किसी कार्य के करने, होने, घटित होने अथवा किसी अवस्था का बोध होता है। वाक्य में कर्ता, कर्म और अन्य पदों के साथ क्रिया का संबंध स्थापित होता है तथा इसी के माध्यम से काल, कार्य की स्थिति और वाक्यगत अर्थ स्पष्ट होता है। हिंदी और नागपुरी दोनों भारतीय आर्य भाषाएँ हैं, इसलिए इनके क्रिया–तंत्र में अनेक समानताएँ दिखाई देती हैं, किंतु नागपुरी की क्रिया–व्यवस्था में अपनी विशिष्ट रूपात्मक एवं प्रयोगगत विशेषताएँ भी विद्यमान हैं।

प्रस्तुत शोध–आलेख में हिंदी और नागपुरी की क्रिया–व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। नागपुरी के संदर्भ में नागपुरी (सदानी) व्याकरण के अध्याय–11 में प्रस्तुत क्रिया–वर्गीकरण को विशेष आधार बनाया गया है। उक्त व्याकरण में क्रिया को रचना के आधार पर सकर्मक और अकर्मक तथा रूप के आधार पर प्रेरणार्थक, संयुक्त, सहायक, नामबोधक और पूर्वकालिक क्रिया आदि के रूप में विवेचित किया गया है। सकर्मक क्रिया के अंतर्गत एककर्मक और द्विकर्मक क्रिया का भी उल्लेख मिलता है।

बीज शब्द : हिंदी, नागपुरी, क्रिया, सकर्मक, अकर्मक, एककर्मक, द्विकर्मक, प्रेरणार्थक, संयुक्त क्रिया, सहायक क्रिया, नामबोधक क्रिया, पूर्वकालिक क्रिया।

प्रस्तावना :

भाषा मनुष्य के विचारों, अनुभूतियों और क्रियाकलापों को अभिव्यक्त करने का प्रमुख माध्यम है। भाषा में प्रयुक्त विभिन्न शब्द–भेदों में क्रिया का स्थान विशेष है, क्योंकि क्रिया के बिना अधिकांश वाक्यों में कार्य अथवा घटना की पूर्ण अभिव्यक्ति संभव नहीं होती। क्रिया के माध्यम से किसी व्यक्ति या वस्तु के द्वारा किए जाने वाले कार्य, उसकी अवस्था तथा किसी घटना के घटित होने का बोध होता है।

नागपुरी (सदानी) व्याकरण में क्रिया को व्याकरण का प्रमुख अंग माना गया है। प्रस्तुत स्रोत के अध्याय–11 में कहा गया है कि जिस शब्द से किसी काम के होने या किए जाने का बोध होता है, उसे क्रिया कहा जाता है। इसमें यह भी बताया गया है कि नागपुरी में क्रिया की संरचना को समझने के लिए धातु, संज्ञा और विशेषण से बनने वाले क्रिया–रूपों का अध्ययन आवश्यक है।

इस दृष्टि से नागपुरी क्रिया का अध्ययन केवल हिंदी व्याकरण की अवधारणाओं को नागपुरी पर लागू करके नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि नागपुरी के अपने व्याकरणिक स्वरूप और भाषिक प्रयोगों को आधार बनाकर किया जाना आवश्यक है।

क्रिया की संकल्पना :

क्रिया वह शब्द है जिससे किसी कार्य के करने, होने अथवा घटित होने का बोध होता है। हिंदी में 'खाना', 'पीना', 'जाना', 'आना', 'पढ़ना', 'लिखना', 'सोना' आदि क्रियाएँ हैं।

नागपुरी व्याकरण में भी क्रिया को कार्य अथवा व्यापार के बोधक शब्द के रूप में स्वीकार किया गया है। नागपुरी में क्रिया–निर्माण के संदर्भ में धातु को विशेष महत्त्व दिया गया है। व्याकरण में 'जा', 'खा', 'पी', 'मना' आदि को धातु के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है तथा धातु में प्रत्यय जोड़कर क्रिया–पद बनने की प्रक्रिया दिखाई गई है।

इस प्रकार नागपुरी क्रिया के अध्ययन में धातु को मूल आधार माना जा सकता है।

नागपुरी में क्रिया के प्रमुख भेद–

प्रस्तुत नागपुरी व्याकरण के आधार पर क्रिया के अध्ययन को दो प्रमुख आधारों पर व्यवस्थित किया जा सकता है –

(क) रचना/कर्म के आधार पर :

- सकर्मक क्रिया
- अकर्मक क्रिया

सकर्मक क्रिया के दो उपभेद :

- एककर्मक क्रिया
- द्विकर्मक क्रिया

(ख) क्रिया–रूप के आधार पर :

- प्रेरणार्थक क्रिया
- संयुक्त क्रिया
- सहायक क्रिया
- नामबोधक क्रिया
- पूर्वकालिक क्रिया

सकर्मक क्रिया :

सकर्मक क्रिया वह क्रिया है जिसके व्यापार का प्रभाव किसी कर्म पर पड़ता है अथवा जिसकी अर्थ–पूर्ति के लिए कर्म की आवश्यकता होती है।

नागपुरी व्याकरण में सकर्मक क्रिया को समझाने के लिए प्रश्नवाचक शब्दों 'का', 'के', 'केके' आदि के माध्यम से कर्म की पहचान करने की पद्धति बताई गई है। यदि क्रिया से संबंधित प्रश्न का कोई स्पष्ट उत्तर प्राप्त होता है और क्रिया का व्यापार उस कर्म पर पड़ता है, तो उसे सकर्मक क्रिया माना जाता है।

उदाहरण के रूप में –

करमा पीठा खायला।

यहाँ 'खायला' क्रिया है और 'पीठा' कर्म है। इसलिए यह सकर्मक क्रिया का उदाहरण है।

हिंदी में – राम आम खाता है।

यहाँ 'खाता है' सकर्मक क्रिया है तथा 'आम' उसका कर्म है।

तुलनात्मक दृष्टि :

हिंदी और नागपुरी दोनों में सकर्मक क्रिया की पहचान क्रिया और कर्म के संबंध के आधार पर की जा सकती है। अतः इस स्तर पर दोनों भाषाओं में स्पष्ट समानता दिखाई देती है।

- **अकर्मक क्रिया :**

जिस क्रिया के व्यापार का प्रभाव किसी कर्म पर नहीं पड़ता, उसे अकर्मक क्रिया कहा जाता है।

नागपुरी व्याकरण में अकर्मक क्रिया के संदर्भ में यह बताया गया है कि यदि क्रिया के साथ कर्म उपस्थित नहीं होता और क्रिया का व्यापार कर्ता तक ही सीमित रहता है, तो उसे अकर्मक क्रिया माना जाता है।

उदाहरण –

भउजी कांदत रहे।

यहाँ 'कांदत' क्रिया है और इसका कोई प्रत्यक्ष कर्म नहीं है। इसलिए इसे अकर्मक क्रिया के रूप में समझा जा सकता है।

हिंदी में – बच्चा रोता है।

यहाँ 'रोता है' अकर्मक क्रिया है।

सकर्मक और अकर्मक क्रिया की पहचान :

नागपुरी व्याकरण में सकर्मक एवं अकर्मक क्रिया की पहचान के लिए प्रश्न करने की पद्धति विशेष रूप से बताई गई है। 'का', 'के' या 'केके' आदि से प्रश्न करने पर यदि क्रिया से संबंधित उत्तर प्राप्त होता है तो क्रिया सकर्मक मानी जाती हैय यदि संतोषजनक उत्तर प्राप्त नहीं होता तो उसे अकर्मक माना जाता है।

उदाहरण–

गुंदुरा के बाघ हबकलक।

यहाँ 'केके हबकलक?' जैसे प्रश्न से 'गुंदुरा के' उत्तर प्राप्त होता है। इस आधार पर क्रिया के सकर्मक प्रयोग को पहचाना जाता है। दूसरी ओर ऐसे वाक्य जिनमें क्रिया के लिए कर्मगत उत्तर नहीं मिलता, अकर्मक प्रयोग की श्रेणी में आते हैं।

इससे स्पष्ट होता है कि नागपुरी व्याकरण में कर्म की उपस्थिति और क्रिया के साथ उसके संबंध को सकर्मकता की पहचान का प्रमुख आधार बनाया गया है।

सकर्मक क्रिया के उपभेद :

नागपुरी व्याकरण में सकर्मक क्रिया के दो प्रमुख उपभेद बताए गए हैं–

- **एककर्मक क्रिया :**

जिस क्रिया के साथ एक कर्म होता है, उसे एककर्मक क्रिया कहा गया है।

उदाहरण –

रानी गोटेक गीत गालका।

यहाँ 'गीत' क्रिया का कर्म है। अतः इसे एककर्मक क्रिया का उदाहरण माना गया है।

हिंदी में इसका उदाहरण–

सीता गीत गाती है।

- **द्विकर्मक क्रिया :**

जिस क्रिया के साथ दो कर्म जुड़े होते हैं, उसे द्विकर्मक क्रिया कहा गया है। नागपुरी व्याकरण में द्विकर्मक क्रिया के उदाहरण में ऐसा वाक्य दिया गया है जिसमें कार्य करने वाले व्यक्ति से संबंधित दो कर्मगत पद क्रिया से जुड़े होते हैं।

हिंदी में–शिक्षक ने विद्यार्थी को पुस्तक दी।

यहाँ 'विद्यार्थी को' और 'पुस्तक' दोनों क्रिया 'दी' से संबंधित हैं।

इस प्रकार हिंदी और नागपुरी दोनों में सकर्मक क्रिया का आगे एककर्मक एवं द्विकर्मक रूप में विश्लेषण संभव है।

प्रेरणार्थक क्रिया :

प्रेरणार्थक क्रिया वह क्रिया है जिसमें कर्ता स्वयं कार्य न करके किसी दूसरे व्यक्ति से कार्य करवाता है।

नागपुरी व्याकरण में प्रेरणार्थक क्रिया के लिए स्पष्ट रूप से बताया गया है कि जब कर्ता स्वयं कार्य नहीं करता, बल्कि दूसरे की प्रेरणा से उससे कार्य करवाता है, तब उस क्रिया को प्रेरणार्थक क्रिया कहा जाता है।

स्रोत में इसके उदाहरणों में –

जगुवायक, उठुवायक, चलुवायक, पीटुवायक, जुतुवायक, बोलुवायक

जैसे रूप दिए गए हैं।

नागपुरी में प्रेरणार्थक क्रिया के निर्माण को धातु तथा प्रत्यय के संबंध से भी समझाया गया है। उदाहरणतः 'लिख' से सामान्य क्रिया–रूप और उससे प्रेरणार्थक रूप के निर्माण की प्रक्रिया दिखाई गई है।

हिंदी में –

पढ़ना / पढ़ाना / पढ़वाना
लिखना / लिखाना / लिखवाना
चलना / चलाना / चलवाना

जैसे रूप मिलते हैं।

तुलनात्मक निष्कर्ष :

दोनों भाषाओं में दूसरे से कार्य करवाने का अर्थ प्रेरणार्थक क्रिया द्वारा व्यक्त होता है। किंतु उसके रूप–निर्माण की प्रक्रिया और प्रत्ययों का प्रयोग दोनों भाषाओं में समान नहीं है।

संयुक्त क्रिया :

जब दो क्रियाएँ मिलकर एक ऐसा क्रिया–पद बनाती हैं जिसमें दोनों के अर्थों का विशेष संबंध रहता है, तब उसे संयुक्त क्रिया कहा जाता है।

नागपुरी व्याकरण में संयुक्त क्रिया के संदर्भ में 'गिर गेलक', 'कांदेक लागलक' जैसे उदाहरण दिए गए हैं और बताया गया है कि दो क्रियाओं के मेल से संयुक्त क्रिया का निर्माण होता है।

उदाहरण –

गिऱ्+ गेलक = गिर गेलक

कांदेक्.+ लागलक = कांदेक लागलक

इसी प्रकार नागपुरी में आवेक, जायेक, रहेक, राखेक, पारेक, लेगैक, भेजेक आदि रूपों का उल्लेख संयुक्त क्रिया के संदर्भ में किया गया है।

हिंदी में :

- खा लेना
- पढ़ जाना
- बैठ जाना
- रो पड़ना
- देख लेना

आदि संयुक्त क्रिया के उदाहरण हैं।

इस प्रकार दोनों भाषाओं में संयुक्त क्रिया का प्रयोग वाक्य के अर्थ को अधिक विशिष्ट बनाने में सहायक होता है।

सहायक क्रिया :

जो क्रिया मुख्य क्रिया के अर्थ को स्पष्ट करने, उसके रूप या अवस्था को व्यक्त करने में सहायता करती है, उसे सहायक क्रिया कहा जाता है।

नागपुरी व्याकरण में सहायक क्रिया को ऐसी क्रिया बताया गया है जो मुख्य क्रिया के साथ जुड़कर उसके अर्थ को स्पष्ट करती है। स्रोत में 'खात रहे', 'जागल रहे', 'सुनत रहे' जैसे उदाहरण दिए गए हैं।

उदाहरण –

मंगरा खात रहे।

यहाँ 'खात' मुख्य क्रिया है और 'रहे' सहायक क्रिया के रूप में प्रयुक्त है।

हिंदी में – राम खाना खा रहा है।

यहाँ 'खा' मुख्य क्रिया है तथा 'रहा है' सहायक क्रियात्मक संरचना का निर्माण करता है।

नामबोधक क्रिया :

नागपुरी व्याकरण में नामबोधक क्रिया को विशेष प्रकार की संयुक्त क्रिया से अलग पहचान के साथ प्रस्तुत किया गया है। इसमें संज्ञा अथवा विशेषण के साथ क्रिया के मेल से क्रियात्मक अर्थ उत्पन्न होता है।

उदाहरण के रूप में स्रोत में –

भसम + करेक, काठ + मारेक, लाल + होवेक, वैष्णव + होवेक,

जैसे रूपों का उल्लेख किया गया है।

इससे स्पष्ट है कि नागपुरी में केवल धातु से ही क्रिया नहीं बनती, बल्कि संज्ञा अथवा विशेषण + क्रिया

के मेल से भी क्रियात्मक पदों का निर्माण होता है।

यह नागपुरी की शब्द–रचना प्रक्रिया की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

पूर्वकालिक क्रिया :

नागपुरी व्याकरण में पूर्वकालिक क्रिया को ऐसी क्रिया के रूप में समझाया गया है जिसमें कर्ता द्वारा पहले एक कार्य किया जाता है और उसके बाद दूसरा कार्य संपन्न होता है। ऐसी स्थिति में पहले संपन्न होने वाली क्रिया पूर्वकालिक क्रिया कहलाती है।

स्रोत में उदाहरण दिया गया है –

'नहायेक' आउर 'खायेक' , 'खायेक' आउर 'सुत' जैसी संरचना में पहले होने वाली क्रिया और उसके बाद होने वाली क्रिया के क्रम को स्पष्ट किया गया है।

हिंदी में – नहाकर वह खाना खाता है।

यहाँ 'नहाकर' पूर्वकालिक क्रिया है, क्योंकि नहाने का कार्य पहले और खाने का कार्य बाद में होता है।

इस प्रकार दोनों भाषाओं में कार्यों के क्रम को व्यक्त करने के लिए पूर्वकालिक क्रिया का प्रयोग पाया जाता है।

क्रियार्थक संज्ञा :

नागपुरी व्याकरण में क्रियार्थक संज्ञा को भी क्रिया–व्यवस्था से संबंधित एक महत्त्वपूर्ण रूप माना गया है। जब क्रिया अपने मूल क्रियात्मक अर्थ को बनाए रखते हुए संज्ञा के रूप में व्यवहार करती है, तब उसे क्रियार्थक संज्ञा कहा जाता है। स्रोत में इसे भाववाचक संज्ञा के प्रयोग से भी संबंधित बताया गया है।

उदाहरण –

कहना, करना, चलना, खाना, सुनना आदि रूप संदर्भ के अनुसार क्रिया और संज्ञा दोनों प्रकार का कार्य कर सकते हैं।

नागपुरी में कहबे करब, करबे करब, बचाबे करब, चलके होई, चाबे करी, बिंधबे करी, खाबे करी, सुनबे करी जैसे प्रयोग दिए गए हैं।

यहाँ क्रिया–रूप का संज्ञात्मक व्यवहार नागपुरी की विशिष्ट प्रयोगात्मक क्षमता को प्रकट करता है।

धातु और क्रिया-निर्माण :

नागपुरी क्रिया–व्यवस्था में धातु का विशेष महत्त्व है। प्रस्तुत व्याकरण में धातु को क्रिया का मूल रूप माना गया है। जा, खा, पी, मना आदि को धातु के उदाहरण के रूप में दिया गया है। धातु में प्रत्यय जोड़कर नए क्रिया–पदों का निर्माण किया जाता है।

स्रोत में धातु के साथ प्रत्यय जोड़कर क्रिया निर्माण के उदाहरण दिए गए हैं, जैसे–

पी + यक = पियक

जा + यक = जायेक, जायक

इसी प्रकार संज्ञा तथा विशेषण से भी क्रिया निर्माण की प्रक्रिया दिखाई गई है।

इससे नागपुरी में रूप–रचना की उत्पादकता का परिचय मिलता है।

हिंदी और नागपुरी क्रिया : तुलनात्मक सारणी :

आधार	**हिंदी**	**नागपुरी**
मूल इकाई	धातु	धातु
सकर्मक क्रिया	कर्म अपेक्षित	कर्म से संबंध
अकर्मक क्रिया	प्रत्यक्ष कर्म नहीं	कर्म का अभाव
एककर्मक	एक कर्म	एक कर्म
द्विकर्मक	दो कर्म	दो कर्म
प्रेरणार्थक	पढ़ाना, लिखाना आदि	लिखवायक, उठुवायक आदि
संयुक्त क्रिया	खा लेना, रो पड़ना	गिर गेलक, कांदेक लागलक आदि
सहायक क्रिया	रहा है, गया है आदि	रहे आदि
नामबोधक क्रिया	संज्ञा–विशेषण. क्रिया के प्रयोग	भसम. करेक, लाल. होवेक आदि
पूर्वकालिक	नहाकर, खाकर आदि	नहायेक आदि रूप
क्रियार्थक संज्ञा	करना, पढ़ना आदि	करबे, कहबे

हिंदी और नागपुरी क्रिया-व्यवस्था में समानताएँ :

तुलनात्मक अध्ययन से निम्नलिखित समानताएँ सामने आती हैं –

- **धातु की भूमिका :**

  दोनों भाषाओं में क्रिया–निर्माण में धातु की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

- **सकर्मक-अकर्मक विभाजन :**

  दोनों भाषाओं में क्रिया को कर्म की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति के आधार पर सकर्मक और अकर्मक रूप में देखा जा सकता है।

- **एककर्मक-द्विकर्मक संरचना :**

  सकर्मक क्रिया में एक अथवा दो कर्मों की उपस्थिति के आधार पर वर्गीकरण किया जा सकता है।

- **प्रेरणार्थकता :**

  दोनों भाषाओं में किसी दूसरे व्यक्ति से कार्य करवाने के लिए प्रेरणार्थक क्रिया का प्रयोग होता है।

- **संयुक्त एवं सहायक क्रिया :**

  दोनों भाषाओं में एक से अधिक क्रियात्मक इकाइयों के मेल से अर्थ की विशिष्ट अभिव्यक्ति होती है।

हिंदी और नागपुरी क्रिया-व्यवस्था की विशिष्टताएँ :

समानताओं के बावजूद नागपुरी की क्रिया–व्यवस्था को हिंदी की प्रतिकृति नहीं माना जा सकता। प्रस्तुत नागपुरी व्याकरण में नामबोधक क्रिया, क्रियार्थक संज्ञा तथा क्रिया–निर्माण में संज्ञा और विशेषण की भूमिका को जिस प्रकार स्वतंत्र रूप से प्रस्तुत किया गया है, वह नागपुरी की अपनी व्याकरणिक संरचना को समझने में महत्त्वपूर्ण है।

विशेष रूप से निम्न बातें उल्लेखनीय हैं –

- नागपुरी में क्रिया–निर्माण के लिए धातु के अतिरिक्त संज्ञा और विशेषण भी आधार बन सकते हैं।

- प्रेरणार्थक क्रिया के विशिष्ट रूप मिलते हैं।
- संयुक्त क्रिया में स्थानीय क्रियात्मक रूपों का प्रयोग दिखाई देता है।
- 'रहे' जैसे सहायक क्रियात्मक रूप कार्य की निरंतरता को व्यक्त करते हैं।
- पूर्वकालिक क्रिया कार्यों के क्रम को स्पष्ट करती है।
- क्रियार्थक संज्ञा के प्रयोग से क्रिया और संज्ञा के बीच रूपात्मक संबंध स्पष्ट होता है।

निष्कर्ष :

हिंदी और नागपुरी दोनों भाषाओं की क्रिया–व्यवस्था में अनेक समानताएँ हैं, किंतु नागपुरी की अपनी विशिष्ट व्याकरणिक संरचना भी है। प्रस्तुत नागपुरी (सदानी) व्याकरण के अध्याय–11 के आधार पर नागपुरी क्रिया का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि क्रिया को केवल सकर्मक और अकर्मक के आधार पर सीमित नहीं किया जा सकता। इसकी संरचना अपेक्षाकृत व्यापक है।

नागपुरी में सकर्मक और अकर्मक क्रिया मूल वर्गीकरण प्रस्तुत करते हैं। सकर्मक क्रिया के अंतर्गत एककर्मक और द्विकर्मक रूपों का विवेचन किया गया है। इसके अतिरिक्त प्रेरणार्थक, संयुक्त, सहायक, नामबोधक और पूर्वकालिक क्रिया नागपुरी क्रिया–व्यवस्था के महत्त्वपूर्ण रूप हैं।

इसी प्रकार नागपुरी में धातु से क्रिया–निर्माण के साथ–साथ संज्ञा एवं विशेषण से क्रियात्मक पदों के निर्माण की प्रक्रिया भी दिखाई देती है।

इस प्रकार हिंदी और नागपुरी में क्रिया की आधारभूत अवधारणाओं में साम्य होते हुए भी उनके रूपात्मक प्रयोग, क्रिया–निर्माण और स्थानीय भाषिक संरचना में अंतर है। इसलिए नागपुरी के क्रिया–विज्ञान के अध्ययन में हिंदी की व्याकरणिक श्रेणियों को केवल प्रतिरूप के रूप में ग्रहण करने के बजाय नागपुरी के अपने प्रमाणित प्रयोगों और व्याकरणिक परंपरा को केंद्र में रखना अधिक उपयुक्त होगा।

संदर्भ-सूची :

1. गोस्वामी, कृष्ण कुमार – हिंदी भाषा की व्याकरणिक इकाइयाँ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 2020।
2. पांडे, हेमचंद्र – रूपरचना : क्रियाओं और संज्ञाओं में कुछ व्याकरणिक समानताएँ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2018।
3. नवरंगी, पीटर शांति – नागपुरिया सदनी बोली का व्याकरण।
4. गोस्वामी, श्रवण कुमार – नागपुरी भाषा।
5. तिवारी, योगेंद्रनाथ – नागपुरी भाषा का संक्षिप्त परिचय।
6. गौंझू, गिरिधारी राम – सदनी नागपुरी व्याकरण।
7. मिश्रा, शकुंतला एवं तिवारी, उमेशनन्द – नागपुरी सदानी व्याकरण। झारखंड झरोखा रांची, 2023

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2026 Page No. : 88-93

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

भारतीय परंपरा में राजधर्म और शासन की नैतिकता

डॉ० मौ० मुजफ्फर अंसारी

राजनीति विज्ञान, घिस्सुपुरा–हरिद्वार, उत्तराखण्ड।

शोध सार – (Abstract) :

यह शोध–पत्र भारतीय परंपरा में राजधर्म और शासन की नैतिकता की अवधारणाओं का गहन अध्ययन प्रस्तुत करता है। हमारे मुल्क के वैदिक साहित्य, महाकाव्यों, धर्मशास्त्रों तथा अर्थशास्त्र में वर्णित सिद्धांतों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन में शासन का मूल उद्देश्य केवल सत्ता–प्राप्ति या हुक्मरानी नहीं, बल्कि धर्म–पालन, लोककल्याण, न्याय–स्थापना और मुकम्मल कयनात का ख्याल रखना था। मनुस्मृति और कौटिल्य के अर्थशास्त्र से लेकर महाभारत और रामायण तक, शाही फराऐज को एक अखलाक और रूह के फर्ज की शक्ल में परिभाषित किया गया है, जहाँ राजा को "धर्म का संरक्षक" माना गया। यह शोध समकालीन नजर से भी इसका मूल्यांकन करता है, जहाँ राजशाही अक्सर नैतिक आदर्शों से विचलित होती है

मुख्य शब्द – राजधर्म, शासन की नैतिकता, भारतीय परंपरा, धर्मशास्त्र।

प्रस्तावना –

भारतीय राजनीतिक परंपरा में सदियों से यह मान्यता रही है कि शासन केवल राज्य की सुरक्षा या शक्ति का प्रदर्शन नहीं, बल्कि प्रजा का कल्याण और न्याय की स्थापना होना चाहिए। इस दृष्टिकोण को राजधर्म कहा गया है। राजधर्म राजा या शासक के व्यक्तिगत आचरण से जुड़ा हुआ नहीं था, बल्कि पूरे राज्य के प्रशासन और नीति निर्धारण का आधार माना जाता था। भारतीय ग्रंथों और परंपराओं में राजा की जिम्मेदारियों को स्पष्ट रूप से बताया गया है। राजा का कर्तव्य केवल अपने अधिकारों का प्रयोग करना नहीं, बल्कि प्रजा की भलाई, सुरक्षा और न्याय सुनिश्चित करना भी माना गया।

इतिहास में अनेक उदाहरण 'जैसे सम्राट अशोक का धर्म आधारित शासन और अकबर का सुलह–ए–कुल' दिखाते हैं कि भारतीय परंपरा में राजधर्म केवल सैद्धांतिक विचार नहीं बल्कि व्यवहार में भी महत्वपूर्ण रहा है। आज के समय में, जब राजनीति अक्सर नैतिक मूल्यों से विचलित हो जाती है, वहाँ राजधर्म के आदर्शों का पुनर्मूल्यांकन अत्यंत आवश्यक हो जाता है। यह शोध इसी दिशा में एक प्रयास है, जो राजधर्म और शासन की नैतिकता की अवधारणा को समझने और उसकी प्रासंगिकता को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उजागर करने का प्रयास करता है।

उद्देश्य –

इस शोध का मूल उद्देश्य भारतीय परंपरा में राजधर्म और शासन की नैतिकता के सिद्धांतों का बहुआयामी

अध्ययन करना है, जिसमें उनके ऐतिहासिक उद्‌गम, दार्शनिक आधार, और व्यवहारिक अनुप्रयोग की समग्र विवेचना शामिल है। वेद, उपनिषद, महाभारत, रामायण, बौद्ध एवं जैन साहित्य से लेकर मनुस्मृति, अर्थशास्त्र और शुक्नीतिसार तक, राजधर्म की अवधारणा ने शासन की नैतिक संरचना को किस प्रकार आकार दिया, इसका विश्लेषण करना इस शोध का प्रमुख लक्ष्य है। साथ ही, अशोक और अकबर तथा खिलाफत दौर के शासकों के उदाहरणों के माध्यम से यह परखना कि आदर्श और व्यवहार के मध्य किस प्रकार संतुलन स्थापित हुआ।

समकालीन संदर्भ में, यह अध्ययन संविधान, लोकतांत्रिक सिद्धांतों और आधुनिक राजनीतिक चुनौतियों की पृष्ठभूमि में राजधर्म की प्रासंगिकता को पुनर्परिभाषित करते हुए, भविष्य के लिए शासन में नैतिकता और लोककल्याण के सुदृढ़ीकरण हेतु ठोस दिशानिर्देश प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। इस प्रक्रिया में शास्त्रीय उद्धरणों को प्राथमिक स्रोत मानते हुए, आधुनिक शोधपत्रों एवं विद्वानों की व्याख्याओं को द्वितीयक स्रोतों के रूप में सम्मिलित किया जाएगा, जिससे शोध की गहराई और तर्क में मजबूती आएगी।

साहित्य-समीक्षा :

भारतीय परंपरा में राजधर्म की अवधारणा : भारतीय राजनीतिक परंपरा में राजधर्म केवल शासक के अधिकारों का निर्धारण नहीं करता, बल्कि उसके नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक दायित्वों का भी स्पष्ट निर्देश देता है। राजधर्म केवल सत्ता का औजार नही बल्कि प्रजा–कल्याण और नैतिक अनुशासन का साधन है।

(सूर्यकांत, 1962)। वेदों और महाभारत में वर्णित दृष्टिकोण के अनुसार राजा "धर्म का प्रतीक" और "जनकल्याण का संरक्षक" होता है, जिसकी सर्वोच्च जिम्मेदारी न्याय की स्थापना है। **(बिबेक देब्रॉय, 2010)**। मनुस्मृति तथा कौटिल्य का अर्थशास्त्र इस धारणा को व्यवस्थित रूप देते हैं– जहाँ शासन का लक्ष्य केवल राज्य की रक्षा और विस्तार नहीं, बल्कि प्रजा के सुख, सुरक्षा और नैतिक विकास को सुनिश्चित करना है। **(आर, 1909)**। इतिहास के अनेक उदाहरण 'जैसे सम्राट अशोक का धम्म आधारित शासन, या अकबर का सुलह–ए–कुल' यह दर्शाते हैं कि भारतीय परंपरा में राजधर्म एक जीवंत और व्यावहारिक अवधारणा रही है, जो समय के साथ परिस्थितियों के अनुरूप विकसित हुई। **(इरफान हबीब, 1997)**। समकालीन संदर्भ में, जहाँ राजनीति अक्सर नैतिक मूल्यों से विचलित हो जाती है, यह आवश्यक हो जाता है कि राजधर्म के आदर्शों का पुनर्मूल्यांकन किया जाए। यह शोध इसी दिशा में एक प्रयास है, जो ऐतिहासिक स्रोतों और आधुनिक राजनीतिक सिद्धांतों के तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से राजधर्म और शासन की नैतिकता का पुनर्पाठ प्रस्तुत करता है। **(राजीव, 2010)**। भारतीय परंपरा के साथ–साथ अगर हम अन्य देशो कि शासन वयवस्था पर भी नजर डाले तो खलीफाओं का भी यही नजरिया रहा है। "यदि मैं अच्छा करूँ तो मेरी मदद करोय और यदि मैं गलत करूँ तो मुझे सुधारो।" **हजरत अबू बक्र (रजि.)** जिसमे "खिलाफत के दौर में राजा या खलीफा को न सिर्फ धर्म का हिफाजती पहरेदार, बल्कि आम लोगों की भलाई और इंसाफ की स्थापना का जिम्मेदार माना जाता था।" **(वजीर, 1935)**।

वैदिक और महाकाव्यिक परिप्रेक्ष्य –

वैदिक–साहित्य और महाकाव्यों–विशेषकर महाभारत में राजधर्म का नैतिक आयाम मुखर रूप से मिलता है। महाकाव्यों में राजा की भूमिका धार्मिक–नैतिक आदर्शों से जुड़ी हुई दिखाई देती है। यहाँ तथाकथित राजस्वार्थ की जगह राजा की सर्वोच्च उत्तरदायित्व–धारणा और न्याय स्थापन पर बल दिया गया है। यह परम्परा

राजा को केवल सैन्य–प्रशासक नहीं, बल्कि समाज के नैतिक संरक्षक के रूप में प्रस्तुत करती है। **(रामकेश्वर, साहित्यकुंज)**

धर्मशास्त्र और मनुस्मृति का योगदान – धर्मशास्त्रों, विशेषकर मनुस्मृति में राजधर्म के नैतिक–नियम व्यवस्थित रूप में मिलते हैं। मनुस्मृति शासन–नीति, शासक के कर्तव्यों और सामाजिक नियमों के सम्बन्ध में मार्गदर्शन प्रदान करती हैकृजहाँ राजा का कर्तव्य धर्म की रक्षा, न्याय की स्थापना और प्रजा के कल्याण को सर्वोपरि माना गया है। इन ग्रंथों ने राजधर्म को सामाजिक–न्याय के एक सांस्कृतिक और विधिक ढांचे के रूप में स्थापित किया। **(मनु, 1886)**

कौटिल्य (अर्थशास्त्र) का व्यवहारिक दृष्टिकोण – कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राजधर्म का व्यवहारिक, प्रशासनिक और रणनीतिक आयाम उभरकर आता है। जहाँ धर्मशास्त्रों में नैतिक आदर्श प्रमुख हैं, वहीं कौटिल्य पारंपरिक आदर्शों को राज्य–हित और सुरक्षा के सन्दर्भ में व्यावहारिक रूप से संशोधित करता हैकृराज्य–सुरक्षा, शासन–संगठन, कर–नीति और बाह्य–नीति के लिए विस्तृत नीति–निर्देश देता है। अतः भारतीय परंपरा में राजधर्म के दो आयाम स्पष्ट होते हैं : (क) नैतिक–दायित्व (धर्मशास्त्रीय), और (ख) व्यवहारिक–राजनीतिक (कौटिल्यगत)। **(आर., 1909)**

बौद्ध-जैन दृष्टि तथा ऐतिहासिक अनुकरण (अशोक) – बौद्ध और जैन परंपराओं ने भी शासन–नैतिकता पर अपना विशिष्ट दृष्टिकोण प्रस्तुत कियाकृअशोक के धर्मशिलालेखों में 'धम्म' का प्रयोग शासन–नीति में नैतिकता, अहिंसा और जनकल्याण के आधार के रूप में दिखाई देता है। ऐतिहासिक रूप से अशोक का उदाहरण यह दर्शाता है कि राजधर्म सिर्फ सिद्धान्त नहीं रहा, बल्कि व्यवहारिक रूप में भी लागू किया गया और शासन की नैतिक दिशा बदली जा सकती है। **(रोमिला, 1995)**

मनुस्मृति, अर्थशास्त्र और शुक्नीतिसार में शासन की नैतिकता – मनुस्मृति में शासन के दायित्व– मनुस्मृति में राजा की संरचनात्मक, व्यक्तिगत और नैतिक जिम्मेदारियों का विस्तार से उल्लेख है। जैसे कि अध्याय 7 के श्लोक 4–8 में यह बताया गया है कि राजा देवताओं के दिव्य अंश से निर्मित होता है– जैसे इन्द्र, यम, वरुण एवं कुबेर। यहाँ शासक को दिव्य शक्ति से सुसज्जित बताया गया है, जो उसे संसार पर शासन करने हेतु कर्तव्य निष्ठ बनाती है। **(मनु.,1886)**

अर्थशास्त्र (कौटिल्य) में न्याय और लोककल्याण – अर्थशास्त्र में बुक I, चैप्टर 19 स्पष्ट रूप से राजा की प्राथमिकता प्रजा की भलाई को बताती है : "In the happiness of his subjects lies his happiness; in their welfare his welfare." यह उद्धरण राज्य और शासन की नैतिक मूलधारा को रेखांकित करता है– राजा की भलाई और राज्य की स्थिरता प्रजा के कल्याण से सीधे जुड़ी है। Book I, Chapter 7 में आत्मसंयम, बुजुर्गों से शिक्षा, और प्रजा की सुरक्षा तथा नैतिक शासन की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। **(आर., 1909)**

शुक्नीतिसार (शुकृति नीति) और नैतिक शासन – शुक्नीतिसार में राजा के गुणों की वर्णना 'Kamandaka' नामक ग्रंथ में मिलती है। इसमें राजसी क्षमता[1], स्व–संयम, रणनीतिक कुशलता, सामाजिक सद्भाव, और भ्रष्टाचार से मुक्ति जैसे गुण बताए गए हैं। उदाहरण स्वरूप : "Eloquence, self-confidence, accuracy of memory, stateliness of stature, … freedom from anger, avarice, fear … compliance with the advice of elders, … learning, energy…" (शुक्नीतिसार) यह सूची स्पष्ट करती है कि शासन केवल शक्ति पर नहीं,

बल्कि नैतिक सक्षमता और बुद्धिमत्ता पर आधारित होना चाहिए।

राजधर्म और लोककल्याण – धर्म, अर्थ और न्याय के संबंध –

धर्म शासन की नैतिक नींव – भारतीय परंपरा में धर्म केवल धार्मिक आचरण नहीं, बल्कि एक व्यापक सामाजिक–नैतिक व्यवस्था है जो राजा के कर्तव्यों को परिभाषित करती है। महाभारत के शांति पर्व (अध्याय 59, पृ. 415) में भी कहा गया है कि राजा को "प्रजा की रक्षा, न्याय की स्थापना और सत्य के पालन" को ही अपना धर्म मानना चाहि। (कृष्ण, 1883)

अर्थ – राज्य की समृद्धि का आधार – अर्थशास्त्र यह स्पष्ट करता है कि आर्थिक संसाधनों का विकास, राजस्व की व्यवस्था और व्यापार की सुरक्षा राज्य के आर्थिक दायित्व हैं। कौटिल्य ने इसे सीधे प्रजा–कल्याण से जोड़ारू यदि आर्थिक साधन सुदृढ़ हों, तो धर्म और न्याय दोनों का पालन संभव है।

न्याय–लोककल्याण का उपकरण – मनुस्मृति में वर्णित है कि न्याय का कार्य "सत्य, धर्म और निष्पक्षता" के आधार पर होना चाहिए। न्याय को केवल दंड देने की क्रिया न मानकर, समाज में संतुलन और कल्याण सुनिश्चित करने का साधन माना गया है।

त्रिवेणी संबंध – धर्म, अर्थ और न्याय– ये तीनों परस्पर आश्रित हैं। धर्म से न्याय की दिशा तय होती है, अर्थ से उसकी स्थिरता, और न्याय से लोककल्याण का संरक्षण। अशोक के अभिलेखों में भी स्पष्ट उल्लेख है कि "धम्म" और "जनकल्याण" अविभाज्य हैं।

शासन की नैतिकता : आदर्श और व्यवहार – ऐतिहासिक उदाहरण –

अशोक : धर्म के माध्यम से शासन – मौर्य सम्राट अशोक ने कलिंग युद्ध के बाद शासन में नैतिकता को केंद्रीय स्थान दिया। तेरहवाँ शिलालेख में उन्होंने हिंसा त्यागकर "धम्म" (नैतिक शासन) को अपनाने की घोषणा की। (डी.सी, 1979) यह व्यवहारिक रूप से प्रजा–कल्याण, धार्मिक सहिष्णुता और नैतिक प्रशासन का उदाहरण है, जो राजधर्म के आदर्श स्वरूप से मेल खाता है।

अकबर : सुलह–ए–कुल की नीति – मुगल सम्राट अकबर ने सुलह–ए–कुल (सर्वधर्म समभाव) को शासन की नीति बनाया। जो कि धार्मिक सहिष्णुता और प्रजा के विविध वर्गों में समानता को उन्होंने व्यवहार में उतारा। (अबुल, 1873) यह नीति न केवल नैतिक आदर्श थी, बल्कि प्रशासनिक स्थिरता का साधन भी बनी।

शिवाजी महाराज : स्वराज और नैतिक नेतृत्व – मराठा छत्रपति शिवाजी ने युद्ध और प्रशासन दोनों में नैतिक मर्यादा का पालन किया। शिवाजी ने महिलाओं, धार्मिक स्थलों और किसानों को युद्ध में भी क्षति न पहुँचाने का आदेश दिया। (कृष्णा, 1931) यह दर्शाता है कि आदर्श नैतिक शासन व्यवहारिक प्रशासन में भी संभव है।

आदर्श और व्यवहार का संतुलन – इतिहास बताता है कि नैतिकता को पूरी तरह व्यवहार में उतारना कठिन है, लेकिन जब शासक ने व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर कार्य किया, तब राज्य स्थिर और समृद्ध हुआ। अशोक, अकबर और शिवाजी इसके सशक्त उदाहरण हैं।

समकालीन संदर्भ में राजधर्म – आधुनिक राजनीति और नैतिक चुनौतियाँ –

संवैधानिक ढाँचे में राजधर्म – भारत का संविधान (1950) प्रत्यक्ष रूप से "राजधर्म" शब्द का उपयोग नहीं करता, लेकिन इसकी मूल भावना अनुच्छेद 38 और 39 में निहित है– जो राज्य को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय सुनिश्चित करने का निर्देश देते हैं। (भारतीय संविधान सभा) डॉ. राजेंद्र प्रसाद और डॉ.

भीमराव आंबेडकर ने राजधर्म को आधुनिक लोकतांत्रिक शासन के संदर्भ में स्पष्ट किया।

आधुनिक नैतिक चुनौतियाँ – आधुनिक राजनीति में भ्रष्टाचार, पक्षपात, सांप्रदायिक ध्रुवीकरण और सत्ता–केन्द्रित नीतियाँ राजधर्म के मूल्यों को चुनौती देती हैं। रामचंद्र गुहा बताते हैं कि आपातकाल (1975–77) के दौरान व्यक्तिगत सत्ता और लोकतांत्रिक संस्थाओं के बीच टकराव राजधर्म के विरुद्ध था। (रामचंद्र, 2007)

गांधीवादी दृष्टिकोण – महात्मा गांधी ने कहा था – "राजनीति धर्म से पृथक नहीं हो सकती"। (महात्मा, 1925) उनका मानना था कि सत्ता का उद्देश्य केवल प्रशासन नहीं, बल्कि नैतिक उत्थान होना चाहिए।

न्यायपालिका की भूमिका – 2002 में गुजरात दंगों के समय प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने सार्वजनिक रूप से गुजरात के मुख्यमंत्री को "राजधर्म निभाने" की सलाह दी। (PM's Advice, 2002) इस घटना ने राजधर्म की आधुनिक प्रासंगिकता को राष्ट्रीय विमर्श में पुनः स्थापित किया।

निष्कर्ष – विषय का समाहार और भविष्य की दिशा –

राजधर्म और शासन की नैतिकता भारतीय परंपरा में केवल राजनीतिक आदर्श नहीं, बल्कि एक जीवंत नैतिक–सामाजिक संकल्पना है, जो समय के साथ निरंतर विकसित हुई है। वेद, उपनिषद, महाभारत और रामायण से लेकर मनुस्मृति, अर्थशास्त्र और अशोक के शिलालेखों तक, एक सतत धारा स्पष्ट रूप से दिखाई देती है– कि राज्य का सर्वोच्च उद्देश्य लोककल्याण है। इतिहास बताता है कि जब शासक ने धर्म, अर्थ और न्याय के संतुलन को अपने आचरण में उतारा, तब राज्य न केवल समृद्ध हुआ, बल्कि सामाजिक सामंजस्य और सांस्कृतिक एकता भी स्थापित हुई। अशोक का धम्म, अकबर की सुलह–ए–कुल और शिवाजी का स्वराज इस आदर्श के व्यवहारिक उदाहरण हैं। समकालीन भारत में, संविधान के निर्देशात्मक सिद्धांत राजधर्म के आधुनिक रूप हैं। परंतु आज के राजनीतिक परिदृश्य में व्यक्तिगत सत्ता–लालसा, भ्रष्टाचार और नैतिक गिरावट जैसी चुनौतियाँ इस आदर्श को कमजोर करती हैं। ऐसे में गांधीवादी दृष्टिकोण 'जिसमें सत्ता का उद्देश्य नैतिक उत्थान और सामाजिक न्याय हो' पुनः प्रासंगिक हो जाता है। भविष्य की दिशा स्पष्ट है : शासन को केवल कानूनी ढाँचे तक सीमित न रखकर नैतिकता, पारदर्शिता और प्रजा–कल्याण को उसके केंद्र में रखना होगा। तभी राजधर्म आधुनिक लोकतंत्र में जीवंत रह सकेगा और शासन को वह नैतिक वैधता प्राप्त होगी, जो भारतीय परंपरा की आत्मा है।

संधर्भ-सूची :

1. सूर्यकांत, पं. (1962). धर्मशास्त्रों का इतिहास. वाराणसी : चौखंबा विद्याभवन।
2. मैक्समूलर. (संपा.). (1879–1910). सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट (खंड 1). ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। देब्रॉय, बिबेक. (2010). महाभारत. पेंगुइन।
3. शमशास्त्री, आर. (अनुवादक). (1909). कौतिल्य का अर्थशास्त्र. मैसूर : ओरिएंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट।
4. हबीब, इरफान. (1997). अकबर एंड हिज इंडिया. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
5. भार्गव, राजीव. (2010). पॉलिटिक्स एंड एथिक्स इन इंडिया. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
6. अली, वजीर अहमद. (1935). अल–ख़लीफा : हजरत अबू बक्र और उनके आदर्श. लाहौर।
7. तिवारी, रामकेश्वर. (प्रकाशन वर्ष नहीं). महाभारत के शान्ति पर्व में 'राजधर्म' का स्वरूप. साहित्यकुंज।

8. मनु (शास्त्री) (अनुवादक : जॉर्ज बूलर). (1886). मनुस्मृति (अध्याय 7, पृष्ठ 60). ऑक्सफोर्ड : क्लैरेंडन प्रेस
9. आर शमशास्त्री. (1909). कौटिल्य का अर्थशास्त्र. मैसूर : ओरिएंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट।
10. थापर, रोमिला. (1995). अशोक के शिलालेखों का अनुवाद. प्रोजेक्ट्स, कोलंबिया विश्वविद्यालय।
11. मनु (शास्त्री), मनुस्मृति, जॉर्ज बूलर द्वारा अनूदित (ऑक्सफोर्ड : Clarendon Press, 1886), अध्याय 7, पृष्ठ 60।
12. आर शमशास्त्री. (1909). कौटिल्य का अर्थशास्त्र. मैसूर : ओरिएंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट।
13. शुक्नीतिसार. (प्रकाशन वर्ष नहीं). अध्याय 1–2, पृष्ठ 10–15।
14. व्यास, कृष्ण–द्वैपायन. (अनुवादक : किसरी मोहन गंगुली). (1883–1896). महाभारत, शांति पर्व, पुस्तक XII, अध्याय 59 (पृ. 415). कलकत्ता : भारत प्रेस।
15. सिरकार, डी.सी. (1979). अशोक के शिलालेख. कलकत्ता : भारतीय पुरातत्त्व विभाग।
16. फजल, अबुल. (अनुवादक : एच. ब्लॉचमैन). (1873). ऐन–ए–अकबरी (खंड I, पृ. 158–160). कलकत्ता : एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल।
17. सभसद, कृष्णाजी अनंत. (संपादक : दत्तो वामन पोतदार). (1931). सभसद बख़र (पृ. 212–214). पुणे : डेक्कन कॉलेज।
18. भारतीय संविधान सभा की बहसें. (1948, 22 नवम्बर). डॉ. राजेंद्र प्रसाद और डॉ. भीमराव अंबेडकर द्वारा अनुच्छेद 38 और 39 पर चर्चाएँ. https://indiankanoon.org/doc/1945234/
19. गुहा, रामचंद्र. (2007). इंडिया आफ्टर गांधी (पृ. 612–614). नई दिल्ली : हार्परकॉर्बिन्स।
20. गांधी, महात्मा. (1925, 22 अक्टूबर). 'पॉलिटिक्स एंड रिलीजन', यंग इंडिया, पृ. 346।
21. द हिन्दू. (2002, 18 अप्रैल). PM's Advice to Gujarat CM : Follow Raj Dharma (पृ. 1)।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2026 Page No. : 94-99

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में संवाद भाषा का स्वरूप

कपिल दिनकर चाटसे

पीएच.डी., हिंदी विभाग,

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय, छत्रपति संभाजीनगर, महाराष्ट्र.

भूमिका :-

हिंदी उपन्यास आधुनिक हिंदी साहित्य की सर्वाधिक सशक्त और प्रभावशाली विधाओं मे से एक है। समय के साथ उपन्यास ने समाज के बदलते जीवन मूल्य माननीय संबंध सांस्कृतिक परिवर्तन तथा राजकीय आर्थिक और वैचारिक परिस्थितीयो को अभिव्यक्त करने का महत्वपूर्ण दायित्व निभाया है। विशेषतः 21 वी सदी मे भारतीय समाज ने वैश्वीकरण उदारीकरण सूचना प्रायोगिकी बाजारवाद शहरीकरण तथा संचार क्रांति के कारण तीव्र परिवर्तन का अनुभव किया है। इन परिवर्तनों का व्यापक प्रभाव मनुष्य के जीवन उसकी सवेदनाओं भाषा संस्कृति और साहित्य पर भी पड़ा है परिणामस्वरूप हिंदी उपन्यास की विशेष वस्तू शिल्प और भाषा मे अनेक नये आयाम विकसित हुए है।

उपन्यास की सफलता केवल उसकी कथावस्तू पर निर्भर नही करती बल्कि उसके पात्र संवाद और भाषा पर भी समान रूप से आधारित होती है। संवाद अध्ययन का वह महत्वपूर्ण तत्व है, जिसके माध्यम से पात्रों का व्यक्तित्व उनकी मानसिकता सामाजिक परिवेश सांस्कृतिक पृष्ठभूमी तथा वैचारिक दृष्टिकोन स्वाभाविक रूप से पाठको के सामने प्रकट होता है। संवाद कथा को गति प्रदान करते है, पात्रो के बीच संबंधों को स्पष्ट करते है तथा उपन्यास को जिवंत और विश्वसनीय बनाते है। इस दृष्टी से संवाद भाषा उपन्यास की कलात्मक संरचना का अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंग है।

21वी सदी के हिंदी उपन्यासो मे संवाद भाषा का स्वरूप पूर्ववर्ती काल की अपेक्षा अधिक विविध बहुआयामी और यथार्थ परक दिखाई देता है। समकालीन उपन्यासकारों ने पात्रो की सामाजिक स्थिति शिक्षा व्यवसाय, क्षेत्रीय परिवर्तन सांस्कृतिक पहचान के अनुरूप संवादों का निर्माण किया है। यही कारण है कि इन उपन्यासों में मानक हिंदी के साथ साथ लोकभाषा आंचलिक बोलियो, उर्दू, अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं के शब्द का स्वाभाविक प्रयोग देखने को मिलता है। यह बहुभाषिकता केवल भाषिक प्रयोग नहीं है बल्कि समकालीन भारतीय समाज की बहु संस्कृतिक चेतना का भी प्रातिनिधित्व करती है। समकालीन हिंदी उपन्यासों में संवाद भाषा के माध्यम से स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श विस्थापन प्रवासन, वैश्वीकरण, बाजारवाद पर्यावरण संकट तथा बदलते पारिवारिक संबंध जैसे अनेक सामाजिक प्रश्नों को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है। संवाद केवल पात्रो की बातचीत नही रह जाते बल्कि वे सामाजिक यथार्थ वैचारिक संघर्ष, सांस्कृतिक अस्मिता

और मानवीय संवेदना के सशक्त माध्यम बन जाते है। इसलिये 21वी सदी के हिंदी उपन्यासो की संवाद भाषा का अध्ययन समकालीन हिंदी साहित्य की प्रकृति और प्रवृत्तीय को समझने के लिए अत्यंत आवश्यक है।

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य 21वीं सदी के हिंदी उपन्यासो मे प्रयुक्त संवाद भाषा के स्वरूप उसकी प्रमुख विशेषता उसके सामाजिक सांस्कृतिक और साहित्यिक महत्त्व का विश्लेषण करना है। साथ ही चयनित हिंदी उपन्यासों के उदाहरण के आधार पर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया जाएगा कि संवाद भाषा किस प्रकार पात्र के चरित्र निर्माण कथानक के विकास, यथार्थ की अभिव्यक्ति तथा उपन्यास की कलात्मकता को सुदृढ बनाती है। यह अध्ययन समकालीन हिंदी उपन्यासो की भाषा संरचना और अभिव्यक्ती शैली को समझने की दिशा मे सार्थक प्रयास है।

1. 21वीं सदी के हिंदी उपन्यास : स्वरूप एवं विशेषतायें :

21वीं सदी का हिंदी उपन्यास भारतीय समाज संस्कृति, राजनीति, अर्थव्यवस्था, तथा वैश्वीकरण से उत्पन्न परिवर्तनो का सशक्त दस्तावेज है । इस काल के उपन्यासों में केवल मनोरंजन नही बल्कि समकालीन जीवन की जटिलताओं सामाजिक विषमताओं, स्त्री विमर्श दलित, विमर्श आदिवासी विमर्श प्रवासी अनुभव, शहरीकरण, तकनीकी विकास तथा बदलते मानवीय संबंधो का यथार्थ चित्रण मिलता है।

इस काल के उपन्यासकारों ने भाषा और शिल्प दोनो स्तरों पर नवीन प्रयोग किये है। सवांदों को अधिक स्वाभाविक, बोलचाल के निकट तथा पात्रा अनुकूल बनाया गया है। स्थानीय बोलियो उर्दू अंग्रेजी तथा अन्य भारतीय भाषाओ के शब्द का प्रयोग भी संवाद को यथार्थ परक बनाता है।

21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं –

1) समकालीन सामाजिक यथार्थ का सशक्त चित्रण।
2) स्त्री, दलित, आदिवासी एवं एशिए के समाज की समस्याओं को प्रमुखता।
3) वैश्विकरण, बाजारवाद और तकनीकी परिवर्तन का प्रभाव।
4) पात्रों की मनौवैज्ञानिक जटिलताओं का सूक्रम चित्रण।
5) सरल, सहज, संप्रेषणीय तथा पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग।
6) संवादों में बोलचाल, क्षेत्रीय शब्दावली तथा मिश्रित भाषा का समावेश।
7) नवीन कथाशिरप और अभिव्यशिल्प के विविध प्रयोग।

इन विशेषआतों के कारण 21वीं सदी का हिंदी उपन्यास आधुनिक भारतीय समाज की बदलती संवेदनाओं और जीवन मूल्यों का प्रामाणिक दस्तावेज बनकर सामने आता है। विशेष रूप से संवाद–भाषा के स्तर पर यह काल अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि संवादों के माध्यम से पात्रों की सामाजिक पृष्ठभूमि, मानसिकता, वर्गीय स्थिति तथा सांस्कृतिक परिवेश का प्रभावी चित्रण होता है।

2) संवाद : अर्थ, परिभषा एवं स्वरूप :

क) संवाद का अर्थ :

संवाद साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्ती है। संवाद शब्द संस्कृत की पद धातु से बना है। जिसका अर्थ है– बोलना, विचारों का आदान–प्रदान करना। जब दो या दो से अधिक व्यक्ति किसी विषय पर अपने विचार, भावनाएँ अथवा अनुभव एक–दूसरें के समक्ष करते हैं, तो उसे संवाद कहा जाता है।

ख) संवाद की परिभाषा :

हिंदी साहित्य में संवाद में संवाद को कथा–साहित्य का एक अनिवार्य तत्व माना गया है। संवाद के माध्यम से पात्रों के विचार, भावनाएँ, मानसिक स्थिति, सामाजिक परिवेश तथा सांस्कृतिक चेतना अभिव्यक्त होती है। प्रभावी संवाद वही है जो स्वाभाविक, संक्षिप्त, पात्रानुकूल तथा कथानक के अनुरूप हो।

डॉ. श्यामसुन्दर दास के अनुसार, संवाद वह माध्यम है, जिसके द्वारा पात्र अपने विचारों, भावों और मनोभावों को व्यक्त करते है।

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार संवाद कथा को गति प्रदान करता है तथा पात्रों के चरित्र को स्पष्ट करने का प्रभावी साधन है।

ग) संवाद का स्वरूप :

हिंदी उपन्यासों में संवाद का स्वरूप समय के साथ निरंतर परिवर्तित हुआ है। 21वी सदी के उपन्यासों में संवाद आर्थिक स्वाभाविक, बोलचाल की भाषा पर आधारित तथा यथार्थपरक दिखाई देते है, इनमें पात्रों की सामाजिक पृष्ठभूमी, शिक्षा, वर्ग, क्षेत्रीयता तथा सांस्कृतिक परिवेश के अनुसार भाषा का प्रयोग किया जाता है। समकालीन उपन्यासों के संवादों में हिंदी के साथ उर्दू, अंग्रेजी तथा क्षेत्रीय बोलियों के शब्दों का भी व्यापक प्रयोग मिलता है, जिससे संवाद अधिक जीवंत और विश्वसनीय बन जाते हैं।

इस प्रकार संवाद उपन्यास का वह महत्वपूर्ण तत्व है जो कथानक को गति प्रदान करता है, पात्रों के व्यक्तित्व को स्पष्ट करता है तथा पाठक को कथा से भावनात्मक रूप से जोडने का कार्य करता है।

3) 21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में संवाद-भाषा का स्वरूप :–

21वी सदी के हिंदी उपन्यासों में संवाद–भाषा का स्वरूप पूर्ववती काल की अपेक्षा अधिक यथार्थपरक सहज और जीवन सापेक्ष दिखाई देता है। समकालीन उपन्यासकारों ने संवादों को केवल कथानक को आगे बढाने का माध्यम नहीं बनाया, बल्कि उन्हें पात्रों की मानसिकता, सामाजिक परिवेश, सांस्कृतिक पहचान और वैचारिक दृष्टि को अभिव्यक्त करने का सशक्त साधन बनाया है।

आज के उपन्यासों में संवाद भाषा सामान्य जनजीवन से जुडी हुई है। इसमें बोलचाल की भाषा, लोकभाषा, क्षेत्रीय शब्दावली, उर्दू तथा अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों का स्वाभाविक प्रयोग मिलता है। इसमें संवाद अधिक जीवंत, विश्वसनीय और प्रभावशाली बन जाते है।

समकालीन उपन्यासों की संवाद-भाषा की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है –

1. सरल, सहज एवं स्वाभाविक भाषा की प्रमुख।
2. बोलचाल की भाषा को प्राथमिकता।
3. पात्रानुकुल भाषा का प्रयोग।
4. क्षेत्रीय एवं लोकभाषाओं का समावेश।
5. अंग्रेजी, उर्दू तथा अन्य भाषाओं के प्रचलित शब्द का प्रयोग।
6. सामाजिक यथार्थ और समकालीन जीवन का प्रभाव।
7. संक्षिप्त, प्रभावपूर्ण एवं अर्थगाभते संवाद।
8. पात्रों की मनोविज्ञानिक स्थिति को व्यक्त करने वाली भाषा।

इन विशेषताओं के कारण 21वी सदीं के हिंदी उपन्यासों की संवाद–भाषा अधिक प्रभावशाली संप्रेषणीय तथा यथार्थपरक बन गई है। यही संवाद–भाषा समकालीन हिंदी उपन्यासों को आधुनिक समाज का सशक्त दस्तावेज सिद्ध करती है।

4) सरल, सहज एवं स्वाभाविक भाषा :

21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों की सबसे प्रमुख विशेषता उनकी सरल, सहज एवं स्वाभाविक संवाद–भाषा है। समकालीन उपन्यासकारों ने भाषा को कृत्रिमता और अत्याधिक अलंकारिता से मुक्त कर सामान्य जनजीवन ने निकट लाने का प्रयास किया है। परिणामस्वरूप संवाद पाठक को वास्तविक जीवन की बातचीत जैसे प्रतीत होते है।

सरल एवं स्वाभाविक भाषा के प्रयोग से पात्र अधिक जीवंत और विश्वसनीय बन जाते हैं। पाठक को ऐसा अनुभव होता है मानो वह स्वयं पात्रों के बीच उपस्थित होकर उनके विचारों और भावनाओं को सुन रहा हो यही कारण है कि, आधुनिक हिंदी उपन्यासों में संवाद कथा को रोचक, प्रभावशाली और संप्रेषणीय बनाते है।

समकालीन अभ्यासकार पात्र की आयु, शिक्षा, सामाजिक स्तर, व्यवसाय तथा सांस्कृतिक परिवेश के अनुसार भाषा का चयन करते हैं। ग्रामीण पात्रों की भाषा में ग्रामीण जीवन की सहजता दिखाई देती है, जबकि शहरी पात्रों के संवादों में आधुनिक जीवन, तकनीक और बदलती सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

इस प्रकार सरल, सहज एवं स्वाभाविक संवाद भाषा न केवल कथानक को गति प्रदान करती है, बल्कि पात्रों के व्यक्तित्व, भावनाओं तथा सामाजिक यथार्थ को भी प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त करती है। यही विशेषता 21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों को पाठकों के अधिक निकट ले आती है और उन्हें समकालीन जीवन का सशक्त दर्पण बनाती है।

5) बोलचाल की भाषा का प्रयोग :-

21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में संवाद–भाषा का एक महत्वपूर्ण स्वरूप बोलचाल की भाषा का व्यापक प्रयोग है। समकालीन उपन्यासकारों ने साहित्यिक और अत्याधिक संस्कृतनिष्ठ भाषा के स्थान पर सामान्य जनजीवन में प्रयुक्त भाषा को अपनाया है। इससे उपन्यास अधिक स्वाभाविक, सहज और प्रभावशाली बन गए है।

बोलचाल की भाषा का प्रयोग संवादों को जीवन के निकट ले आता है। पाठक को पात्रों की बातचीत कृत्रिम न लगकर वास्तविक प्रतीत होती है। यही कारण है कि आधुनिक उपन्यासों में संवाद पात्रों के सामाजिक परिवेश है।

आधुनिक हिंदी उपन्यासों में शहरी और ग्रामीण दोनों प्रकार की बोलचाल का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है, कही स्थानीय मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग मिलता है, तो कही हिंदी के साथ अंग्रेजी और उर्दू के प्रचलित शब्द भी सहज रूप से प्रस्तुत होते है। यह मिश्रित भाषा समकालीन समाज की भाषिक वास्तविकता को अभिव्यक्त करती है। बोलचाल की भाषा संवादों को संप्रेषण, रोचक तथा प्रभावी बनाती है। इसके माध्यम से लेखक, पात्रों की मानसिक स्थिति, सामाजिक संबंधों और सांस्कृतिक परिवेश को सहजता से प्रस्तुत करता है। यही कारण है कि 21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों की संवाद–भाषा पाठकों के साथ आत्मीय संबंध स्थापित करने

में सकल होती है।

6) 21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में संवाद भाषा की प्रमुख विशेषताएँ :-

21वी सदी के हिंदी उपन्यासों में संवाद भाषा के पारंपारिक साहित्यिक भाषा से आगे बढकर जीवन के विविध रूपों को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। समकालीन उपन्यासकारों ने पात्रों की सामाजिक स्थिति, क्षेत्रीय परिवेश, शिक्षा, व्यवसाय और मानसिकता के अनुसार संवादों का प्रयोग किया है। इस कारण संवाद भाषा में विविधता और स्वाभाविकता दिखाई देती है।

1. बोलचाल की भाषा :-

समकालीन हिंदी उपन्यासों में संवाद प्रायः सामान्य बोलचाल की भाषा में लिखे जाते है। उपन्यासकारों ने पात्रों के संवादों को कृत्रिम बनाने के बजाय दैनिक जीवन में प्रयुक्त होनेवाली भाषा के निकट रखा है।

पात्र अपनी आयु, शिक्षा, सामाजिक स्थिति और परिवेश जीवन से जुडे प्रसंगों में सामान्य बोलचाल के शब्दों और वाक्य रचनाओं का प्रयोग संवादों को अधिक प्रभावशाली बनाता है।

2. पात्रानुकूल भाषा :-

21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में संवाद भाषा की महत्वपूर्ण विशेषता पात्रानुकूलता है। समकालीन उपन्यासकार पात्रों की सामाजिक स्थिति, शिक्षा, व्यवसाय, आयु, क्षेत्र, वर्ग और मानसिकता के अनुरूप उनकी भाषा का चयन करते है। शिक्षित पात्रों की भाषा अपेक्षाकृत परिष्कृत दिखाई देती है, जबकि ग्रामीण अथवा श्रमिक पात्रों के संवादों में लोकभाषा और बोलचाल के शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक रूप से मिलता है। इस प्रकार भाषा पात्रा के व्यक्तित्व को उभरने का महत्वपूर्ण माध्यम बनती है।

3. सरल एवं सहज भाषा :-

समकालीन हिंदी उपन्यासों में संवादों को अधिक प्रभावी बनाने के लिए सरल और सहज भाषा का प्रयोग किया गया है। कठिन एवं कृत्रिम शब्दावली के स्थान पर ऐसी भाषा को प्राथमिकता दी गई है जिसे सामान्य पाठक आसानी से समझ सके, सरल भाषा संवादों को स्वाभाविक बनाती है और पाठक को पात्रों तथा घटनाओं से जोडने में सहायता करती है।

4. मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग :-

मुहावरों और लोकोक्तियों संवादों को अधिक जीवंत और प्रभावशाली बनाने का कार्य करती है। पात्रों की बातचीत में इनके प्रयोग से भाव कम शब्दों में अधिक के साथ व्यक्त होते हैं, साथ ही इनके माध्यम से किसी क्षेत्र की लोक संस्कृति और सामाजिक अनुभव भी अभिव्यक्त होते है।

5. यथार्थपरक एवं प्रभावपूर्ण संवाद :-

21वीं सदी के उपन्यासों में संवाद जीवन के वास्तविक अनुभवों के अधिक निकट दिखाई देते हैं। पात्र जिस प्रकार वास्तविक जीवन में बातचीत करते है, उसी प्रकार की भाषा और वाक्य–विन्यास का प्रयोग किया जाता है। इससे संवाद कृत्रिम न लगाकर स्वाभाविक और विश्वसनीय प्रतीत होते है।

6. व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग :-

समकालीन उपन्यासों में सामाजिक, राजनैतिक और पारिवारिक विसंगतियों को व्यक्त करने के लिए व्यंग्यात्मक संवादों का प्रयोग किया गया है। व्यंग्य के माध्यम से लेखक समाज में मौजूद विरोधाभासों, रूढियों

और समस्याओं पर प्रभावी टिप्पणी करता है। ऐसे संवाद पाठक पर गहरा प्रभाव छोडता है।

सारांश :-

21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में संवाद–भाषा अपने विविध और परिवर्तित स्वरूप के साथ सामने आती है। इसमें बोलचाल की सहज भाषा, पात्रानूकूल भाषा क्षेत्रीय एवं लोकभाषा, उर्दू तथा अंग्रेजी शब्दावली, महावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग प्रमुख रूप से दिखाई देता है। समकालीन उपन्यासकारों ने संवादों के माध्यम से पात्रों के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मनौवैज्ञानिक पक्षों को प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त किया है।

वर्तमान समय के सामाजिक परिवर्तन, वैश्वीकरण, तकनीकी, विकास और बदलती जीवन शैली का प्रभाव भी संवाद–भाषा पर स्पष्ट दिखाई देता है। संवादों में आधुनिक शब्दावली के साथ–साथ विभिन्न वर्गों और क्षेत्रों की भाषिक विविधता का समावेश हुआ है। इससे उपन्यासों की भाषा अधिक जीवंत स्थापित, यथार्थपरक और संप्रेषणीय बनी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. गोपाल राय – हिंदी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016
2. रामचंद्र शुक्ल – हिंदी साहित्य का इतिहास, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
3. राजस्वरूप चतुर्वेदी – हिंदी गद्य : विन्यास और विकास, लोक भारती प्रकाशन।
4. गोपाल राय – उपन्यास की संरचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. डॉ. मंजू कुमारी – 21वीं सदी में हिन्दी भाषा का सवाल एक वजिब सवाल (हिन्दी उपन्यास), प्रकाशन विश्वहिंदीजन, 2 जून 2011
6. डॉ. डॉली लाल – समकालीन हिन्दी उपन्यास साहित्य, वाणी प्रकाशन, इलाहाबाद, 1989

Email ID: kapilchatse321@gmail.com

Mob. No. 8554963045

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2026 Page No. : 100-106

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

भारत का विभाजन : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, कारण, मानवीय त्रासदी और इसके दूरगामी परिणाम

संतोष कुमारी
पी.एच.डी. हिन्दी, शोधार्थी, पंजीकरण संख्या : GU23R2203
ग्लोकल स्कूल ऑफ आर्टस एण्ड सोशल साईंस, सहारनपुर, उत्तर प्रदेश।
डॉ. शोभा त्रिपाठी
प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग
ग्लोकल विश्वविद्यालय, सहारनपुर, उत्तर प्रदेश।

सारांश :

भारत का विभाजन आधुनिक भारतीय इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण और पीड़ादायक घटनाओं में से एक है। वर्ष 1947 में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन की समाप्ति के साथ भारतीय उपमहाद्वीप का विभाजन भारत और पाकिस्तान के रूप में हुआ। यह घटना केवल राजनीतिक सीमाओं के पुनर्निर्धारण तक सीमित नहीं थी, बल्कि इसके साथ व्यापक साम्प्रदायिक हिंसा, विस्थापन, संपत्ति के नुकसान, पारिवारिक विघटन और स्त्रियों के विरुद्ध हिंसा की घटनाएँ जुड़ी हुई थीं। विभाजन के कारणों को समझने के लिए औपनिवेशिक शासन की नीतियों, साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व, कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच राजनीतिक मतभेद, मुस्लिम लीग की पाकिस्तान संबंधी मांग, ब्रिटिश सत्ता हस्तांतरण की नीति तथा 1946–47 की हिंसक परिस्थितियों को समग्र रूप से देखना आवश्यक है।

विभाजन का प्रभाव 1947 तक सीमित नहीं रहा। भारत–पाकिस्तान संबंधों, कश्मीर प्रश्न, शरणार्थी पुनर्वास, सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक संबंधों और साहित्यिक चेतना पर इसके दूरगामी प्रभाव पड़े। हिंदी साहित्य सहित भारतीय भाषाओं के साहित्य में विभाजन की त्रासदी ने मनुष्य के विस्थापन, अस्मिता, स्मृति और पीड़ा को अभिव्यक्ति दी। प्रस्तुत शोध–प्रपत्र भारत विभाजन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, प्रमुख कारणों, मानवीय त्रासदी और उसके दीर्घकालिक परिणामों का विश्लेषण करता है।

बीज शब्द : भारत विभाजन, साम्प्रदायिकता, पाकिस्तान, विस्थापन, मानवीय त्रासदी, शरणार्थी, स्त्री, विभाजन साहित्य, स्मृति।

प्रस्तावना :

भारत का स्वतंत्रता आंदोलन भारतीय जनता की दीर्घकालीन राजनीतिक चेतना और औपनिवेशिक शासन

से मुक्ति की आकांक्षा का परिणाम था। किंतु जिस स्वतंत्रता की प्रतीक्षा भारतीय जनता ने लंबे समय तक की, वह स्वतंत्रता विभाजन की पीड़ा के साथ प्राप्त हुई। 15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ, लेकिन इसी समय भारतीय उपमहाद्वीप का एक बड़ा भू–भाग पाकिस्तान के रूप में अलग राष्ट्र बन गया।

भारत विभाजन को केवल राजनीतिक घटना मानना इसके व्यापक मानवीय पक्ष को सीमित कर देता है। विभाजन ने लाखों परिवारों को अपने पुश्तैनी घरों से विस्थापित किया। पंजाब और बंगाल जैसे क्षेत्रों में हिंसा ने सामान्य जनजीवन को पूरी तरह प्रभावित किया। लोग अपने घर, खेत, दुकानें, रिश्ते और स्मृतियाँ पीछे छोड़कर अनिश्चित भविष्य की ओर निकल पड़े। अनेक परिवार टूट गए और बहुत से लोग अपने प्रियजनों से हमेशा के लिए बिछड़ गए।

विभाजन की सबसे बड़ी विडंबना यही थी कि स्वतंत्रता और राष्ट्र–निर्माण की राजनीतिक प्रक्रिया के समानांतर सामान्य मनुष्य के जीवन में असुरक्षा, भय और विस्थापन प्रवेश कर गया। इसलिए विभाजन को समझने के लिए राजनीतिक इतिहास के साथ सामाजिक और मानवीय इतिहास को भी केंद्र में रखना आवश्यक है।

भारत विभाजन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

भारत में ब्रिटिश शासन के विस्तार के साथ राजनीतिक और प्रशासनिक संस्थाओं में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। 1857 के विद्रोह के बाद भारत का शासन ईस्ट इंडिया कंपनी से ब्रिटिश क्राउन के हाथों में चला गया। इसके बाद औपनिवेशिक प्रशासन ने भारतीय समाज को विभिन्न प्रशासनिक और राजनीतिक श्रेणियों में संगठित किया। आधुनिक शिक्षा, प्रेस, राजनीतिक संस्थाओं और प्रतिनिधित्व की मांग ने भारतीय समाज में नई राजनीतिक चेतना उत्पन्न की। 1857 के महान विद्रोह की ज्योति सर्वप्रथम मेरठ की धरती पर प्रज्वलित हुई। यह स्थान केवल सैन्य कार्रवाई का प्रारम्भिक केन्द्र ही नहीं था, बल्कि वह मानस–भूमि भी था जहाँ अंग्रेजी शासन के प्रति असंतोष वर्षों से उबल रहा था। मेरठ की छावनी उत्तर भारत की सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण सैन्य छावनियों में गिनी जाती थी। यहाँ बंगाल सेना की बड़ी संख्या में टुकड़ियाँ तैनात थीं, जिनमें हिंदू और मुस्लिम दोनों वर्गों के सिपाही शामिल थे। इन सैनिकों के भीतर धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और मानसिक स्तर पर जो असंतोष चरम सीमा तक पहुँच चुका था, वह 10 मई 1857 की रात को एक ज्वालामुखी की तरह फट पड़ा। ''9 मई को मेरठ में चर्बी वाले कारतूस लेने से इंकार करने के कारण 85 सैनिकों को हथकड़ी पहनाकर जेल भेज दिया गया। यह दृश्य बाकी के सभी सिपाहियों ने देखा मगर खून कर घूँट पीकर रह गए। इनमें से कुछ सिपाही शाम को जब बाज़ार घूमने गए तो उन पर ताने कसे गए। कुछ औरतों न व्यंग किया कि–तुम्हारे भाई जेल में और तुम यहाँ मक्खी मारते फिर रहे हो। लानत है तुम्हारी ज़िन्दगी को।''[1]

1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। कांग्रेस ने धीरे–धीरे स्वशासन और स्वतंत्रता की मांग को व्यापक रूप दिया। दूसरी ओर मुस्लिम समाज में भी राजनीतिक प्रतिनिधित्व और सामुदायिक हितों को लेकर विभिन्न विचार विकसित हुए। 1906 में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। 1909 के भारतीय परिषद अधिनियम के माध्यम से मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचक मंडल की व्यवस्था की गई। इससे राजनीतिक प्रतिनिधित्व में धार्मिक पहचान का महत्व बढ़ा। आगे चलकर 1919 और 1935 के संवैधानिक सुधारों ने भी

प्रतिनिधित्व और प्रांतीय स्वायत्तता से जुड़े प्रश्नों को अधिक महत्वपूर्ण बनाया। हालाँकि विभाजन को केवल किसी एक औपनिवेशिक नीति का परिणाम नहीं माना जा सकता। इसके पीछे कई दशकों में विकसित राजनीतिक परिस्थितियाँ, सामुदायिक असुरक्षाएँ, सत्ता में भागीदारी को लेकर मतभेद और बदलती राजनीतिक रणनीतियाँ भी महत्वपूर्ण थीं।

साम्प्रदायिक राजनीति और विभाजन की ओर बढ़ता भारत :

20वीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में भारतीय राजनीति में विभिन्न समुदायों के राजनीतिक प्रतिनिधित्व का प्रश्न महत्वपूर्ण होता गया। कांग्रेस व्यापक भारतीय राष्ट्रवाद की बात कर रही थी, जबकि मुस्लिम लीग धीरे–धीरे मुसलमानों के राजनीतिक हितों के प्रतिनिधित्व की प्रमुख संस्था के रूप में उभरने लगी। 1937 के प्रांतीय चुनाव विभाजन की राजनीति को समझने की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इन चुनावों के बाद कई प्रांतों में कांग्रेस की सरकारें बनीं। मुस्लिम लीग को अपेक्षित राजनीतिक सफलता नहीं मिली। इसके बाद मुहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग ने संगठन के विस्तार और मुसलमानों के पृथक राजनीतिक प्रतिनिधित्व पर अधिक जोर दिया। 1940 का लाहौर प्रस्ताव इस प्रक्रिया में महत्वपूर्ण पड़ाव था। मुस्लिम लीग ने मुस्लिम–बहुल क्षेत्रों के लिए स्वतंत्र राजनीतिक व्यवस्था की मांग रखी। आगे चलकर यही मांग पाकिस्तान की स्थापना की मांग के रूप में विकसित हुई।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान ब्रिटिश शासन की स्थिति कमजोर हुई और भारत में स्वतंत्रता की मांग अधिक तीव्र हुई। 8 अगस्त 1942 को मुंबई (गोवालिया टैंक मैदान) में कांग्रेस की बैठक में 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पारित हुआ। गांधी ने अपने भाषण में स्पष्ट कहा कि अब संघर्ष का लक्ष्य केवल एक है–ब्रिटिश सत्ता का पूर्ण रूप से भारत से अंत। उनका आवाहन था : "अंग्रेजों, भारत छोड़ो।" यह उद्घोष केवल एक राजनीतिक वक्तव्य नहीं, बल्कि भारतीय समाज के अंतर्मन में छिपी स्वतंत्रता की तीव्र आकांक्षा का विस्फोट था। ''इसके दूसरे दिन ही प्रमुख कांग्रेसी नेता पकड़ लिए गए। स्थान–स्थान पर हिंसक घटनाएं हुईं।''[2] ब्रिटिश सरकार ने तुरंत कार्रवाई करते हुए गांधी, नेहरू, पटेल, मौलाना आजाद, जयप्रकाश नारायण और अन्य प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। नेतृत्व के जेल में होने के बावजूद आंदोलन रुका नहीं। यह इसकी बड़ी विशेषता थी कि –नेतृत्व की अनुपस्थिति में भी जनता स्वयं संघर्ष का नेतृत्व करने लगी। इस तरह आंदोलन स्वस्फूर्त, विकेन्द्रित और व्यापक जन–आधारित रूप में विकसित हो गया।

कैबिनेट मिशन :

सत्ता में आते ही ब्रिटिश सरकार के रुख में बदलाव देखने को मिला। पुस्तक में युद्धोत्तर परिस्थितियों और ब्रिटेन की विवशता को रेखांकित करते हुए लिखा गया है – ''15 अगस्त, 1945 को जापान के समर्पण करने के बाद द्वितीय विश्वयुद्ध अन्तिम रूप से समाप्त हो गया। 6 साल तक इस विश्वयुद्ध ने विश्व की राजनीति को संचालित और नियन्त्रित किया था। इसके थोड़ा पहले ही हुए इंग्लैंड के आम चुनावों में इस 'युद्ध के महान नायक' चर्चिल की आश्चर्यजनक रूप से पराजय हुई। उदारवादी लेबरपार्टी चुनाव जीतकर सत्ता में आयी।''[3] 1946 में ब्रिटिश सरकार ने भारत की संवैधानिक समस्या का समाधान खोजने के लिए कैबिनेट मिशन भेजा।

कैबिनेट मिशन योजना का उद्देश्य ऐसा संवैधानिक ढाँचा तैयार करना था जिसमें भारत की एकता बनी रहे और प्रांतों को पर्याप्त स्वायत्तता प्राप्त हो।

16 अगस्त 1946 को मुस्लिम लीग द्वारा प्रत्यक्ष कार्रवाई दिवस का आह्वान किया गया। इसके बाद कलकत्ता में व्यापक हिंसा हुई। हिंसा की घटनाएँ अन्य क्षेत्रों तक भी पहुँचीं। नोआखाली, बिहार और पंजाब सहित कई क्षेत्रों में साम्प्रदायिक तनाव बढ़ा। 1947 की शुरुआत तक स्थिति अत्यंत गंभीर हो चुकी थी। ब्रिटिश सरकार ने सत्ता हस्तांतरण की प्रक्रिया को तेज करने का निर्णय लिया। लॉर्ड माउंटबेटन को भारत का अंतिम वायसराय नियुक्त किया गया। 3 जून 1947 की योजना के अंतर्गत भारत के विभाजन का मार्ग प्रशस्त हुआ। पंजाब और बंगाल के विभाजन का निर्णय लिया गया तथा सीमा निर्धारण का दायित्व सर सिरिल रैडक्लिफ के नेतृत्व वाले सीमा आयोग को दिया गया।

माउंटबेटन योजना :

मार्च 1947 का महीना भारतीय स्वाधीनता संग्राम और औपनिवेशिक सत्ता हस्तांतरण की प्रक्रिया में एक नया और निर्णायक मोड़ लेकर आया, जब 46 वर्षीय लॉर्ड माउंटबेटन भारत के 34वें तथा अंतिम ब्रिटिश गवर्नर जनरल बनकर दिल्ली पहुँचे। ब्रिटिश राजघराने से पारिवारिक संबंध रखने वाले इस युवा और प्रभावशाली नौसेना अधिकारी के आगमन के पीछे प्रधानमंत्री क्लेमेंट एटली के वे स्पष्ट और त्वरित निर्देश थे, जिनका उद्देश्य जून 1948 तक अंग्रेजों की भारत से ससम्मान और सुरक्षित वापसी सुनिश्चित करना था। वेवल की असफलता और देश भर में गहराते सांप्रदायिक तनाव के बीच जब माउंटबेटन ने भारत की धरती पर कदम रखा, तो उनके सामने सबसे बड़ी चुनौती राजनीतिक शून्यता को भरने और कांग्रेस व मुस्लिम लीग के शीर्ष नेताओं को किसी एक सर्वमान्य समझौते पर राजी करने की थी। इस राजनीतिक परिस्थिति और एटली के निर्देशों को रेखांकित करते हुए पुस्तक में लिखा गया है – ''माउंटबेटन भारत के चौंतीसवें और अन्तिम ब्रिटिश गवर्नर जनरल थे। एटली ने माउंटबेटन को सत्ता हस्तांतरण के खास निर्देशों के साथ भेजा था... यदि 1 अक्टूबर, 1947 तक यह सम्भव नहीं होता तो इंग्लैंड में सरकार को सूचित करना कि जून, 1948 तक सत्ता हस्तांतरण के लिए कौन–से कदम उठाना जरूरी हैं।''[4]

विभाजन और मानवीय त्रासदी :

सन 1947 का भारत–विभाजन केवल कागज पर खिंची रेखाओं या महज राजनैतिक सत्ता के हस्तांतरण की कहानी नहीं है। वास्तव में, यह समूची सभ्यता और मानव इतिहास का वह त्रासद मोड़ है जहाँ सदियों पुरानी साझी संस्कृति, पड़ोसीपन और मानवीय मूल्य एक झटके में ध्वस्त हो गए थे। विशेषकर पंजाब और हरियाणा के अंचल में इस विभाजन ने ऐसी विभीषिका का रूप ले लिया, जिसने न केवल लोगों के भूगोल को बदला बल्कि उनके समूचे अस्तित्व को ही झकझोर कर रख दिया। लोक–स्मृतियों और जन–साधारण के जेहन में यह दौर किसी दस्तावेजी इतिहास से कहीं अधिक गहरा और रूह को कंपा देने वाला दर्द बनकर बसा हुआ है। "1947 में हुई विभाजन की त्रासदी का असर हरियाणा क्षेत्र में भी उतना ही हुआ जितना पंजाब में हुआ।"[5] आम जनमानस के लिए यह तबाही इतनी अभूतपूर्व थी कि साधारण भाषा इसके दर्द को अभिव्यक्त करने में असमर्थ

साबित होने लगी। यही कारण है कि स्थानीय बोली और लोक–संस्कृति में इस भयावह कालखंड को अभिव्यक्त करने के लिए विशेष शब्दों का सहारा लिया गया। लोक–मानस ने इस पूरे कत्लेआम को "रोली, कतलोहिया, मारकटियो, चार की साल की लड़ाई, मारकाट आला साल, हल्ले, गदल, दंगे और गदर" जैसी शब्दावली में सँजोकर रखा, जो उस दौर के भयानक सच को आज भी जाहिर करती है।[6]

जिस धरती पर कभी सांझा चूल्हा, भाईचारा और सूफियाना रिवायतें फलती–फूलती थीं, वही धरती रातों–रात नफरत और धार्मिक उन्माद का अखाड़ा बन गई। सदियों के सामाजिक ताने–बाने को पल भर में दरकिनार कर दिया गया और इंसान, इंसान के खून का प्यासा हो गया। चारों तरफ सिर्फ फिरकापरस्ती का जहर घुल चुका था। वातावरण में व्याप्त इस घृणा और धार्मिक सनक का वर्णन करते हुए लिखा गया है कि "क्षणिक उन्माद में लाखों लोग कत्ल कर दिए गए। दोनों तरफ 'नारा–ए–तकबीर अल्लाह–ओ–अकबर' और 'जयकारा–ए–बजरंगी हर–हर महादेव' के नारों से वातावरण विषाक्त हो गया था।"[7] उस समय धर्म का वास्तविक मर्म कहीं खो गया था और हर दिशा में केवल प्रतिशोध तथा हत्या की भावना ही हावी थी। यह हिंसा केवल मुख्य मार्गों या शहरों तक महदूब नहीं रही, बल्कि दूर–दराज के गाँवों और तंग गलियों तक जा पहुँची। जहाँ कल तक जीवन मुस्कुराता था, वहाँ देखते ही देखते मौत का सन्नाटा पसर गया। उस खौफनाक दौर के मंजर को उजागर करते हुए बताया गया है कि "खून–खराबे के बाद गली–कुओं में लाशों के ढेर के ढेर लग गए, जिन पर गिद्ध और कुत्ते मंडरा रहे थे।"[8]

स्त्री और विभाजन की त्रासदी :

विभाजन की हिंसा में स्त्रियों को विशेष प्रकार की यातना झेलनी पड़ी। अपहरण, बलात्कार, जबरन धर्म परिवर्तन, जबरन विवाह और परिवार से अलगाव जैसी घटनाएँ विभाजन के इतिहास का अत्यंत पीड़ादायक पक्ष हैं। विभाजन के बाद भारत और पाकिस्तान दोनों सरकारों ने अपहृत और विस्थापित स्त्रियों की खोज तथा पुनर्वास के लिए योजनाएँ बनाईं। लेकिन यह प्रक्रिया जटिल थी। कई स्त्रियों की व्यक्तिगत इच्छा और परिवार तथा समुदाय की सामाजिक अपेक्षाओं के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हुई। जब नफरत का नंगा नाच सड़कों पर शुरू हुआ, तो शरणार्थियों के काफिलों और चलती रेलगाड़ियों को घेर–घेर कर हमले किए जाने लगे। इन हमलों का मकसद सिर्फ हत्याएं या लूटपाट करना नहीं था, बल्कि अबोध बच्चियों और स्त्रियों को घसीटकर ले जाना, उनके साथ बर्बरता करना और उनका जबरन धर्मांतरण कराना बन चुका था।[9] गाँव के गाँव जल रहे थे, चीख–पुकार का ऐसा मंजर था। यदि उस कालखंड की कल्पना भी करे तो उसकी रूह काँप उठे। अपनी आँखों के सामने अपने पतियों, पिताओं और भाइयों को कत्ल होते देख बेबस स्त्रियाँ हमलावरों के चंगुल में फँस जाती थीं। हमलावरों द्वारा स्त्रियों का अपहरण, उत्पीड़न और उनसे जबरन शादियां करवाने का सिलसिला दोनों ओर अबाध रूप से चलता रहा। विभाजन साहित्य में स्त्री की पीड़ा केवल शारीरिक हिंसा तक सीमित नहीं है। उसमें घर से विस्थापन, सामाजिक असुरक्षा, परिवार से बिछोह और अपनी पहचान के संकट की पीड़ा भी शामिल है।

विभाजन के राजनीतिक परिणाम :

विभाजन के बाद भारत और पाकिस्तान दो स्वतंत्र राष्ट्रों के रूप में अस्तित्व में आए। विभाजन के साथ

ही दोनों देशों के सामने सीमा, सुरक्षा, प्रशासन और संपत्ति से संबंधित अनेक प्रश्न उत्पन्न हुए। जम्मू–कश्मीर का प्रश्न भारत और पाकिस्तान के बीच संबंधों में महत्वपूर्ण मुद्दा बन गया। 1947–48 में दोनों देशों के बीच युद्ध हुआ। इसके बाद भारत–पाकिस्तान संबंधों में राजनीतिक और सुरक्षा संबंधी तनाव बना रहा। विभाजन ने दोनों देशों की राष्ट्रीय पहचान और राजनीतिक संस्थाओं के निर्माण को भी प्रभावित किया। दोनों देशों ने अपने–अपने संविधान, प्रशासनिक ढाँचे और विदेश नीति का विकास किया।इस प्रकार 1947 का विभाजन केवल तत्कालीन सत्ता हस्तांतरण की घटना नहीं था। उसने दक्षिण एशिया के राजनीतिक इतिहास की दिशा को लंबे समय तक प्रभावित किया।

सामाजिक-सांस्कृतिक परिणाम और विभाजन की स्मृति :

विभाजन के कारण अनेक शहरों और गाँवों की जनसंख्या संरचना बदल गई। पंजाब और बंगाल जैसे क्षेत्रों में सदियों से साथ रहने वाले समुदायों के बीच भौगोलिक दूरी उत्पन्न हो गई। रिश्तेदारी और व्यापार के पुराने नेटवर्क टूट गए। इसके बावजूद विभाजन की स्मृतियों में केवल हिंसा नहीं है। अनेक लोगों की स्मृतियों में अपने पुराने पड़ोसियों, मित्रों, गाँवों, मेलों, त्योहारों और साझा सांस्कृतिक जीवन की यादें भी सुरक्षित हैं। विभाजन की स्मृति अगली पीढ़ियों तक भी पहुँची। जिन लोगों ने विभाजन स्वयं देखा था, उन्होंने अपनी संतानों को अपने अनुभव सुनाए। इस प्रकार विभाजन एक ऐतिहासिक घटना होने के साथ–साथ पीढ़ियों में स्थानांतरित होने वाली स्मृति भी बन गया। आज मौखिक इतिहास, आत्मकथाओं, संस्मरणों और साहित्य के माध्यम से विभाजन के उन अनुभवों को समझने का प्रयास किया जा रहा है जो सरकारी दस्तावेजों में पूरी तरह दर्ज नहीं हो सके।

निष्कर्ष :

भारत विभाजन का प्रभाव आज भी दक्षिण एशिया के राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में दिखाई देता है। भारत और पाकिस्तान के संबंध, कश्मीर का प्रश्न, सीमा और सुरक्षा से जुड़े मुद्दे तथा दोनों देशों की राष्ट्रीय पहचान के निर्माण में विभाजन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि महत्वपूर्ण रही है। सामाजिक स्तर पर विभाजन ने जनसंख्या के पुनर्विन्यास, शहरीकरण और नए आर्थिक–सामाजिक समूहों के निर्माण को प्रभावित किया। विस्थापित लोगों ने कठिन परिस्थितियों में अपने जीवन को पुनः स्थापित किया और अनेक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दिया। सांस्कृतिक स्तर पर विभाजन ने एक ऐसी स्मृति को जन्म दिया जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी आगे बढ़ती रही। साहित्य ने इस स्मृति को शब्द दिए। हिंदी साहित्य में विभाजन केवल सीमा निर्माण की कथा नहीं है, बल्कि मनुष्य के घर, परिवार, प्रेम, संबंध, अस्मिता और अस्तित्व की कथा भी है।

भारत विभाजन की व्याख्या किसी एक कारण से नहीं की जा सकती। औपनिवेशिक शासन की नीतियाँ, साम्प्रदायिक राजनीति, राजनीतिक प्रतिनिधित्व के प्रश्न, कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच मतभेद, पाकिस्तान की मांग, ब्रिटिश सत्ता हस्तांतरण की प्रक्रिया तथा 1946–47 की हिंसक परिस्थितियाँ –इन सभी ने विभाजन की प्रक्रिया को प्रभावित किया। अंततः भारत विभाजन हमें यह समझने का अवसर देता है कि राजनीतिक निर्णयों का प्रभाव सामान्य मनुष्य के जीवन पर कितना गहरा हो सकता है। विभाजन का इतिहास केवल सीमाओं के

बनने का इतिहास नहीं, बल्कि उन मनुष्यों का इतिहास भी है जिन्होंने अपने घर खोए, परिवार खोए, अपनी स्मृतियों को सँजोया और फिर नए जीवन का निर्माण किया। इसीलिए विभाजन का अध्ययन इतिहास, राजनीति और साहित्य तीनों दृष्टियों से आवश्यक है। यह अतीत की एक घटना होने के साथ–साथ वर्तमान की सामाजिक स्मृति का भी महत्वपूर्ण हिस्सा है।

संदर्भ–सूची :

1. 1857 की क्राँति, बी0 के0 श्रीवास्तव, पृष्ठ 38
2. हिस्ट्री ऑफ इडिया 1526–1947 ए.डी., एम. एस. मान, पृष्ठ 721
3. भारत विभाजन की अन्त : कथा, प्रियंवद, पृष्ठ 445
4. भारत विभाजन की अन्त : कथा, प्रियंवद, पृष्ठ 509–510
5. पल प्रतिपल–82, संपादक : देश निर्मोही, पृष्ठ 206
6. पल प्रतिपल–82, संपादक : देश निर्मोही, पृष्ठ 206
7. पल प्रतिपल–82, संपादक : देश निर्मोही, पृष्ठ 210
8. पल प्रतिपल–82, संपादक : देश निर्मोही, पृष्ठ 224
9. पल प्रतिपल–82, संपादक : देश निर्मोही, पृष्ठ 219
10. पल प्रतिपल–82, संपादक : देश निर्मोही, पृष्ठ 218

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2026 Page No. : 100-10

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

मृदुला गर्ग के साहित्य-सृजन में भारतीय दर्शन

अनुपमा, शोधार्थी,
डॉ. रीना अग्रवाल, शोध निर्देशक,
फोनिक्स यूनिवर्सिटी रुड़की, हरिद्वार उत्तराखंड।

सारांश :

समकालीन हिंदी साहित्य में मृदुला गर्ग का कथा–साहित्य स्त्री–अस्मिता, व्यक्ति–स्वातंत्र्य, सामाजिक रूढ़ियों, पारिवारिक संबंधों तथा नैतिक द्वंद्वों के सूक्ष्म और निर्भीक चरित्र–चित्रण के लिए उत्कृष्ट स्थान रखता है। उनके साहित्य को प्रायः स्त्री–विमर्श, आधुनिकता–बोध और सामाजिक यथार्थ के संदर्भ में देखा गया है किंतु उनके रचना–संसार में भारतीय दार्शनिक चिंतन की अंतर्धाराओं को भी पहचानना आवश्यक है। मृदुला गर्ग किसी दार्शनिक संदर्भ की व्याख्या करने वाली लेखिका नहीं हैं। उनकी विशेषता यह है कि वे दार्शनिक प्रश्नों को जीवन के अनुभवों और पात्रों के मानसिक द्वंद्वों के माध्यम से प्रस्तुत करती हैं। उनके उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप', 'अनित्य', 'चित्तकोबरा', 'कठगुलाब', 'मैं और मैं' एवं 'मिलजुल मन में' मनुष्य की स्वतंत्रता, नैतिकता, आत्मबोध, देह–मन संबंध, परिवर्तनशीलता और सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे प्रश्न मुख्य रूप से मौजूद हैं। मुख्यतः 'अनित्य' में परिवर्तनशीलता और मूल्य–संकट का बोध तथा 'चित्तकोबरा' और 'कठगुलाब 'में स्त्री के आत्मनिर्णय और अस्मिता की खोज भारतीय दर्शन में निहित आत्मबोध और मुक्ति की व्यापक अवधारणाओं से संवाद करती दिखाई देती है। प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य मृदुला गर्ग के साहित्य में निहित इन दार्शनिक अंर्तध्वनियों का विश्लेषण करना है।

बीज-शब्द : स्त्री–अस्मिता, भारतीय दर्शन, आधुनिकता, आत्मबोध, अनित्यता, स्वतंत्रता, नैतिकता, कर्म एवं मुक्ति।

भूमिका :

हिंदी कथा–साहित्य में मृदुला गर्ग का आगमन ऐसे समय में हुआ जब भारतीय समाज परंपरा तथा आधुनिकता के मध्य तीव्र संक्रमण से विचरण कर रहा था, 'उनका प्रथम उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप' (1975) में प्रकाशित हुआ। इसके बाद' वंशज' (1976), 'चित्तकोबरा' (1979), 'अनित्य' (1980), 'मैं और मैं' (1984), 'कठगुलाब' (1996) और 'मिलजुल मन' (2009) आदि प्रकाशित हुए।' उनका रचना संसार केवल उपन्यास तक सीमित नहीं है। 'उपन्यासों के साथ–साथ उन्होंने नाटक, निबंध, व्यंग्य, कहानी, यात्रा–वृत्तांत, संस्मरण और पत्रकारिता जैसी विधाओं में भी लेखन किया है।' लेखिका मृदुला गर्ग के साहित्य की एक प्रमुख विशेषता यह है, 'वे जीवन को किसी निश्चित नैतिक साँचे में बाँधकर नहीं देखतीं। वे व्यक्ति को उसके निर्णयों, इच्छाओं, कमजोरियों, अंर्तद्वंद्वों और सामाजिक परिस्थितियों के बीच रखकर सवाल करती हैं।' यही सवालों की व्याकुलता

उनके साहित्य को दार्शनिक धरातल प्रदान करती है। भारतीय दर्शन का मूल सरोकार केवल ईश्वर, आत्मा या मोक्ष की अमूर्त चर्चा तक सीमित नहीं है। भारतीय चिंतन–परंपरा में जीवन, कर्म, सुख–दुख, इच्छा, आत्मबोध, परिवर्तन, संबंध, नैतिकता और मुक्ति जैसे प्रश्न भी केंद्रीय रहे हैं। मृदुला गर्ग के साहित्य में इन्हीं जीवनगत प्रश्नों की आधुनिक पुर्नव्याख्या दिखाई देती है। अतः उनके साहित्य में भारतीय दर्शन को प्रत्यक्ष दार्शनिक प्रतिपादन की अपेक्षा जीवन–दर्शन के रूप में देखना अधिक सार्थक होगा।

मृदुला गर्ग का भारतीय दर्शन और रचनात्मक दृष्टिकोण :

भारतीय दर्शन में 'आत्म' की खोज एक महत्वपूर्ण प्रश्न रही है। उपनिषदों से लेकर बौद्ध दर्शन और आधुनिक भारतीय चिंतन तक व्यक्ति और उसके अस्तित्व का प्रश्न अनेक रूपों में सामने आता है। मृदुला गर्ग के साहित्य में भी व्यक्ति अपने सामाजिक परिचय से आगे जाकर स्वयं को पहचानने का प्रयास करता है। 'उनके पात्र केवल परिस्थितियों के शिकार नहीं हैं, वे अपने निर्णयों को लेकर प्रश्न करते हैं और स्वयं से संवाद करते हैं। मुख्य रूप से उनकी स्त्री पात्र सामाजिक भूमिकाओं माँ, बहू या पत्नी–प्रेमिका तक सीमित न रहकर अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की तलाश करती हैं।' इस दृष्टि से मृदुला गर्ग के यहाँ 'आत्मबोध' किसी आध्यात्मिक साधना का पर्याय न होकर अपने अस्तित्व को स्वयं पहचानने की प्रक्रिया बन जाता है। उनके साहित्य पर प्राप्त आलोचनात्मक अध्ययनों में भी स्त्री–अस्मिता, स्वतंत्रता और अस्तित्व–बोध को केंद्रीय सरोकार माना गया है।

'अनित्य' और परिवर्तनशीलता का भारतीय दर्शन :

मृदुला गर्ग के साहित्य में भारतीय दार्शनिक अवधारणाओं से सबसे स्पष्ट संवाद उनके उपन्यास अनित्य के शीर्षक और कथ्य में दिखाई देता है, ''अनित्य' का सामान्य दार्शनिक अर्थ है जो नित्य नहीं है, जो परिवर्तनशील है। भारतीय चिंतन में संसार की परिवर्तनशीलता एक महत्त्वपूर्ण विचार रही है। मृदुला गर्ग 'अनित्य में' इसी परिवर्तनशीलता को सामाजिक, राजनीतिक तथा नैतिक जीवन को रूपायित करती हैं। उपन्यास स्वतंत्रता आंदोलन की अहिंसात्मक और क्रांतिकारी दोनों धाराओं की पृष्ठभूमि में लिखा गया है।' प्रकाशकीय विवरण भी इसे स्वतंत्रता आंदोलन तथा उसके बाद के सामाजिक–मूल्यों के संकट से जोड़ता है। इस उपन्यास का 'अनित्य' केवल एक नाम नहीं अपितु एक दार्शनिक संकेत की तरह देखा जा सकता है। सामाजिक मूल्य बदलते हैं, राजनीतिक आदर्श बदलते हैं, व्यक्ति के विश्वास बदलते हैं और संबंधों का स्वरूप भी परिवर्तनशील रहता है, 'इस परिवर्तन के बीच मनुष्य की सबसे बड़ी चुनौती यह है कि वह अपने मूल्यों को किस प्रकार पहचानता और बचाता है। उपन्यास में देवदारु का प्रतीक भी विशेष अर्थ रखता है। उपलब्ध पुस्तक–विवरण में इसे ऐसे संस्कारवान व्यक्तित्व के प्रतीक के रूप में व्याख्यायित है जो राष्ट्रीय संघर्ष की मूल्य–चेतना से निर्मित हुआ था परंतु स्वतंत्रता के बाद बदलते सामाजिक वातावरण में कमजोर पड़ता गया।' यहाँ भारतीय दर्शन की 'अनित्यता' आधुनिक सामाजिक यथार्थ से जुड़ जाती है। परिवर्तन को नकारना संभव नहीं किंतु परिवर्तन के साथ मूल्य–संरक्षण का प्रश्न अनिवार्य हो जाता है। इस प्रकार अनित्य केवल राजनीतिक उपन्यास नहीं अपितु मनुष्य और मूल्यों के परिवर्तनशील संबंध का दार्शनिक आख्यान भी बन जाता है।

आत्मबोध और स्त्री–अस्मिता :

मृदुला गर्ग के साहित्य में भारतीय दर्शन का दूसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष आत्मबोध है। भारतीय दार्शनिक परंपरा में आत्मज्ञान को मनुष्य की गहरी पहचान से जोड़ा गया है। आधुनिक सामाजिक संदर्भ में मृदुला गर्ग इसी

आत्मबोध को स्त्री–अस्मिता के माध्यम से पुर्नस्थापित करती हैं। "उसके हिस्से की धूप' और 'चित्तकोबरा' में स्त्री अपने संबंधों और सामाजिक अपेक्षाओं के भीतर रहते हुए स्वयं के अस्तित्व को पहचानने की कोशिश करती है।' चित्तकोबरा' को आधुनिक नारी के मन, संबंधों की जटिलता तथा पारंपरिक यौन–वर्जनाओं के संदर्भ में पढ़ा गया है।' यहाँ स्वतंत्रता केवल बाहरी बंधनों से मुक्ति नहीं है। वास्तविक स्वतंत्रता तब संभव है जब व्यक्ति अपने निर्णय स्वयं लेने की क्षमता विकसित करे। इस अर्थ में मृदुला गर्ग की स्त्री–चेतना आत्मबोध से जुड़ती है। उनकी स्त्री–पात्रों के संघर्ष को केवल पुरुष के विरोध के रूप में देखना उनके साहित्य को सीमित कर देना होगा। उनका मूल प्रश्न व्यक्ति की स्वतंत्र सत्ता का है। स्त्री के संदर्भ में यह प्रश्न अधिक तीखा इसलिए हो जाता है क्योंकि पारंपरिक सामाजिक संरचनाएँ उसकी पहचान को संबंधों के माध्यम से निर्धारित करती रही हैं।

इस प्रकार मृदुला गर्ग के यहाँ स्त्री का आत्मबोध भारतीय दार्शनिक 'आत्म–अन्वेषण' का आधुनिक सामाजिक रूप कहा जा सकता है।

कर्म, निर्णय और नैतिक द्वंद्व :

भारतीय दर्शन में कर्म का अर्थ केवल धार्मिक कर्मकांड नहीं है मनुष्य के कार्य और उनके परिणाम के बीच संबंध भी कर्म के विचार का महत्वपूर्ण आधार है। मृदुला गर्ग के पात्र सतत निर्णय लेते हैं और उनके नैतिक परिणामों से दो चार होते हैं। श्रीमती गर्ग की रचनाओं में कोई पात्र पूर्णतः देवत्वपूर्ण या पूर्णतः दुष्ट नहीं है। मनुष्य अपने समय, परिस्थितियों, इच्छाओं और सामाजिक दबावों के बीच निर्णय करता है। यही निर्णय उसके व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। 'अनित्य' इसका महत्वपूर्ण उदाहरण है, 'उपन्यास में स्वतंत्रता आंदोलन की आदर्शवादी चेतना और स्वतंत्रता के बाद विकसित स्वार्थ, समझौते तथा मूल्य–संकट के बीच तनाव दिखाई देता है। उपलब्ध आलोचनात्मक सामग्री इसे राष्ट्रीय संघर्ष के आदर्शों और स्वतंत्रता के बाद के सामाजिक पतन के द्वंद्व से जोड़ती है।' यहाँ कर्म का प्रश्न व्यक्तिगत होकर भी सामाजिक बन जाता है। इस प्रकार मृदुला गर्ग के साहित्य में नैतिकता किसी उपदेश का विषय नहीं बल्कि जीवन की जटिल परिस्थितियों में निर्णय लेने की प्रक्रिया है।

देह और आत्म के द्वंद्व से समन्वय तक :

भारतीय दर्शन में शरीर और आत्मा के संबंध पर विभिन्न दार्शनिक परंपराओं ने अलग–अलग विचार प्रस्तुत किए हैं। आधुनिक साहित्य में यही प्रश्न तन, मन और अवचेतना के संबंध के रूप में सामने आता है। लेखिका ने स्त्री की देह को केवल सौंदर्य या पुरुष की दृष्टि का विषय नहीं माना। वे देह के साथ जुड़ी इच्छाओं, सामाजिक निषेधों और मानसिक प्रतिक्रियाओं को मनुष्य के अस्तित्वगत प्रश्नों से जोड़ती हैं। 'चित्तकोबरा' में देह और संबंधों के प्रश्नों को लेकर जो विवाद और विमर्श विकसित हुआ, वह इसी कारण महत्त्वपूर्ण है। उनका दृष्टिकोण यह संकेत देता है कि मनुष्य को केवल शरीर या केवल आत्मा में विभाजित करके समझना पर्याप्त नहीं। तन, मन, आकांक्षा और सामाजिक चेतना एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं। इस दृष्टि से उनका साहित्य आधुनिक मनुष्य के समग्र अस्तित्व का अन्वेषण करता है।

मुक्ति की अवधारणा और स्त्री–स्वतंत्रता :

भारतीय दर्शन में मुक्ति का अर्थ बंधनों से अंतिम मुक्ति और आत्म स्वरूप की पहचान से जुड़ा है। मृदुला गर्ग के साहित्य में 'मुक्ति' का आधुनिक अर्थ सामाजिक, मानसिक और भावनात्मक स्वतंत्रता के रूप में सामने आता है। उनकी स्त्री पात्र परंपरा द्वारा निर्धारित भूमिकाओं पर प्रश्न उठाती हैं। वे यह स्वीकार करने से इनकार

करती हैं कि उनका पूरा अस्तित्व केवल परिवार या पुरुष–संबंध से निर्धारित हो। इस प्रकार उनका संघर्ष बाहरी व्यवस्था के साथ–साथ आंतरिक जकड़नों से भी है। 'आलोचनात्मक अध्ययनों में भी यह रेखांकित किया गया है कि मृदुला गर्ग के साहित्य में स्त्री की स्वतंत्रता केवल सामाजिक स्वतंत्रता नहीं अपितु मानसिक और आत्मचेतनात्मक स्वतंत्रता से भी जुड़ी है।' यहाँ 'मुक्ति' का अर्थ सामाजिक उत्तरदायित्व से पलायन नहीं है बल्कि व्यक्ति को अपने जीवन के उत्तरदायित्वों को स्वीकार करने योग्य बनाना है। इस अर्थ में मृदुला गर्ग की स्वतंत्र स्त्री भारतीय दर्शन की आत्मनिर्भर चेतना के आधुनिक लौकिक रूप का प्रतिनिधित्व करती है।

'कठगुलाब' और संबंधों का पुर्नसृजन :

'कठगुलाब' में संबंधों की जटिलता, स्त्री–अस्मिता और सामाजिक संरचनाओं का प्रश्न प्रमुख है, 'उपन्यास 1996 में प्रकाशित हुआ। 'कठगुलाब' का प्रतीक संबंधों में आई कठोरता और संवेदनात्मक शुष्कता की ओर संकेत करता है।' आलोचनात्मक अध्ययन में भी इसे स्त्री–पुरुष संबंधों की जटिलता तथा संबंधों में संवेदना की आवश्यकता के प्रतीक के रूप में पढ़ा गया है। भारतीय दर्शन में जीवन को संबंध–विहीन इकाई के रूप में नहीं देखा गया। मनुष्य परिवार, समाज और जीवन–जगत से जुड़ा हुआ है। मृदुला गर्ग इसी संबंध–बोध को आधुनिक संदर्भ में पुनः प्रश्नांकित करती हैं। उनके लिए संबंध तभी सार्थक हैं जब उनमें स्वतंत्रता, सम्मान, संवेदना और संवाद हो। अतः कठगुलाब को केवल स्त्री–विमर्श के उपन्यास के रूप में नहीं बल्कि मानवीय संबंधों के पुनर्सृजन की दार्शनिक आवश्यकता के रूप में भी पढ़ा जा सकता है।

अहिंसा, प्रतिरोध एवं नैतिक साहस :

मृदुला गर्ग के साहित्य में प्रतिरोध का स्वर अत्यंत महत्त्वपूर्ण है किंतु उनका प्रतिरोध केवल आक्रोश नहीं है। वह प्रश्न करने, असहमति व्यक्त करने और स्वतंत्र निर्णय लेने की प्रक्रिया है। ''अनित्य' में स्वतंत्रता आंदोलन की अहिंसात्मक तथा क्रांतिकारी दोनों धाराओं की पृष्ठभूमि का उपयोग किया गया है।' इससे यह ज्ञात होता है कि लेखिका इतिहास को केवल घटनाओं के रूप में नहीं बल्कि मूल्य–संघर्ष के रूप में देखती हैं। भारतीय चिंतन में अहिंसा का व्यापक अर्थ केवल हिंसा का अभाव नहीं बल्कि जीवन के प्रति संवेदनशीलता भी है। लेखिका मृदुला गर्ग का साहित्य जब स्त्री, व्यक्ति और संबंधों की गरिमा का प्रश्न उठाता है तब वह मानवीय संवेदना को केंद्रीय मूल्य बनाता है।

निष्कर्ष रूप में स्पष्ट होता है कि लेखिका मृदुला गर्ग के साहित्य में भारतीय दर्शन किसी शास्त्रीय ग्रंथ की पुनरावृत्ति के रूप में नहीं बल्कि आधुनिक जीवन के अनुभवों में रूपांतरित होकर उपस्थित होता है। उनकी रचनाओं में 'अनित्यता' जीवन और सामाजिक मूल्यों की परिवर्तनशीलता के रूप में, 'आत्मबोध' व्यक्ति की अस्मिता और आत्मनिर्णय के रूप में 'कर्म' नैतिक निर्णय और उसके परिणाम के रूप में तथा 'मुक्ति' सामाजिक और मानसिक बंधनों से स्वतंत्रता के रूप में सामने आती है। उनकी स्त्री पात्र भारतीय समाज की परंपरागत संरचनाओं से प्रश्न करती हैं परंतु उनका लक्ष्य केवल विद्रोह नहीं बल्कि स्वयं की पहचान और गरिमापूर्ण अस्तित्व की स्थापना है। ''चित्तकोबरा' में आत्मनिर्णय और संबंधों की जटिलता, अनित्य में मूल्य–परिवर्तन और इतिहा बोध तथा 'कठगुलाब' में संबंधों की संवेदनात्मक पुनर्रचना, इन सभी को भारतीय दार्शनिक सरोकारों के आधुनिक रूपांतरण के रूप में देखा जा सकता है।

इस प्रकार मृदुला गर्ग का साहित्य भारतीय दर्शन को प्रत्यक्ष उपदेश के रूप में नहीं बल्कि जीवन की

जटिलताओं के मध्य मनुष्य की स्वतंत्र चेतना की खोज के रूप में प्रस्तुत करता है।' उनका लेखन प्रश्न उठाता है कि मनुष्य सामाजिक भूमिकाओं, परंपराओं और संबंधों के बीच अपनी स्वतंत्रता को कैसे पहचान सकता है? यही प्रश्न उनके साहित्य को समकालीन भी बनाता है और दार्शनिक गहराई भी प्रदान करता है। अतः मृदुला गर्ग के साहित्य, सृजन में भारतीय दर्शन की उपस्थिति प्रत्यक्ष दार्शनिक प्रतिपादन की अपेक्षा कर्म, नैतिकता, आत्मबोध, अनित्यता, संबंध और मुक्ति जैसे जीवन के मूल्यों की रचनात्मक पुर्नव्याख्या के रूप में दिखाई देती है। उनकी रचनात्मक दृष्टि भारतीय चिंतन की मूल प्रश्नाकुलता को आधुनिक स्त्री और आधुनिक मनुष्य के अनुभवों से जोड़ती है। यही उनकी साहित्यिक विशिष्टता है।

संदर्भ सूची :

1. गर्ग, मृदुला – 'उसके हिस्से की धूप', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. गर्ग, मृदुला – 'चित्तकोबरा', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. गर्ग, मृदुला – 'अनित्य', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. गर्ग, मृदुला – 'कठगुलाब', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।
5. गर्ग, मृदुला – 'मैं और मैं', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. गर्ग, मृदुल – 'रंग–ढंग', निबंध–संग्रह।
7. गर्ग, मृदुला – 'चुकते नहीं सवाल', निबंध–संग्रह।
8. कामल अहमद – "नारी–मुक्ति आज भी दिवास्वप्न है!"
   मृदुला गर्ग से साक्षात्कार, आजकल विभाग, भारत सरकार।
9. विश्व हिंदी डेटाबेस – मृदुला गर्ग, 'जीवन एवं रचना' संबंधी विवरण।
10. वाणी प्रकाशन – 'मृदुला गर्ग का रचना–संसार एवं प्रकाशित कृतियों का विवरण'
11. शर्मा, शेख – "समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श"– चयनित उपन्यासों का आलोचनात्मक अध्ययन।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2026 Page No. : 112-123

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

Corrosion Protection of Drinking Water Pipelines and Its Impact on Human Health

Dr. Manjay Kumar Thakur

Assistant Professor, Department of Chemistry

Gopeshwar College Hathwa, Gopalganj.

ABSTRACT

Metallic pipelines carrying drinking water are continuously exposed to corrosive conditions that cause electrochemical degradation of pipe surfaces and release of dissolved metals into the water supply. The principal materials affected — iron, copper, lead and galvanised steel — each corrode through characteristic chemical pathways governed by water chemistry factors including pH, alkalinity, dissolved oxygen and chloride concentration. Lead is of particular health concern because no established safe exposure level exists for children. This paper reviews the electrochemical mechanisms of pipeline corrosion, identifies the water-chemistry parameters that govern metal release, surveys the metals released and their health implications, and evaluates the principal corrosion-protection strategies. The evidence shows that pH and alkalinity management combined with orthophosphate dosing can substantially reduce metal concentrations in drinking water, though no single approach is universally effective across all distribution systems.

Keywords :

Corrosion · Drinking Water · Pipelines · Metal Leaching · Corrosion Protection · Water Chemistry · Human Health

INTRODUCTION :

Safe drinking-water delivery depends on a vast network of pipelines — iron, steel, copper, galvanised steel and lead — that share a fundamental vulnerability: they corrode when exposed to water and its dissolved constituents. Corrosion is not merely a

structural concern; it is a water-quality problem. As metal surfaces degrade electrochemically, dissolved ions enter the water flow and may reach consumers at concentrations that affect taste, appearance or health. The significance of pipeline corrosion as a public-health issue became globally apparent during the Flint, Michigan water crisis of 2014–2016, in which a change in source water without adequate corrosion-control treatment caused lead to leach from service lines into the distribution system, elevating blood-lead levels in the city's children (Hanna-Attisha et al., 2016; Pieper et al., 2017). While Flint was an extreme failure, it demonstrated the broader vulnerability of aging distribution infrastructure to inadequate corrosion management. Water chemistry directly controls corrosion behaviour. pH, alkalinity, dissolved oxygen, chloride, temperature and disinfectant type all influence whether a protective scale forms on pipe surfaces or whether metal dissolution continues unchecked. This paper reviews the electrochemical basis of pipeline corrosion, the factors that govern its severity, the metals released and their health implications, and the corrosion-protection strategies available to water utilities.

RESEARCH PROBLEM :

Large organizations in banking, healthcare, retail and telecommunications generate more data than traditional systems can process — and the same applies to water infrastructure challenges. The core problem is a fundamental mismatch between old pipelines and modern water-quality requirements. Pipes installed decades ago were not designed around current knowledge of lead toxicity or current regulatory standards. They continue to release metals under conditions that were once considered acceptable. When water chemistry changes — through source-water switching, disinfectant changes or seasonal variation — corrosion behaviour can shift rapidly, releasing metals from both pipe walls and established corrosion scales (Pieper et al., 2017). The costs of replacement are high and the risks of inadequate management are severe, particularly for vulnerable populations.

OBJECTIVES OF THE STUDY :

The objectives of this paper are: (1) to examine the electrochemical mechanisms of corrosion in iron, copper and lead pipelines; (2) to identify the water-chemistry parameters that most influence corrosion rate and metal release; (3) to describe the principal metals released and their health implications; and (4) to review and compare corrosion-protection strategies for drinking-water distribution systems.

RESEARCH QUESTIONS :

This paper addresses three research questions: (1) What electrochemical and chemical processes govern pipeline corrosion, and how do they differ across pipe materials? (2) Which water-quality parameters have the greatest influence on metal release, and how do they interact? (3) How do corrosion-control strategies reduce the concentration of metals reaching consumers, and what are the trade-offs involved?

LITERATURE REVIEW :

Research on drinking-water pipeline corrosion has developed across electrochemistry, materials science and public health since the 1980s, when regulatory attention on lead and copper intensified. The foundational understanding of iron corrosion was provided by Sontheimer, Kolle and Snoeyink (1981), who showed that a siderite ($FeCO_3$) scale could provide partial protection under appropriate alkalinity and pH conditions, establishing the principle that corrosion products rather than raw pipe surfaces govern long-term metal release. Lead solubility as a function of water chemistry was analysed systematically by Schock (1980), whose thermodynamic calculations demonstrated that modest pH or alkalinity increases could substantially reduce dissolved lead. Edwards and Dudi (2004) subsequently showed that switching from free chlorine to chloramine disinfection significantly increased lead release by removing the oxidative conditions that maintain the PbO_2 (plattnerite) protective scale, a finding with major practical implications for utility treatment decisions. Lytle and Schock (2005) confirmed that PbO_2 is responsible for the apparent lead stability in well-maintained chlorinated systems. Peng and Korshin (2011) demonstrated that iron corrosion scales can accumulate trace contaminants including arsenic, which may be mobilised when water chemistry changes. Pieper, Tang and Edwards (2017) traced the Flint crisis to the specific mechanism of interrupted corrosion control and scale destabilisation. Kambatla and colleagues (2014) noted the importance of system-specific assessment, since interaction between disinfectant chemistry, inhibitor dosing and source-water quality in complex networks remains incompletely characterised.

CHEMISTRY OF PIPELINE CORROSION :

Pipeline corrosion is fundamentally an electrochemical process involving coupled oxidation at anodic sites and reduction at cathodic sites.

5.1 Iron Pipes :

The anodic oxidation of iron releases Fe^{2+} :

$$Fe \rightarrow Fe^{2+} + 2e^-$$

In aerated neutral to alkaline water, dissolved oxygen is reduced at cathodic sites :

$$O_2 + 2H_2O + 4e^- \rightarrow 4OH^-$$

Fe^{2+} is oxidised in aerated water to iron(III) oxyhydroxides (goethite, α-FeOOH; lepidocrocite, γ-FeOOH) and hematite (Fe□O□), constituting the familiar reddish-brown rust. These reactions proceed as:

$$4Fe(OH)_2 + O_2 + 2H_2O \rightarrow 4Fe(OH)_3$$

5.2 Lead and Copper Pipes :

Lead undergoes anodic dissolution ($Pb \rightarrow Pb^{2+} + 2e^-$) to form sparingly soluble cerussite (PbCO□) and hydrocerussite (Pb□(CO□)□(OH)□). In chlorinated systems, residual oxidant converts Pb^{2+} to Pb^{4+}, forming insoluble plattnerite (β-PbO□) which substantially limits lead release. Switching to chloramine removes this protection (Edwards & Dudi, 2004). Copper corrodes more slowly, forming cupric oxide and carbonate phases at neutral to alkaline pH. Galvanic corrosion occurs when dissimilar metals are joined; in lead-copper connections, lead corrodes preferentially as the anode.

FACTORS AFFECTING CORROSION :

pH is the most controllable and influential parameter. Below pH 7.0, protective carbonate scales are suppressed and metal dissolution accelerates; above pH 7.5, stable carbonate and oxide phases form on iron and lead surfaces, reducing release (Schock, 1980). Most regulatory programmes target distribution-system pH of 7.5–9.0 (U.S. EPA, 2021). Alkalinity from dissolved carbonate ($CO□^{2-}$) and bicarbonate ($HCO□^-$) promotes protective mineral scale formation. Alkalinity below 40 mg/L as CaCO□ is associated with poor scale development; the Langelier Saturation Index (LSI) is widely used to assess whether water will deposit or dissolve protective CaCO□ scale (Langelier, 1936). Elevated chloride ions (>100 mg/L) disrupt passive oxide films and promote pitting in copper pipes. Disinfectant type matters critically for lead: chloramine is a weaker oxidant than free chlorine and cannot maintain the PbO□ scale, causing lead release when utilities switch disinfectants. Temperature increases electrochemical reaction rates and is associated with higher metal concentrations in warmer months. Overnight stagnation in household plumbing allows extended metal dissolution, making first-flush samples highly sensitive to corrosion events.

Table 1: Influence of Water Chemistry Parameters on Pipeline Corrosion

Parameter	Condition / Range	Effect on Corrosion	Pipe Material	Source
pH	< 7.0	Suppressed carbonate scale; increased metal dissolution; proton-driven cathodic reaction	Fe, Pb	Schock (1980)
pH	7.5–9.0	Protective carbonate/oxide scale; substantially reduced metal release	Fe, Pb, Cu	Schock (1980); U.S. EPA (2021)
Alkalinity	< 40 mg/L as $CaCO_3$	Insufficient carbonate for protective scale; poor buffering	Fe, Pb	Langelier (1936)
Alkalinity	> 100 mg/L as $CaCO_3$	Favours protective $CaCO_3$ precipitation; reduces corrosion	Fe, Pb	Sontheimer et al. (1981)
Chloride	>100 mg/L	Disruption of passive oxide films; pitting corrosion	Cu, Fe	Schock (1999)
Disinfectant	Chloramine (vs free Cl_2)	Reduction of PbO_2 protective scale; increased Pb release	Pb	Edwards & Dudi (2004)

Source : Schock (1980, 1999); Sontheimer et al. (1981); Langelier (1936); Edwards & Dudi (2004); U.S. EPA (2021).

Table 1 confirms that pH and alkalinity are the most controllable parameters. The role of disinfectant type in destabilising the PbO_2 lead-pipe scale is of particular practical importance, demonstrating that treatment decisions across different aspects of water chemistry must be coordinated.

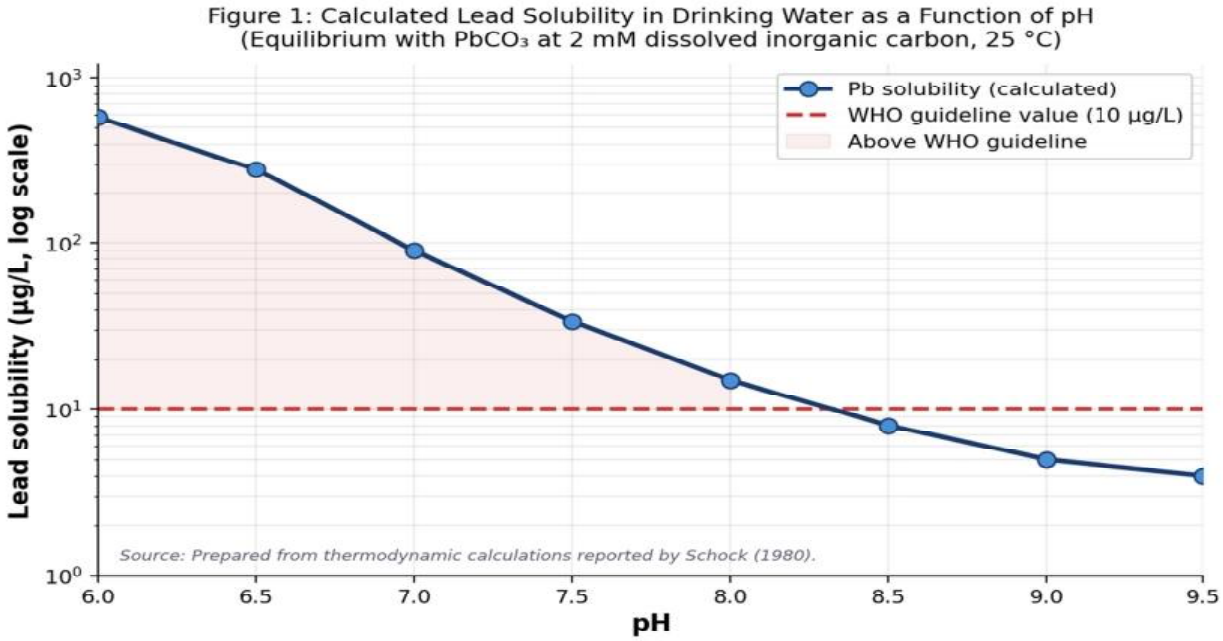


Figure 1 : Calculated lead solubility vs pH in drinking water at 2 mM dissolved inorganic carbon, 25°C, based on thermodynamic calculations by Schock (1980). WHO guideline (10 µg/L) shown for reference. Actual values depend on site-specific water chemistry.

Figure 1 shows the steep decline in lead solubility as pH rises, confirming why pH adjustment above 7.5 is a regulatory minimum. The WHO guideline of 10 µg/L is thermodynamically reached near pH 8.5 under these conditions.

CORROSION PRODUCTS AND METAL RELEASE :

Corrosion generates dissolved metal ions and solid scale layers on pipe surfaces. These scales may temporarily limit further dissolution but can concentrate trace contaminants and release them when water chemistry changes. Iron releases Fe^{2+} and Fe^{3+} , causing red-brown discoloration above 0.3 mg/L; importantly, iron scales accumulate arsenic and other trace metals that can be mobilised during source-water transitions (Peng & Korshin, 2011). Lead is the contaminant of greatest health significance: first-flush concentrations from homes with lead service lines can substantially exceed the WHO guideline of 10 µg/L without corrosion control (WHO, 2017). The protective PbO_2 scale in chlorinated systems significantly limits dissolution (Lytle & Schock, 2005). Copper above 1–2 mg/L causes blue-green staining and may affect infants. Zinc from galvanised coatings creates taste problems above 3 mg/L; nickel from stainless steel fittings may sensitize allergic individuals.

Table 2 : Corrosion-Related Metals, Chemical Forms and WHO Guideline Values

Metal	Pipeline Source	Chemical Forms	Health Concern	WHO Guideline
Iron (Fe)	Cast/ductile iron mains; steel pipes	Fe^{2+} , Fe^{3+} ; Fe(OH)□, FeOOH	Red-brown discoloration; trace-metal scale accumulation	0.3 mg/L (aesthetic)
Copper (Cu)	Copper service pipes; fittings	Cu^{2+} ; Cu□(OH)□CO□; CuO	Blue-green staining; GI effects in infants at high conc.	2 mg/L (health-based)
Lead (Pb)	Lead service lines; solder; brass	Pb^{2+} ; $PbCO_3$; Pb□(CO□)□(OH)□; β-PbO□	Neurodevelopmental harm — no safe level in children	0.01 mg/L (health-based)
Zinc (Zn)	Galvanised steel coatings	Zn^{2+} ; $ZnCO_3$	Taste affected above ~3 mg/L; low health risk	3 mg/L (aesthetic)
Nickel (Ni)	Stainless steel fittings; alloys	Ni^{2+} ; NiOOH	Allergic sensitization; potential carcinogen	0.07 mg/L (health-based)

Source : WHO (2022); WHO (2017). Aesthetic values are distinct from health-based guidelines.

IMPACT ON HUMAN HEALTH :

The health implications of pipeline corrosion arise from the metals released into drinking water. Lead is of most serious concern: there is no established blood-lead level in children below which developmental harm does not occur (CDC, 2012). Even low blood-lead levels are associated with reduced IQ, impaired attention and behavioural difficulties. Infants consuming formula prepared with lead-contaminated tap water face disproportionate risk because lead bioavailability is higher in young children and their developing nervous systems are more sensitive. The Flint, Michigan crisis demonstrated at population level that failure of corrosion control in systems with lead service lines produces measurable increases in blood-lead levels in children (Hanna-Attisha et al., 2016). Copper at the WHO guideline of 2 mg/L is set against acute gastrointestinal effects; prolonged high intake may harm individuals with conditions

affecting copper metabolism. Nickel from fittings is primarily a risk for nickel-allergic individuals (WHO guideline 0.07 mg/L). Elevated iron concentrations, while not a direct health hazard, reduce consumer confidence and may drive tap-water avoidance. Vulnerable populations — infants, pregnant women, individuals with pre-existing conditions — face the highest relative risks from corrosion-related metal exposure.

CORROSION PROTECTION METHODS :

pH and Alkalinity Control is the most widely implemented strategy. Raising distribution-system pH to 7.5–9.0 by adding lime, soda ash or sodium hydroxide substantially reduces lead and iron dissolution and promotes protective CaCO□ scale. The Langelier Saturation Index is used to calibrate treatment to achieve slight CaCO□ supersaturation at pipe surfaces (Langelier, 1936). Orthophosphate Dosing at 1–3 mg/L as phosphorus is the most effective intervention for lead-containing systems. Phosphate ions react with dissolved lead at pipe surfaces to form sparingly soluble pyromorphite and related minerals, creating a passivating layer that substantially reduces lead release. In copper systems, phosphate adsorbs onto cupric oxide surfaces and limits dissolution. U.S. EPA (2021) requires utilities with lead service lines to implement optimal corrosion control treatment, which in most cases includes orthophosphate. Protective Coatings and Linings — particularly cement-mortar lining on iron and steel pipes — physically separate the metal from water and raise local pH, supporting carbonate scale formation. Epoxy linings serve a similar function in smaller pipes. Cathodic Protection applies external direct current to suppress anodic oxidation, primarily suited to large buried steel pipelines and storage structures. Material Replacement, specifically the removal of lead service lines, is the most permanent solution. The U.S. EPA Lead and Copper Rule Revisions (2021) require complete lead service line replacement within ten years. Water-Quality Monitoring — particularly first-flush sampling protocols — is essential to verify treatment effectiveness and detect disruptions before consumers are affected.

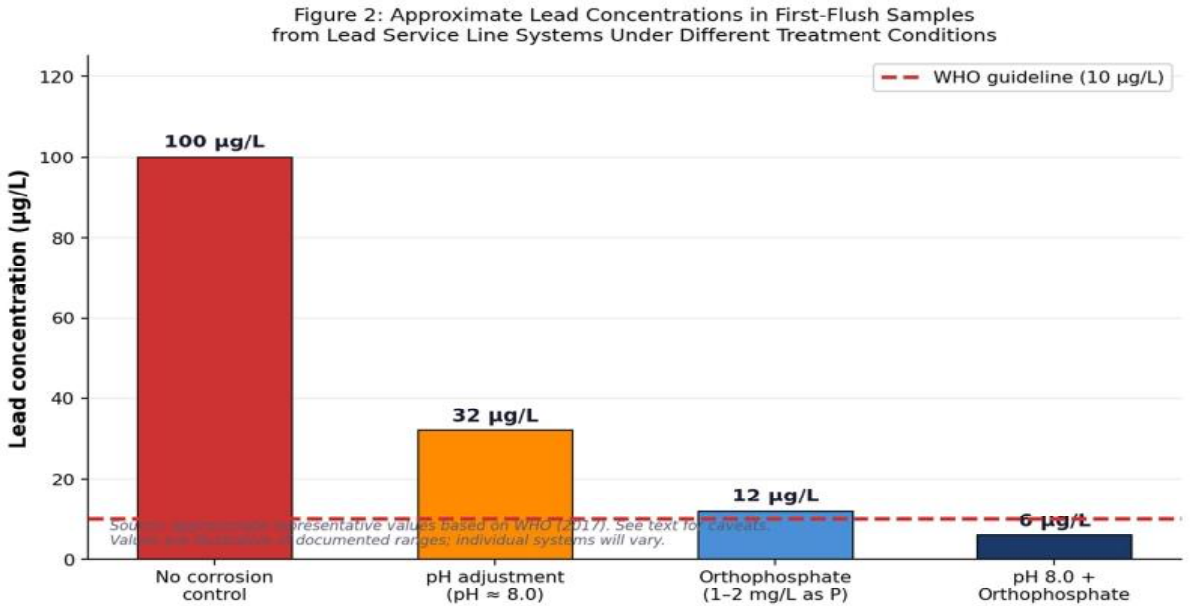


Figure 2 : Approximate lead concentrations in first-flush samples from lead service line systems under different treatment conditions. Representative values based on documented ranges in WHO (2017). Figures are illustrative; actual results depend on system-specific chemistry.

Figure 2 illustrates that combined pH adjustment and orthophosphate dosing achieves the lowest lead concentrations, consistent with the complementary mechanisms of carbonate scale formation and lead phosphate passivation. pH adjustment alone may not be sufficient to meet the WHO guideline of 10 µg/L in systems with lead service lines.

DISCUSSION :

Water chemistry — particularly pH and alkalinity — is the primary determinant of both corrosion rate and the concentration of metals released. The thermodynamic relationship established by Schock (1980) provides the chemical rationale for maintaining distribution-system pH above 7.5, and utility experience confirms its effectiveness. However, pH adjustment alone is insufficient in systems with lead service lines; orthophosphate dosing provides an additional layer of protection through lead phosphate passivation. The role of disinfectant chemistry deserves emphasis. Edwards and Dudi (2004) showed that switching from free chlorine to chloramine can dramatically increase lead release by reducing the PbO□ scale, demonstrating that decisions across different aspects of treatment must be coordinated. The Flint crisis further illustrated that changes in source water — raising chloride concentrations and lowering pH — can rapidly destabilise established corrosion scales (Pieper et al., 2017). Effective corrosion management is not a one-time treatment decision; it requires ongoing monitoring and adjustment whenever source water, disinfectant or treatment

chemistry changes. No single protection strategy is universally suitable; the appropriate combination must be selected based on pipe materials, water chemistry and available resources.

CHALLENGES AND LIMITATIONS :

Water chemistry varies significantly by region and season, so corrosion-control approaches must be individually calibrated. The heterogeneous mix of pipe ages, materials and joint types in any real distribution network creates conditions that no single strategy can address uniformly. Changes in source water or disinfectant chemistry can destabilise established scales and trigger sudden metal release. The cost of complete lead service line replacement is substantial, and many utilities face resource constraints. Long-term monitoring is necessary to detect gradual changes in corrosion behaviour and confirm continued treatment effectiveness.

FUTURE SCOPE :

In-line electrochemical sensors capable of continuously monitoring corrosion potential, pH and key anions would allow utilities to detect corrosion changes in real time. Machine-learning algorithms applied to water-quality and pipe-inventory data could identify high-risk network zones before metal concentrations at the tap become elevated. Research into more targeted phosphate formulations aims to achieve effective passivation at lower doses, reducing concerns about microbial growth stimulation. Advanced spectroscopic methods for characterising corrosion scales in situ will improve understanding of how long-term scales accumulate and release trace metals under changing water chemistry.

CONCLUSION :

Pipeline corrosion is a chemically complex process driven by electrochemical reactions between pipe surfaces and water chemistry. The key parameters — pH, alkalinity, dissolved oxygen, chloride and disinfectant type — are well characterised, and the thermodynamic relationships governing metal solubility provide a rational basis for corrosion-control design.

Lead is the corrosion-related contaminant of greatest public-health concern; the absence of a safe blood-lead level in children and the continued presence of lead service lines make lead corrosion control the highest regulatory priority. Effective protection requires combining pH and alkalinity adjustment, orthophosphate dosing and, where possible, material replacement, supported by regular water-quality monitoring. A regulatory framework with public health at its centre is essential to

ensuring that aging water infrastructure does not compromise the safety of drinking water for the populations it serves.

REFERENCES :

1. CDC. (2012). CDC response to advisory committee on childhood lead poisoning prevention recommendations in "Low level lead exposure harms children: A renewed call for primary prevention." Centers for Disease Control and Prevention.
2. Edwards, M., & Dudi, A. (2004). Role of chlorine and chloramine in corrosion of lead-bearing plumbing materials. Journal of the American Water Works Association, 96(10), 69–81.
3. Hanna-Attisha, M., LaChance, J., Sadler, R. C., & Champney Schnepp, A. (2016). Elevated blood lead levels in children associated with the Flint drinking water crisis: A spatial analysis of risk and public health response. American Journal of Public Health, 106(2), 283–290. https://doi.org/10.2105/AJPH.2015.303003
4. Langelier, W. F. (1936). The analytical control of anti-corrosion water treatment. Journal of the American Water Works Association, 28(10), 1500–1521.
5. Lytle, D. A., & Schock, M. R. (2005). Formation of Pb(IV) oxides in chlorinated water. Journal of the American Water Works Association, 97(11), 102 114.
6. Peng, C. Y., & Korshin, G. V. (2011). Speciation of trace inorganic contaminants in corrosion scales and deposits formed in drinking water distribution systems. Water Research, 45(17), 5553–5563.
7. Pieper, K. J., Tang, M., & Edwards, M. A. (2017). Flint water crisis caused by interrupted corrosion control: Investigating "ground zero" home. Environmental Science & Technology, 51(4), 2007–2014. https://doi.org/10.1021/acs.est.6b04034
8. Schock, M. R. (1980). Response of lead solubility to dissolved carbonate in drinking water. Journal of the American Water Works Association, 72(12), 695–704.
9. Schock, M. R. (1999). Internal corrosion and deposition control. In R. D. Letterman (Ed.), Water quality and treatment: A handbook of community water supplies (5th ed.). McGraw-Hill.
10. Sontheimer, H., Kolle, W., & Snoeyink, V. L. (1981). The Siderite Model of the formation of corrosion-resistant scales. Journal of the American Water Works Association, 73(11), 572–579.

11. U.S. EPA. (2021). Lead and Copper Rule Revisions. Federal Register, 86(4), 31634–31714.
12. WHO. (2017). Lead in drinking-water: Background document for development of WHO guidelines for drinking-water quality (WHO/SDE/WSH/03.04/09/Rev/1). World Health Organization.
13. WHO. (2022). Guidelines for drinking-water quality: Fourth edition incorporating the first and second addenda. World Health Organization.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2026 Page No. : 124-134

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

Scalable Machine Learning Techniques for Efficient Big Data Processing and Analysis

Reena Rani, Student,
Porf. Rajesh Gargi, Department of CSE
PKG GROPU OF INSTITUTION, MATLAUDA, PANIPAT.

ABSTRACT :

The rapid growth of data generated by digital systems, connected devices and online platforms has changed how organizations store, process and analyse information. Traditional machine learning methods were designed for smaller datasets and often struggle at the scale modern organizations routinely encounter. This paper examines the scalability problem in machine learning, focusing on techniques and architectures that allow learning algorithms to work efficiently with very large datasets. Foundational scalability concepts are reviewed, major machine learning algorithms applied to big data are surveyed with attention to where each faces scaling challenges, and strategies for addressing those challenges are discussed. Distributed computing frameworks, data partitioning, mini-batch learning, dimensionality reduction and cloud-based processing are among the approaches covered. A conceptual architecture for a scalable machine learning pipeline is proposed, and persistent challenges including communication overhead, data quality, class imbalance and model interpretability are identified. The discussion examines trade-offs between accuracy and computational cost drawing on the literature. The paper concludes that no single technique solves every scalability problem, and that practical large-scale machine learning requires carefully combining algorithmic, architectural and systems-level decisions.

Keywords : Big Data • Machine Learning • Scalability • Distributed Computing • Apache Spark • Data Analytics • Parallel Processing

INTRODUCTION :

Big data describes datasets whose volume, velocity and variety exceed what conventional data management tools can handle efficiently (Laney, 2001). As cloud computing and smartphones became ubiquitous, data generation accelerated dramatically. Social media, e-commerce, sensor networks

and financial markets now produce data continuously. Processing this information and extracting useful patterns has become one of the central technical challenges of the current era. Machine learning was historically a discipline designed around datasets that fit on a single machine. Algorithms were tested on structured datasets with hundreds or thousands of rows, and the goal was to find generalizable patterns. Those methods still work well at small scale. The difficulty arises when the same techniques are applied to datasets with millions or billions of records, each potentially with hundreds of features.

Training time grows prohibitively, memory requirements can exceed even well-resourced servers, and coordinating work across many machines introduces communication overhead that can itself become a bottleneck. Organizations across virtually every sector now depend on machine learning. Banks use it to detect fraud; hospitals use it to support diagnosis; retailers use it to personalize recommendations. As data volumes keep growing, so does the pressure to keep learning systems working at scale. A fraud detection model that takes hours to retrain is far less useful than one that updates quickly as new data arrives. The research challenge is not simply to build systems that work, but to build systems that scale. This paper investigates the landscape of scalable machine learning, covering what scalability means in this context, which techniques are most suited to large datasets, how those techniques can be made more scalable, which platforms support large-scale learning, and what challenges remain. Sections 2 to 6 define the research problem, objectives and questions; Section 7 reviews the literature; Sections 8 to 12 discuss scalability concepts, techniques, platforms and a proposed framework; and Sections 13 to 17 address challenges, applications, discussion, future scope and conclusions.

RESEARCH PROBLEM :

Machine learning systems that perform reliably on small or medium-sized datasets frequently run into serious difficulties when data volumes grow substantially. The problem is not simply one of waiting longer; it is a more fundamental mismatch between algorithmic assumptions and the reality of working with very large, distributed, heterogeneous datasets. High data volume is the most obvious concern. Many training algorithms require multiple passes over the complete dataset and become impractical beyond hundreds of gigabytes or terabytes. High dimensionality compounds this: datasets with hundreds of features need more memory, increase overfitting risk, and make distance-based computations slower. Memory limitations on individual machines mean that data must be partitioned across many nodes, each seeing only a portion at once. Algorithms with quadratic time complexity become unusable at scale even with parallelism, and keeping model parameters consistent across nodes introduces communication overhead. Algorithm complexity itself is also a barrier; a model already expensive on one machine is hard to distribute without losing accuracy.

OBJECTIVES OF THE STUDY :

This study has the following objectives: to understand what scalability means in machine learning and why it matters for large-scale data analysis; to survey machine learning algorithms commonly applied to big data and note where each faces scaling limitations; to compare the major distributed computing and parallel processing approaches used to make machine learning more scalable; to examine how distributed learning frameworks manage trade-offs between communication cost, accuracy and fault tolerance; and to identify challenges that remain and suggest directions for future research.

RESEARCH QUESTIONS :

This paper attempts to address the following questions : Why does scalability become critical as datasets grow from millions to billions of records, and what happens to standard algorithms when that boundary is crossed? Which machine learning techniques are most naturally suited to large-scale data, and which require significant adaptation? How do distributed computing frameworks improve processing efficiency, and what trade-offs do they introduce? What are the most significant challenges currently limiting the scalability of machine learning systems?

LITERATURE REVIEW :

Research at the intersection of machine learning and large-scale data processing has grown substantially since the late 2000s. The literature organizes naturally into foundational work on big data characteristics and frameworks, distributed machine learning, algorithmic adaptations for scale, and systems-level work on platforms. The framing of big data as a challenge of volume, velocity and variety set the research agenda (Laney, 2001; Chen, Mao, & Liu, 2014). Gandomi and Haider (2015) examined analytic methods appropriate to big data specifically, noting that statistical techniques designed for sampled data do not transfer cleanly to complete or near-complete datasets, and helping establish the distinction between traditional data warehousing and distributed real-time processing. The MapReduce programming model introduced by Dean and Ghemawat (2008) was the first widely adopted abstraction for processing large datasets across clusters of commodity machines, enabling research into reformulating machine learning algorithms for distributed execution. Its limitation was a disk-oriented sequential design poorly suited to iterative algorithms. Zaharia and colleagues (2010) introduced Apache Spark with in-memory processing that allowed iterative workloads to reuse data across computation rounds without writing intermediate results to disk.

Spark's MLlib library, described by Meng and colleagues (2016), provided scalable implementations of logistic regression, decision trees, k-means and other standard algorithms, making distributed machine learning accessible without low-level distributed programming. Li and colleagues

(2014) presented the parameter server framework, in which dedicated server nodes maintain model parameters while worker nodes handle data, allowing models too large for a single machine to be trained in distributed settings with asynchronous updates. Research on individual algorithms has explored parallel tree construction for random forests (Breiman, 2001) and stochastic gradient descent for neural networks. LeCun, Bengio and Hinton (2015) noted that the dramatic improvements in deep learning performance were enabled in large part by large datasets and the compute to train on them. McMahan and colleagues (2017) introduced federated learning for training on data that remains distributed across devices without transferring raw data centrally, addressing privacy alongside scalability. Kambatla and colleagues (2014) identified persistent gaps, particularly around data heterogeneity and limited practical guidance on choosing appropriate scalable techniques. Despite the field's growth, there remains limited systematic guidance on how to select an appropriate scalable technique given the characteristics of a particular dataset and prediction task, and this gap motivates the discussion that follows.

UNDERSTANDING SCALABILITY IN MACHINE LEARNING :

Scalability in machine learning refers to the ability of a system to maintain acceptable performance as the data, model or computing resources available to it change in scale. It is a cluster of related concerns rather than a single property. Data scalability asks whether an algorithm can handle more training examples without performance degrading unacceptably. Many classical algorithms assume all training data fits in memory at once; an algorithm is not practically data-scalable unless it can work with data distributed across many machines. Computational scalability concerns how well an algorithm exploits additional computing resources; an algorithm that achieves linear speedup on additional processors is computationally scalable, while one requiring frequent synchronization may benefit little from extra hardware. Storage scalability refers to the ability of the data infrastructure to grow without expensive re-engineering. Model scalability describes whether a model can grow in complexity as training data grows without prohibitive cost. These dimensions interact: reducing batch size to enable data-parallel training lowers memory requirements but may require many more gradient updates to reach the same accuracy. Managing these trade-offs for the specific problem at hand is the core design challenge in scalable machine learning.

MAJOR MACHINE LEARNING TECHNIQUES USED WITH BIG DATA :

Linear and logistic regression are among the most naturally scalable algorithms. Because the loss gradient can be computed independently for each training example, stochastic gradient descent allows these models to be trained on arbitrarily large datasets one example or one small batch at a time. Their compact representations and simple update rules suit distributed implementation. Their

limitation is expressive power; they cannot capture complex non-linear patterns without manual feature engineering. Random forests (Breiman, 2001) build ensembles of decision trees trained on random subsets of features and examples, aggregating their predictions. Individual trees can be trained in parallel, making random forests well suited to distributed environments, and the ensemble approach reduces overfitting. K-means clustering can be parallelized by distributing the data across nodes, with each node computing distances for its portion and reporting local partial sums that are aggregated to update global centroids. Support vector machines are difficult to scale because the standard formulation involves a quadratic optimization that grows with the square of training examples. For large datasets, practitioners commonly use logistic regression with regularization, which achieves similar performance with greater scalability. Neural networks and deep learning are the most computationally intensive but also the most powerful for complex tasks such as image recognition and natural language processing (LeCun, Bengio, & Hinton, 2015). Training large networks almost always requires GPU acceleration and often distribution across multiple GPUs or machines, with mini-batch stochastic gradient descent as the standard training procedure.

TECHNIQUES FOR MAKING MACHINE LEARNING SCALABLE :

Parallel processing divides computation into parts executable simultaneously on multiple processors. For machine learning this typically means data parallelism, where different subsets of training data are processed on different machines and partial model updates are aggregated, or model parallelism, where different parts of a large model reside on different machines. Distributed computing extends this to networked systems, with frameworks managing data routing, failure recovery and inter-node communication. Data partitioning divides large datasets into shards that can be stored and processed independently, minimizing cross-partition communication and keeping workloads balanced. Mini-batch learning processes data in small groups, reducing memory requirements while providing more stable gradient estimates than pure stochastic updates. Online learning updates the model incrementally as each new example arrives, requiring very little memory and enabling adaptation to distributional shifts over time. Feature selection and dimensionality reduction lower the number of input features, reducing both computation and memory requirements and often improving model quality by removing noisy inputs. Principal component analysis is widely used for dimensionality reduction in large-scale settings. GPU-based processing exploits massively parallel graphics hardware to accelerate the matrix operations at the core of deep learning, dramatically reducing training times for large networks. Cloud computing provides on-demand access to large numbers of GPU and CPU instances, distributed storage and managed infrastructure, underpinning much of modern large-scale machine learning.

BIG DATA AND MACHINE LEARNING PLATFORMS :

Apache Hadoop provides a distributed file system and the MapReduce execution model. Though less common as a training framework given its disk-intensive design, it remains widely used for batch preprocessing and feature engineering on large datasets. Apache Spark addressed these limitations with in-memory computation and a richer programming model. Spark's MLlib library (Meng et al., 2016) provides distributed implementations of logistic regression, decision trees, k-means, collaborative filtering and other algorithms, making distributed machine learning accessible without low-level distributed code. TensorFlow and PyTorch are the dominant deep learning frameworks. Both support distributed training across multiple GPUs and, with additional configuration, across multiple machines. They handle automatic differentiation and GPU acceleration, and each provides mechanisms for distributing gradient updates across workers. TensorFlow's parameter-server mode and PyTorch's distributed data-parallel module represent different strategies for multi-node training communication. Cloud platforms from major providers offer managed machine learning services that abstract infrastructure complexity, allowing users to provision GPU clusters on demand and run training jobs without managing hardware directly. The key design principle underlying all these platforms is that computation and storage are distributed across many nodes, each handling a portion of the workload, with the framework managing coordination, communication and fault tolerance.

PROPOSED SCALABLE MACHINE LEARNING FRAMEWORK :

This paper proposes a conceptual architecture for a scalable machine learning pipeline as a design reference. The architecture is organized as eight connected stages. Large Data Sources including databases, streaming feeds, log files and sensor networks feed into Data Collection, which ingests data reliably using message queues or streaming platforms to handle traffic bursts. Data Cleaning applies missing-value handling, deduplication and outlier detection in parallel across data partitions. Distributed Storage persists the cleaned data in a distributed file system or columnar store enabling parallel read access. Data Partitioning divides stored data into shards assigned to processing nodes using range-based, hash-based or random strategies balanced for data locality. Feature Processing normalization, encoding, feature selection and dimensionality reduction is applied in parallel on each partition. Distributed Machine Learning is the core training stage, in which worker nodes process their assigned data, compute local model updates and communicate those updates to a coordinator or parameter server that aggregates them and distributes revised parameters back to workers. Model Evaluation assesses the trained model on held-out validation data, also parallelized across partitions.

The final stage, Prediction or Analytics Output, deploys the model for inference on new data or analytical summaries for downstream consumers. An optional feedback path returns prediction

outcomes to the data collection layer, enabling the pipeline to update models as new labelled data becomes available over time.

CHALLENGES IN SCALABLE MACHINE LEARNING :

Computational cost is the most obvious challenge. Training large neural networks, even with GPU acceleration and distributed infrastructure, consumes substantial energy and time, and high experimentation cost limits how many configurations practitioners can explore. Communication overhead between computing nodes is a significant bottleneck; synchronizing gradient updates across many workers requires exchanging large volumes of data, and slow interconnects can eliminate much of the benefit of parallelism. Asynchronous updates reduce waiting time but introduce consistency complications. Data imbalance is common: fraud detection datasets contain far more legitimate transactions than fraudulent ones, and standard training may produce models that perform poorly on the minority class of greatest interest. Data quality problems noise, missing values and mislabelled examples are harder to detect in very large datasets where manual inspection is not feasible. High dimensionality slows training and reduces interpretability. Privacy and security are acute in distributed settings where data passes through many nodes. Model interpretability becomes harder as complexity grows, which creates difficulties in regulated domains where decisions must be explainable. Fault tolerance is a systems challenge; in large clusters, hardware and software failures are common, and the infrastructure must recover without losing progress.

APPLICATIONS :

Scalable machine learning enables applications that would be impossible with single-machine approaches. In healthcare, models trained on millions of electronic health records and medical images can identify patterns associated with disease risk or treatment response not visible in smaller studies. The sensitivity of the data demands both high predictive performance and careful attention to fairness and privacy. In finance, fraud detection systems score transactions in real time against patterns learned from historical data, making distributed real-time processing a hard requirement. E-commerce platforms train recommendation systems on the purchase and browsing histories of millions of users, exploiting the sparsity of user-item interaction matrices for efficient distributed computation. In cybersecurity, anomaly detection systems monitor network traffic for potential intrusions. Social media platforms apply large-scale natural language processing to manage feeds of billions of posts daily. Smart city applications use machine learning on data from traffic sensors and connected infrastructure to manage traffic flow and energy consumption at city scale.

DISCUSSION :

The literature and analysis in this paper point to several important conclusions. Distributed

processing is a practical necessity for any machine learning application working with datasets too large for a single machine. Frameworks such as Spark MLlib and distributed deep learning environments have made distributed training accessible to a wide audience, though deploying and tuning these systems still requires substantial expertise. The parameter server architecture described by Li and colleagues (2014) remains influential as a design pattern for very large models. Not every algorithm is equally amenable to scaling. Linear models and ensemble methods based on decision trees scale relatively cleanly because their training can be decomposed into parallel components without frequent synchronization. Deep networks scale well with GPU acceleration but require careful gradient communication management, and training stability can be sensitive to interactions between batch size, learning rate and degree of parallelism (Li et al., 2014). There is a genuine trade-off between model accuracy and computational cost that becomes more visible at scale. Practitioners must make explicit decisions about where on that curve they need to operate, and those decisions often reflect organizational and financial constraints as much as technical ones. Data quality consistently proves as important as algorithmic sophistication; a scalable training infrastructure applied to noisy or poorly curated data will produce inaccurate models efficiently. The gap between research and production deployments of distributed machine learning also remains significant because real-world data is messier than the clean benchmarks on which algorithms are evaluated. Organisations that successfully close this gap tend to invest heavily in data engineering and monitoring infrastructure alongside their machine learning systems, treating data quality as a prerequisite rather than an afterthought. Reproducibility of large-scale experiments is another underappreciated challenge, since slight differences in data shuffling, hardware configurations or framework versions can produce meaningfully different results.

FUTURE SCOPE :

Federated learning, introduced by McMahan and colleagues (2017), trains models on data that remains distributed across client devices without transferring raw data to a central server. This approach is particularly relevant in healthcare and finance, where regulatory constraints make centralised data aggregation impractical. Active research continues to improve its communication efficiency, convergence properties and resistance to adversarial contributions. Edge AI, which moves computation closer to data sources to reduce latency and privacy exposure, is growing in relevance as edge devices become more capable. The convergence of federated learning and edge AI is expected to enable intelligent applications that operate effectively even in bandwidth-constrained environments. AutoML aims to automate algorithm selection, hyperparameter tuning and pipeline design, and extending it to large-scale datasets efficiently is an open research challenge. Automated pipelines that can self-

select appropriate scalable strategies based on dataset characteristics would significantly lower the barrier to entry for organisations without deep machine learning expertise. Energy-efficient AI is gaining attention as the environmental cost of very large model training becomes more visible; research into specialized hardware accelerators and model compression techniques aims to reduce resource consumption without sacrificing quality. Privacy-preserving machine learning, including differential privacy and secure multi-party computation, aims to provide formal guarantees about what can be inferred about training data from a trained model. As data governance regulations tighten globally, privacy-preserving techniques will likely become a standard requirement rather than an optional feature in large-scale systems.

CONCLUSION :

This paper has examined the problem of scaling machine learning systems to work efficiently with very large datasets. The central challenge is that most machine learning algorithms were designed with small datasets in mind, and the assumptions making them tractable at small scale break down when applied to the volumes of data that modern applications generate. The paper reviewed the major categories of scalable technique, including distributed computing, data partitioning, mini-batch and online learning, dimensionality reduction and GPU-based acceleration. Distributed frameworks, particularly Apache Spark and its MLlib library, make distributed machine learning accessible in practice, and the proposed conceptual pipeline architecture illustrates how these components connect in a complete system. The challenges that remain are significant: communication overhead, data quality, class imbalance, interpretability and privacy are problems for which current solutions are partial and context-dependent. Addressing scalability requires careful algorithmic design, infrastructure choices and data management practices working in combination, not simply applying more computing resources. Federated learning, edge AI and privacy-preserving techniques represent promising future directions. What will not change is the fundamental requirement: to extract useful, reliable knowledge from ever-growing amounts of data, machine learning systems must treat scalability as a first-class design concern from the outset.

REFERENCES :

1. Breiman, L. (2001). Random forests. Machine Learning, 45(1), 5–32. https://doi.org/10.1023/A:1010933404324
2. Chen, M., Mao, S., & Liu, Y. (2014). Big data: A survey. Mobile Networks and Applications, 19(2), 171–209. https://doi.org/10.1007/s11036-013-0489-0
3. Dean, J., & Ghemawat, S. (2008). MapReduce: Simplified data processing on large clusters.

Communications of the ACM, 51(1), 107–113. https://doi.org/10.1145/1327452.1327492

4. Gandomi, A., & Haider, M. (2015). Beyond the hype: Big data concepts, methods, and analytics. International Journal of Information Management, 35(2), 137–144. https://doi.org/10.1016/j.ijinfomgt.2014.10.007
5. Kambatla, K., Kollias, G., Kumar, V., & Grama, A. (2014). Trends in big data analytics. Journal of Parallel and Distributed Computing, 74(7), 2561–2573. https://doi.org/10.1016/j.jpdc.2014.01.003
6. Laney, D. (2001). 3D data management: Controlling data volume, velocity, and variety. META Group.
7. LeCun, Y., Bengio, Y., & Hinton, G. (2015). Deep learning. Nature, 521(7553), 436–444. https://doi.org/10.1038/nature14539
8. Li, M., Andersen, D. G., Park, J. W., Smola, A. J., Ahmed, A., Josifovski, V., Long, J., Shekita, E. J., & Su, B.-Y. (2014). Scaling distributed machine learning with the parameter server. In Proceedings of the 11th USENIX Symposium on Operating Systems Design and Implementation (OSDI '14) (pp. 583–598). USENIX Association.
9. McMahan, H. B., Moore, E., Ramage, D., Hampson, S., & Agüera y Arcas, B. (2017). Communication-efficient learning of deep networks from decentralized data. In Proceedings of the 20th International Conference on Artificial Intelligence and Statistics (AISTATS 2017) (Vol. 54, pp. 1273–1282). PMLR.
10. Meng, X., Bradley, J., Yavuz, B., Sparks, E., Venkataraman, S., Liu, D., Freeman, J., Tsai, D. B., Amde, M., Owen, S., Xin, D., Xin, R., Franklin, M. J., Zadeh, R., Zaharia, M., & Talwalkar, A. (2016). MLlib: Machine learning in Apache Spark. Journal of Machine Learning Research, 17(34), 1–7.
11. Zaharia, M., Chowdhury, M., Franklin, M. J., Shenker, S., & Stoica, I. (2010). Spark: Cluster computing with working sets. In Proceedings of the 2nd USENIX Workshop on Hot Topics in Cloud Computing (HotCloud '10).

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2026 Page No. : 135-141

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

21वीं सदी के हिंदी साहित्य में सृजन और विमर्श : पर्यावरणीय संकट, नव–पूंजीवाद और मनोवैज्ञानिक यथार्थ

शुभम यादव

शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय, हिंदी विभाग, 110009

सारांश (Abstract) :

21वीं सदी ने अपनी यात्रा के प्रथम पच्चीस वर्ष पूरे कर लिए हैं। यह कालखंड अभूतपूर्व वैश्विक और स्थानीय बदलावों का गवाह रहा है। तकनीकी क्रांति, भूमंडलीकरण, और उत्तर–पूंजीवादी व्यवस्था ने न केवल मानव जीवन की बाह्य संरचना को बदला है, बल्कि उसके आंतरिक और मनोवैज्ञानिक यथार्थ को भी गहराई से प्रभावित किया है। यह शोध पत्र 21वीं सदी के हिंदी कथा–साहित्य और विमर्शों में आए इन नए बदलावों को रेखांकित करने का प्रयास करता है। विशेष रूप से, यह आलेख तीव्र औद्योगीकरण और शहरीकरण के परिणामस्वरूप उपजे पर्यावरणीय संकट, वैश्विक चुनौतियों और उत्तर भारतीय समाज में बढ़ते मनोवैज्ञानिक दबाव और अकेलेपन की अभिव्यक्ति का विस्तृत विश्लेषण करता है। यह पत्र इस बात की पड़ताल करता है कि कैसे समकालीन साहित्य अपनी वस्तु, संरचना, शिल्प और भाषा में इन नई वैचारिकियों को आत्मसात कर रहा है और 21वीं सदी की नई साहित्यिक हलचलों का सैद्धांतिकीकरण कर रहा है। 21वीं सदी का हिंदी साहित्य एक ऐसे संक्रमणकाल में विकसित हो रहा है, जहाँ तकनीक, वैश्वीकरण, बाजार, पहचान–संकट, असमानता और सामाजिक संघर्ष एक साथ सक्रिय हैं। इस दौर का साहित्य केवल सौंदर्यबोध का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक यथार्थ, प्रतिरोध और संवेदना का प्रभावशाली माध्यम भी है। "सृजन" यहाँ केवल शारीरिक अर्थ में नहीं, बल्कि उस सामाजिक–मानसिक पीड़ा के रूप में प्रयुक्त है जो व्यक्ति, समुदाय और संस्कृति को भीतर से प्रभावित करती है। इसी सृजन से उपजे प्रश्नों को साहित्य विभिन्न विमर्शों के माध्यम से सामने लाता है। प्रस्तुत शोध–पत्र में 21वीं सदी के साहित्य की अवधारणा, उसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ, विमर्शात्मक विस्तार, डिजिटल प्रभाव, और सामाजिक जिम्मेदारी का विश्लेषण किया गया है। यह अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि समकालीन साहित्य न केवल युग–संवेदना का दर्पण है, बल्कि वह परिवर्तन और न्याय की आकांक्षा का भी वाहक है।

बीज शब्द :

21वीं सदी का साहित्य, नव–पूंजीवाद, पर्यावरणीय चेतना, महानगरीय बोध, मनोवैज्ञानिक दबाव, उत्तर भारतीय समाज, विमर्श, शिल्पगत बदलाव।

प्रस्तावना : सदी का संक्रमण और साहित्य की नई भूमिका :

साहित्य हमेशा से अपने समय का सबसे प्रामाणिक दस्तावेज और यह समाज का सबसे संवेदनशील

थर्मामीटर रहा है। 21वीं सदी में प्रवेश करते हुए दुनिया ने आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और तकनीकी स्तरों पर जो तीव्र बदलाव देखे हैं, वे मानव इतिहास में अभूतपूर्व हैं। 20वीं सदी के अंत में सोवियत संघ के पतन और भूमंडलीकरण की आंधी ने पूरी दुनिया को एक 'ग्लोबल विलेज' में तब्दील कर दिया। सोवियत संघ के पतन के पश्चात अमेरिका अपनी पूजीवादी शक्तियों के साथ महाशक्ति के रूप में उभरा,भारत भी इन बदलावों से अछूता नहीं रहा, इसको भी एल.पी.जी रिफॉर्म्स करने पड़े अपने बाजार को पूरी दुनिया के लिए खोलने पड़े और जहाँ पहले विकास का समाजवादी झुकाव था वह अब पूजीवाद की ओर मुड़ गया। इन बदलाओं के साथ मनुष्य के जीवन में भी बदलाव दिखने शुरू हो गए।

जीवन की संरचना में आए इस बदलाव ने स्वाभाविक रूप से हिंदी साहित्य के कथ्य और कथन दोनों को रूपांतरित किया है। अब साहित्य केवल यथार्थ का निष्क्रिय दर्पण नहीं रह गया है, बल्कि वह उन जटिल वैश्विक और स्थानीय संरचनाओं को डिकोड करने का सक्रिय उपकरण बन गया है, जो आज के मनुष्य को संचालित कर रही हैं। 21वीं सदी का साहित्य अपने सृजन और विमर्श में उन हाशियों, संकटों और मनोवैज्ञानिक अंतर्द्वंद्वों को केंद्र में ला रहा है, जो पिछली सदी के अंत तक या तो हाशिए पर थे या उन्हें पर्याप्त स्वर नहीं मिल पाया था। आज का रचनाकार यह भली–भांति समझता है कि उसे एक ऐसे पाठक वर्ग से संवाद करना है जो सूचनाओं से भरा पड़ा है, वह पूरी तरह से जागरूक है, इसलिए साहित्य की भूमिका अब केवल 'सूचना' देना नहीं, बल्कि उस सूचना के पीछे छिपी 'संवेदना' और 'सच्चाई' को उघाड़ना है। इस समय के साहित्य में मानव जीवन की चेतना, संवेदना और सामाजिक अनुभवों की महती आवश्यकता है, तथा 21वीं सदी का साहित्य ऐसे समय में आकार ले रहा है जब मनुष्य एक ओर तकनीकी प्रगति से अभिभूत है, तो दूसरी ओर सामाजिक असुरक्षा, आर्थिक विषमता, सांस्कृतिक विखंडन और नैतिक संकट से भी जूझ रहा है। इस युग में साहित्य की भूमिका पहले से अधिक जटिल और आवश्यक हो गई है।

इसलिये हिंदी साहित्य में अब केवल वर्तमान घटनाओं का चित्रण नहीं, बल्कि उन गहरे संरचनात्मक प्रश्नों को समझना है जो हमारे समय को परिभाषित करते हैं। मैनेजर पाण्डेय ने साहित्य को समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखने की जो परंपरा विकसित की, वह आज के साहित्यिक अध्ययन के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। वे कहते है कि – "साहित्य के समाजशास्त्र ने साहित्य की ऐसी धारणा विकसित की है जिससे साहित्य का सामाजिक स्वरूप स्पष्ट हो और समाज से साहित्य के संबंध की व्याख्या संभव हो।"[1]

इसी तरह रंजना चावड़ा की पुस्तक 21वीं सदी में हिन्दी साहित्य : स्थिति एवं संभावनाएँ इस युग की चुनौतियों और संभावनाओं पर ध्यान केंद्रित करती है। लेखिका पाठक और आलोचक दोनों को सोचने पर मजबूर करती हैं कि 'आदिकालीन युग राजाओं का था, मध्ययुग भक्ति का था और आधुनिक युग नवजागरण का। अब 21वीं सदी में हिन्दी साहित्य किस दिशा की ओर जा रहा है?[2]

शिल्प, संरचना और भाषा का नया उन्मेष :

21वीं सदी का साहित्य परंपरा और आधुनिकता के बीच संवाद का साहित्य है। इसमें एक ओर पूर्ववर्ती साहित्यिक मूल्यों की निरंतरता है, तो दूसरी ओर नए अनुभवों की तीव्रता भी है। इस युग में रचना का केंद्र केवल महानायक नहीं, बल्कि सामान्य मनुष्य, हाशिये का जीवन, विस्थापन, अस्मिता और बहुस्तरीय यथार्थ है।

रंजना चावड़ा की पुस्तक से यह स्पष्ट होता है कि 21वीं सदी का हिंदी साहित्य बाजारीकरण और

औद्योगिकरण जैसी शक्तियों के बीच अपनी दिशा खोज रहा है। यह साहित्य एक ऐसी भूमि पर खड़ा है जहाँ मनुष्य निकट आते हुए भी भीतर से अधिक अकेला होता जा रहा है। इसलिए समकालीन साहित्य का सरोकार जीवन की जटिलताओं को ईमानदारी से पकड़ना है।

तकनीक और डिजिटल क्रांति (विशेषकर इंटरनेट और स्मार्टफोन की सुलभता) ने मनुष्य के सोचने, महसूस करने और अभिव्यक्त करने के तरीके को जड़ से बदल दिया है। 21वीं सदी के हिंदी कथा–साहित्य में भाषा अब अधिक पारदर्शी, सीधी और कई स्तरों पर 'ग्लोकल' (वैश्विक और स्थानीय का सम्मिश्रण) हो गई है। आज की हिंदी में अंग्रेजी, उर्दू और क्षेत्रीय बोलियों के शब्दों का जिस सहजता से प्रयोग हो रहा है, वह भाषा के लोकतंत्रीकरण का संकेत है।

डिजिटल युग ने साहित्य के रूप, प्रसार और पाठकीयता, तीनों को बदला है। अब साहित्य केवल छपी किताबों तक सीमित नहीं रहा। ब्लॉग, वेबसाइट, ऑनलाइन पत्रिकाएँ, सोशल मीडिया और ई–पुस्तकें साहित्य को व्यापक जनसमुदाय तक पहुँचा रही हैं। इससे नए लेखकों के लिए मंच भी बढ़ा है।

लेकिन इस सुविधा के साथ गंभीरता की चुनौती भी आई है। त्वरित लोकप्रियता, लघु–रूप लेखन और सतही प्रतिक्रिया कई बार साहित्यिक गहराई को प्रभावित करती है। इसलिए 21वीं सदी के लेखक के लिए आवश्यक है कि वह तकनीक का उपयोग करे, पर साहित्य की वैचारिक और कलात्मक गरिमा को न छोड़े। लेकिन पॉपकॉर्न ब्रेन कल्चर–सोशल मीडिया के छोटे वीडियो (Reels/Shorts) के कारण लोगों का ध्यान भटकने लगा है, जिससे वे लंबी और अर्थपूर्ण बातचीत पर ध्यान केंद्रित नहीं कर पाते। तो उनमे किताबों के अंदर रमने का धैर्य कहा से होगा। हालिया शोध संकेत देते हैं कि सोशल मीडिया और डिजिटल संचार के बढ़ते उपयोग के कारण लोग आमने–सामने की बातचीत (Face-to-Face Conversation) में पहले की तुलना में काफी कम शब्दों का उपयोग कर रहे हैं।[3]

शिल्प के स्तर पर, आज की कहानियों और उपन्यासों में 19वीं और 20वीं सदी का पारम्परिक रैखिक कथा–क्रम (linear narrative) टूट रहा है। विखंडित आख्यान, फ्लैशबैक, डायरी शैली, ब्लॉग प्रविष्टियाँ, सोशल मीडिया की पोस्ट और फैंटेसी का इस्तेमाल कथा–शिल्प के नए और धारदार औजार बन गए हैं। गीतांजलि श्री, अलका सरावगी और उदय प्रकाश जैसे लेखकों ने भाषा और शिल्प के स्तर पर जो प्रयोग किए हैं, वे 21वीं सदी की बेचौनी को व्यक्त करने के लिए नितांत आवश्यक थे। वैचारिकी के धरातल पर देखें तो अब कोई एक 'वृहद आख्यान' काम नहीं कर रहा है, बल्कि साहित्य बहुलवादी विमर्शों का एक खुला लोकतांत्रिक मंच बन गया। शिल्प की दृष्टि से भी समकालीन साहित्य में विविधता है। कहानी, कविता, निबंध, आत्मकथा, संस्मरण, यात्रा–वृत्तांत और ऑनलाइन लेखन– इन सभी रूपों में नए प्रयोग हो रहे हैं। यह परिवर्तन साहित्य की जड़ता को तोड़ता है और उसे युगानुकूल बनाता है।

21वीं सदी के साहित्य को "विमर्शों का साहित्य" भी कहा जा सकता है। इस दौर में अनेक वैकल्पिक दृष्टियाँ साहित्य के केंद्र में आई हैं।

स्त्री–विमर्श :

स्त्री–विमर्श ने पितृसत्ता, देह–राजनीति, घरेलू श्रम, असमान अवसर और आत्मनिर्णय के प्रश्नों को साहित्य में केंद्रीय स्थान दिया है। स्त्री–लेखन अब केवल पीड़ा का बयान नहीं, बल्कि स्वायत्तता और प्रतिरोध का

घोष भी बन गया है। कुछ महत्वपूर्ण लेखिकाएं इस प्रकार है –

- **अनामिका चक्रवर्ती :** स्त्री लेखन का लेखा–जोखा प्रस्तुत करने और समकालीन लेखिकाओं के योगदान को रेखांकित करने के लिए चर्चित हैं।
- **मैत्रेयी पुष्पा और मृणाल पाण्डे :** ये नाम आज भी प्रासंगिक हैं। मैत्रेयी पुष्पा की कृतियाँ जैसे 'चाक' और 'अल्मा कबूतरी' पितृसत्ता की कड़ी आलोचना करती हैं।
- **ममता कालिया और चित्रा मुद्गल :** इनके उपन्यास (जैसे 'बेघर' और 'आवा') समकालीन स्त्री विमर्श की पहचान बन चुके हैं।
- **बरखा त्रेहन :** महिला दिवस पर इनके विचार 'संपूरकता के विमर्श' और ऐतिहासिक सफलता की कहानियों पर केंद्रित रहे हैं।
- **अन्य सक्रिय नाम :** जया जादवानी, सुशीला टाकभौरे (दलित स्त्री विमर्श), और युवा लेखिकाएं जो सोशल मीडिया के माध्यम से अपनी बात रख रही हैं।

दलित-विमर्श :

दलित साहित्य ने भारतीय समाज की जातिगत असमानता को उसकी मूल संरचना सहित उजागर किया है। इसने साहित्य को उच्चवर्गीय या अभिजन दृष्टि से बाहर निकालकर अनुभवजन्य और संघर्षशील बनाया है। मैनेजर पाण्डेय की आलोचनात्मक दृष्टि में दलित साहित्य और स्त्री–स्वतंत्रता के प्रश्नों पर गंभीर बहस की परंपरा दिखाई देती है. कुछ महत्वपूर्ण लेखक इस प्रकार है –

- **मोहनदास नैमिशराय :** ये आधुनिक दलित साहित्य के स्तंभ माने जाते हैं। इनकी नवीनतम पुस्तक 'हिंदी दलित जीवन कथाएं' और पत्रिका 'बयान' इस सदी के दलित विमर्श में महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं।
- श्यौराज सिंह बेचौन, मीना कंदसामी, सूरज येंगडे, अजय नावरिया, यशिका दत्त, योगेश मैत्रेय आदि।

आदिवासी विमर्श :

आदिवासी साहित्य भूमि, जंगल, विस्थापन, स्मृति और सामूहिक अस्तित्व की रक्षा से जुड़ा साहित्य है। यह विकास की उस अवधारणा पर प्रश्न उठाता है जो समुदायों को हाशिये पर धकेल देती है।

1. **वंदना टेटे :**

- **प्रमुख कार्य :** 'आदिवासी दर्शन : कथा और लोक', 'आदिवासी साहित्य : परंपरा और प्रयोजन'।

2. **रोज केरकेट्टा :**

- **प्रमुख रचना :** 'पगहा जोरी–जोरी रे घाटो' (कहानी संग्रह)।

3. **जसिंता केरकेट्टा :**

ये वर्तमान में सबसे चर्चित युवा कवयित्री हैं। उनकी कविताएँ राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आदिवासी समुदायों पर हो रहे विस्थापन और शोषण की आवाज उठाती हैं।

- **प्रमुख संग्रह :** 'अंगोर', 'जड़ों की जमीन', 'ईश्वर और बाजार'।

4. **अनुज लुगुन :** अनुज लुगुन एक महत्वपूर्ण युवा कवि हैं, जिन्हें उनकी कविता 'बाघ और सुगना मुंडा की बेटी' के लिए साहित्य अकादमी युवा पुरस्कार भी मिल चुका है। उनकी रचनाएँ आदिवासी इतिहास और मिथकों

को आधुनिक संदर्भों से जोड़ती हैं।

5. निर्मला पुतुल :

संथाली और हिन्दी में लिखने वाली निर्मला पुतुल की कविताएँ आदिवासी समाज की आंतरिक समस्याओं और पितृसत्ता के खिलाफ विद्रोह की गूँज हैं।

- **प्रमुख रचना :** 'नगाड़े की तरह बजते शब्द', 'अपने घर की तलाश में'। आदि।

पर्यावरणीय विमर्श :

21वीं सदी में पर्यावरण संकट केवल वैज्ञानिक विषय नहीं, बल्कि साहित्यिक चिंता भी बन चुका है। इस संदर्भ में हिंदी उपन्यासों और कथाओं में प्रकृति, जल, जंगल, प्रदूषण और मानवीय उत्तरदायित्व के प्रश्न उभरकर सामने आते हैं। कुछ रचनाकार इस प्रकार है –अनुपम मिश्र, एस आर हरनोट, संजीव, रणेद्र, आदि।

किन्नर और LGBTQ+ विमर्श :

समकालीन साहित्य में लैंगिक विविधता और पहचान की राजनीति भी महत्त्वपूर्ण विषय बन गई है। यह विमर्श समाज की रूढ़ धारणाओं को चुनौती देता है और मानवीय गरिमा को पुनर्परिभाषित करता है। कुछ महत्वपूर्ण लेखक व लेखिकाएं इस प्रकार है –

- **चित्रा मुद्गल :** इनका उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नंबर 203, नाला सोपारा' (2016) इस विमर्श की सबसे महत्वपूर्ण कृतियों में से एक है। इसके लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार भी मिला।
- **प्रदीप सौरभ :** इनके उपन्यास 'तीसरी ताली' ने किन्नर समाज के आंतरिक संघर्षों और उनकी राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं को बहुत गहराई से चित्रित किया है।
- **नीलम कुलश्रेष्ठ :** इनका उपन्यास 'कस्तूरी कुंडल बसै' ट्रांसजेंडर जीवन के मार्मिक पहलुओं पर आधारित है।
- **भगवंत अनमोल :** इनके उपन्यास 'जिंदगी 50–50' ने किन्नर समुदाय के प्रति समाज के नजरिए और उनके मानवीय अधिकारों पर चर्चा की है।
- **महेंद्र भीष्म :** इनका उपन्यास 'मैं पायल' किन्नरों के जीवन की कड़वी सच्चाई और उनके आत्मसम्मान की कहानी है।
- **लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी :** ये स्वयं एक प्रसिद्ध ट्रांसजेंडर एक्टिविस्ट हैं। इनकी आत्मकथा 'मैं हिजड़ा, मैं लक्ष्मी' इस समुदाय की आवाज को समझने के लिए एक मील का पत्थर है।

LGBTQ+ विमर्श के प्रमुख लेखक :

समलैंगिकता और क्वीर पहचान पर केंद्रित साहित्य अब हिंदी में संकोच छोड़कर सामने आ रहा है।

- **देवदत्त पट्टनायक :** हालांकि ये अंग्रेजी में लिखते हैं, लेकिन इनकी पुस्तकों (जैसे 'शिखंडी') के हिंदी अनुवाद ने भारतीय पौराणिक कथाओं में समलैंगिकता के अस्तित्व पर बड़ा विमर्श खड़ा किया है।
- **अखिलेश :** इनकी कहानी 'शाप' समलैंगिक संबंधों के प्रति समाज के पाखंड को उजागर करती है।
- **पंकज सुबीर :** इनके उपन्यास 'अकाल में उत्सव' के कुछ अंश और कहानियाँ आधुनिक यौन पहचानों के संघर्षों को छूती हैं।
- **रविंद्र कालिया :** इनकी कहानियों में भी आधुनिक संबंधों की जटिलताओं के बीच इन विमर्शों के बीज

मिलते हैं।

- **जयश्री राय :** इनकी कहानियों में महिला समलैंगिकता के सूक्ष्म पहलुओं को जगह मिल रही है।

नव-पूंजीवाद, महानगरीय बोध और सामाजिक यथार्थ का रूपांतरण :

21वीं सदी का यथार्थ मुख्य रूप से बाजार, बहुराष्ट्रीय कंपनियों और उपभोक्तावाद द्वारा तय हो रहा है। उत्तर भारतीय समाज, जो लंबे समय तक अपनी सामंती, पारम्परिक और कृषक संरचनाओं के लिए जाना जाता था, अब तीव्र औद्योगीकरण और अनियोजित शहरीकरण के क्रूर दौर से गुजर रहा है। समकालीन हिंदी साहित्य इस संक्रमण की पीड़ा को बहुत सूक्ष्मता से पकड़ रहा है।

'गाँवों से शहरों की ओर होने वाले अंतहीन पलायन ने महानगरों में एक नई प्रकार की 'भीड़' और उसी भीड़ के बीच एक गहरे 'अकेलेपन' को जन्म दिया है। आज के कथा–साहित्य (जैसे– रवीन्द्र कालिया, ज्ञानरंजन की परम्परा को आगे बढ़ाने वाले नए कथाकार) में महानगर केवल एक भौगोलिक स्थान नहीं है, बल्कि एक आक्रामक चरित्र है जो मनुष्य को निगलता और उगलता रहता है। आर्थिक असुरक्षा, कॉर्पोरेट जगत की गलाकाट प्रतिस्पर्धा, सफलता की अंधी दौड़ और टूटते मानवीय संबंधों ने एक नए प्रकार के सामाजिक यथार्थ को जन्म दिया है। यहाँ मनुष्य एक 'इकाई', 'संसाधन' और 'उपभोक्ता' मात्र बनकर रह गया है। बाजार ने मनुष्य की इच्छाओं को इस तरह से नियंत्रित कर लिया है कि अब 'जरूरत' और 'लालच' के बीच की रेखा मिट गई है। साहित्य इस उपभोक्तावादी संस्कृति के खिलाफ एक मजबूत वैचारिक प्रतिरोध दर्ज कर रहा है।'[4]

साहित्य में मनोवैज्ञानिक दबाव, अवसाद और अकेलेपन का विमर्श :

बदलते हुए सामाजिक और आर्थिक परिदृश्य ने यदि सबसे गहरा आघात कहीं किया है, तो वह मनुष्य का मनोविज्ञान है। 21वीं सदी के साहित्य का एक बहुत बड़ा और महत्वपूर्ण हिस्सा इस मनोवैज्ञानिक दबाव, तनाव, अवसाद, और अलगाव की प्रामाणिक अभिव्यक्ति है।

'पारम्परिक संयुक्त परिवारों का विघटन, एकल परिवारों का उदय, आभासी दुनिया में बढ़ती सक्रियता और वास्तविक जीवन में संवादहीनता ने आज के युवा और मध्यवर्गीय नागरिक को एक गहरे मनोवैज्ञानिक संकट में धकेल दिया है। समकालीन उपन्यासों और कहानियों के पात्र अक्सर अपने भीतर के खालीपन, पहचान के संकट और भविष्य की अनिश्चितता से जूझते नजर आते हैं।'[5]

यह साहित्य इस बात की गहरी पड़ताल करता है कि कैसे एक अत्यधिक जुड़ी हुई दुनिया में, जहाँ सोशल मीडिया पर हजारों 'मित्र' हैं, मनुष्य यथार्थ में सबसे अधिक अकेला हो गया है। उत्तर आधुनिक समाज में काम का दबाव और संबंधों की क्षणभंगुरता ने जिस मानसिक संत्रास को जन्म दिया है, वह आज की कहानियों का मुख्य वर्ण्य–विषय है। साहित्य में यह मनोवैज्ञानिक विमर्श केवल व्यक्ति की निजी पीड़ा का आख्यान नहीं है, बल्कि यह उस क्रूर पूंजीवादी व्यवस्था की आलोचना है जो मनुष्य को मानसिक रूप से बीमार कर रही है।

वैश्विक चुनौतियाँ और 21वीं सदी के गद्य में पर्यावरणीय चेतना :

21वीं सदी की सबसे ज्वलंत, मारक और वैश्विक चुनौती पर्यावरणीय संकट है। जलवायु परिवर्तन, नदियों का सूखना, जंगलों की निर्मम कटाई, बेतहाशा बढ़ता प्रदूषण और प्राकृतिक आपदाओं की आवृत्ति अब केवल वैज्ञानिक सम्मेलनों या राजनीतिक घोषणापत्रों के मुद्दे नहीं रह गए हैं, वे 21वीं सदी के साहित्य के केंद्र में पूरी शिद्दत के साथ आ गए हैं।

समकालीन हिंदी कथा–साहित्य में 'पर्यावरणीय मूल्य' और 'पारिस्थितिकी तंत्र' को लेकर एक नई और गंभीर चेतना विकसित हुई है, जिसे 'इको–क्रिटिसिज्म' या 'पर्यावरण–विमर्श' के रूप में जाना जाता है। आज का रचनाकार यह स्पष्ट रूप से समझ रहा है कि प्रकृति के विनाश का सीधा और अंतिम अर्थ मानवीय सभ्यता का विनाश है। साहित्य में अब विकास के उस पश्चिमी और पूंजीवादी 'बुलडोजर मॉडल' पर गंभीर सवाल उठाए जा रहे हैं, जो केवल मुनाफे के लिए प्रकृति के अंधाधुंध दोहन पर टिका है।

'विशेषकर आदिवासी विमर्श के अंतर्गत जो साहित्य रचा जा रहा है, वह जल, जंगल और जमीन को बचाने का आर्तनाद है। विस्थापन का दर्द 'जहाँ बाँधों, खदानों और स्मार्ट सिटी प्रोजेक्ट्स के नाम पर लाखों लोगों को उनकी जड़ों से उखाड़ फेंका जाता है जैसे हाल फिलहाल में हसदेव अरण्य और निकोबार प्रोजेक्ट को देखा जा सकता है। यह समकालीन साहित्य की एक बड़ी त्रासदी के रूप में उभरा है। पंकज बिष्ट, संजीव (जैसे 'जंगल जहाँ शुरू होता है'), और रणेन्द्र (जैसे 'ग्लोबल गाँव के देवता') के उपन्यासों में यह देखा जा सकता है कि कैसे वैश्विक पूँजीवाद ने स्थानीय पर्यावरण और वहां के मूल निवासियों के जीवन को नष्ट किया है। यह पर्यावरणीय विमर्श 21वीं सदी के साहित्य को न केवल एक नई सार्थकता प्रदान करता है, बल्कि यह एक वैश्विक परिप्रेक्ष्य में मनुष्य को प्रकृति के साथ सह–अस्तित्व की अनिवार्यता का पाठ भी पढ़ाता है।'[6]

हाशियों का केंद्र में आना : विमर्शों का लोकतंत्रीकरण :

21वीं सदी के साहित्य की एक और सबसे बड़ी उपलब्धि 'विमर्शों' का प्रस्फुटन है। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श, और किन्नर विमर्श ने साहित्य की मुख्यधारा की परिभाषा को ही बदल कर रख दिया है।

'अब तक जो समाज हाशियों पर था, जिसके पास अपनी कहानी कहने के लिए अपनी आवाज नहीं थी, वह 21वीं सदी में अपनी अस्मिता और अधिकारों के साथ साहित्य के केंद्र में आ गया है। स्त्री अब केवल 'त्याग और बलिदान' की मूर्ति नहीं है, बल्कि वह अपनी देह, अपनी इच्छाओं और अपनी स्वतंत्रता पर बेबाकी से बात कर रही है। इसी तरह, दलित और आदिवासी साहित्यकारों ने अपने भोगे हुए यथार्थ को जिस खुरदरी और प्रामाणिक भाषा में प्रस्तुत किया है, उसने हिंदी साहित्य के पारम्परिक सौंदर्यशास्त्र को चुनौती दी है और उसे एक नया, अधिक मानवीय स्वरूप प्रदान किया है।'[7]

निष्कर्ष :

21वीं सदी का साहित्य अनेक चुनौतियों से घिरा है। बाजारवाद साहित्य को उपभोक्ता वस्तु में बदलने की प्रवृत्ति पैदा करता है। वहीं डिजिटल स्पेस कभी–कभी गंभीर साहित्य के बजाय तात्कालिक लोकप्रियता को बढ़ावा देता है। इसके अतिरिक्त भाषाई विभाजन, अनुवाद की कमी और पाठकीय संकट भी बड़ी चुनौतियाँ हैं।

फिर भी इस सदी का साहित्य संभावनाओं से भरा हुआ है। नए विमर्शों ने उसे अधिक लोकतांत्रिक बनाया है। हाशिये के समुदायों की आवाजें अब पहले की तुलना में अधिक मुखर हैं। तकनीक ने नए पाठक और नए लेखक दोनों को जन्म दिया है। इस तरह 21वीं सदी का साहित्य एक साथ संकट और संभावना, दोनों का साहित्य है।

21वीं सदी के 25 वर्षों के हिंदी साहित्य का समग्र मूल्यांकन करने पर यह स्पष्ट होता है कि इसे किसी

एक वाद या विचारधारा के संकीर्ण खांचे में नहीं बांधा जा सकता। यह साहित्य बहुआयामी, जटिल और विडंबनाओं से भरा हुआ है। जहाँ एक ओर इसमें महानगरीय जीवन की विसंगतियां, खोखलापन और मनोवैज्ञानिक टूटन है, तो दूसरी ओर पर्यावरण, लोक–संस्कृति और मानवीय अस्तित्व को बचाने की एक बेचैन छटपटाहट भी है।

इन नए उन्मेषों को सूत्रबद्ध करते हुए यह सैद्धांतिकीकरण किया जा सकता है कि 21वीं सदी के हिंदी साहित्य की मूल आत्मा 'प्रतिरोध और अस्मिता' के साथ–साथ 'अस्तित्व और पारिस्थितिकी' के इर्द–गिर्द बुनी जा रही है। इसका शिल्प जितना प्रयोगात्मक और मुक्त है, इसकी वैचारिकी उतनी ही समावेशी और लोकतांत्रिक है।

यह युग केवल यथार्थ को चुपचाप दर्ज करने का नहीं है, बल्कि उन वैश्विक और स्थानीय सत्ता–संरचनाओं से सीधे टकराने का है जो मानवीय मूल्यों, समता और प्रकृति के लिए सबसे बड़ा खतरा बन गई हैं। इस प्रकार, 21वीं सदी का साहित्य अपने सृजन और विमर्श में, अपनी तमाम जटिलताओं के बावजूद, अंततः मनुष्यता और पृथ्वी को बचाने का एक गंभीर, रचनात्मक और अनिवार्य प्रयास है। यह साहित्य केवल एक 'दर्पण' नहीं, बल्कि भविष्य का 'मार्गदर्शक दीप' बनने की ओर अग्रसर है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. पांडेय, मैनेजर– साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका. हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़।
2. चावड़ा रंजना – 21वीं सदी में हिन्दी साहित्य : स्थिति एवं संभावनाएँ राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. JOURNAL OF -science direct online web.
4. हेब्बार इल्लत प्रभाकरन – हिंदी का पर्यावरणीय साहित्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. खेतान प्रभा – भूमंडलीकरण : ब्रांड, संस्कृति और राष्ट्र, समसामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. गुप्ता रमणिका संपादित – आदिवासी कौन (सं. रमणिका गुप्ता)
7. तलवार वीर भारत – उत्पीड़ितों के विमर्श' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
8. पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी पर आधारित समकालीन शोध आलेख एवं अंतर्राष्ट्रीय रिपोर्ट्स (पारिस्थितिकीय संदर्भों के पुष्टिकरण हेतु)।
9. विभिन्न आलोचनात्मक पुस्तकें जो उत्तर–आधुनिकता, भूमंडलीकरण और हिंदी साहित्य के अंतर्संबंधों का विश्लेषण करती हैं।

फोन 9170506952

ईमेल : sy045968@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2026 Page No. : 142-144

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

प्रवाद पर्व : लोक बनाम राजतन्त्र की समस्या

प्रो. (डॉ.) कैलाश पति गोस्वामी

डी. ए. वी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सीवान (बिहार)–841226

'प्रवाद पर्व' रामकथा पर आधारित नरेश मेहता का एक खंडकाव्य है। इसका रचनाकाल 1975 ई. है। यह वह समय था, जब देश में आपातकाल लागू था। इसी कारण आपातकाल के बाद कवि ने रामायण के एक छोटे, किन्तु मार्मिक प्रसंग को समकालीन बोध से जोड़कर प्रस्तुत किया है। आपातकाल की स्थिति में साधारण मनुष्य के मूल अधिकार तथा उसकी स्वतंत्रता पर अंकुश लग गया था। इस काव्य में कवि ने व्यक्ति और प्रशासक या लोक बनाम राजतंत्र की समस्या पर प्रश्न चिह्न लगाया है। यह प्रश्न सदा से ही ज्वलंत बना हुआ है। अतः आधुनिक बोध के द्वारा इस समस्या को कवि ने सुलझाने का प्रयास किया हैं। आकार की दृष्टि से यह खण्डकाव्य भूमिका सहित एक सौ बारह पृष्ठों का है। इसमें भी पांच सर्ग हैं, पर परपंरामुक्त। परंपरामुक्त इसलिए कि इसमें सर्ग की संख्या न होकर सर्गों के नाम हैं, जैसे–

इतिहास और प्रतिइतिहास,
प्रतिइतिहास और तंत्र,
शक्तिः एक सम्बन्ध, एक साक्षात्,
प्रतिइतिहास और निर्णयय तथा
निर्वेद विदा।

छन्दमुक्त तथा नाटकीय शैली में लिखे गये इस खण्डकाव्य का पहला सर्ग 'इतिहास और प्रतिइतिहास' है। पूरा सर्ग राम के स्वगत से शुरू और अंत होता है। यह सर्ग कुल अठारह पृष्ठों का है, जिसमें कुल तीन सौ तीस छोटी बड़ी पंक्तियाँ हैं, जिसमें दृश्य तथा स्थान भी वर्णित है। काव्य का दूसरा सर्ग, अर्थात 'प्रतिइतिहास और तंत्र' सत्रह पृष्ठों में है, जिसमें कुछ तीन सौ इक्यावन पंक्तियाँ हैं। इनमें कुछ पंक्तियाँ दो या एक शब्द की भी हैं तो कुछ एक से अधिक शब्दों की है। चूंकि, यह छंदोमुक्त शैली में लिखा गया काव्य है, अतः इसमें छंद की निश्चित सीमा तथा अनुशासन नहीं है। 'शक्तिः एक सम्बन्ध, एक साक्षात्' सर्ग में कुल पांच सौ सतहतर छोटी–बड़ी पंक्तियाँ हैं, जो, कुल छब्बीस पृष्ठों में अंकित है। 'प्रतिइतिहास और निर्णय' सर्ग कुल इक्कीस पृष्ठों का है, जिसमें चार सौ पांच छोटी–बड़ी पंक्तियाँ नाटकीय शैली में रचित है।

काव्य का अंतिम और पांचवा सर्ग, अर्थात् 'निर्वेद विदा' सात पृष्ठों का है, जिसमें कुल एक सौ अठारह पंक्तियाँ हैं।

इसकी घटना अथवा इस काव्य का कथा आधार वाल्मीकि रामायण ही है। इसमें कवि द्वारा रामयण का

वह प्रसंग लिया गया है जब भगवान श्रीराम चौदह वर्ष वनवास के उपरांत अयोध्या लौटते हैं। तभी, एक साधारण जन (धोबी) द्वारा सीता की चरित्र–मर्यादा पर अंगुली उठायी जाती है। लक्ष्मण, भरत आदि सभासद इसे राजद्रोह बताते हुए उस धोबी को दंडित करने का प्रस्ताव करते हैं, लेकिन श्रीराम इसे राजद्रोह नहीं, बल्कि व्यक्ति की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता मानते हैं। एक साधारणजन की उठी तर्जनी को राम प्रतिऐतिहासिक महत्व मानते हैं। यह प्रतिइतिहास अनाम तथा अलिखित होता है, जो इतिहास को प्रतिइतिहास में बदल सकता है। यहाँ भी कवि का व्यक्तित्व राम के रूप में उभर कर सामने आया है। कवि नरेश के राम की मान्यता है कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सिर्फ राजपुरुषों या इतिहास अथवा पुराण–पुरुषों का नहीं है, बल्कि उन साधारण जनों को भी है, जो अनाम जीते हैं। साधारण जन के पास भाषा नहीं होती। वे तो अपनी देह से ही बोलते आये हैं। यही प्रवाद है। इस तरह कवि ने इस खण्डकाव्य में व्यक्ति और शासक अर्थात् साधारणजन और राजपुरुषों के बीच होने वाले द्वन्द्व तथा दोनों के मध्य उठने वाले प्रश्नों को नवीन संदर्भों में प्रयुक्त किया है। राम की मान्यता है कि उठे हाथ को झुकाया जा सकता है, लेकिन साधारण जन की उठी तर्जनी को झुकाया नहीं जा सकता। क्योंकि–

'व्यक्ति
चाहे वह राजपुरुष हो या
इतिहास पुरुष अथवा
पुराणपुरुष
मानवीय देश कालता से ऊपर नहीं होता राम!
इतिहास से भी बड़ा मूल्य है
सत्य।'

यहाँ कवि द्वारा प्रजातांत्रिक राज्य विधान की मान्यता को प्रतिष्ठित किया गया है, जो समकालीन है। मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठित करते हुए कवि नरेश के राम की मान्यता है कि अनाम जन द्वारा उठी तर्जनी को झुकाने का अर्थ उसे इतिहास–हीन करना होगा। फिर उनमें तथा रावण में कोई अंतर नहीं रह जाएगा। भाषा सिर्फ मनुष्य के पास होती है। जिस दिन मनुष्य भाषाहीन हो जाएगा या उसे भाषाहीन कर दिया जाएगा, उस दिन सृष्टि ईश्वरहीन हो जाएगी। राम के साथ–साथ सीता भी इस विचार से सहमत है यह भी उठी तर्जनी के लिए पुनः परीक्षा के दौर से गुजरना चाहती है। राम इसे नियति या प्रारब्ध ही मानते हैं। इसीलिए जितनी बार राम सीता को प्राप्त करना चाहते हैं, उतनी बार उसे खोते ही जाते हैं। राम का विचार है कि शक्ति का उत्तर प्रतिशक्ति से दिया जा सकता है, किन्तु अनाम साध् वारणजन की उठी तर्जनी का उत्तर क्या हो सकता है? यह राजद्रोह नहीं है, क्योंकि राजद्रोह किसी व्यक्ति विशेष के विरुद्ध नहीं, बल्कि राष्ट्र के विरुद्ध किया जाने वाले कार्य होता है। अतः, सीता राष्ट्र नहीं है। यदि कुछ लोग ऐसा मानते हैं तो यह गलत परम्परा की शुरुआत होगी, जिसकी परिणति युद्ध तथा युद्धोपरांत संपूर्ण विनाश होता है।

अन्त में कवि ने राम द्वारा जनमत की भावना को महत्व देते हुए सीता को निर्वासित कराकर यह सिद्ध किया है कि व्यक्ति चाहे कितना भी बड़ा क्यों न हो वह राष्ट्र या राज्य–व्यवस्था से ऊपर नहीं होता है। सीता का निर्वासन हो जाता है। रथ पर सवार हो सीता जा रही है। रथ की छतरी से उड़ती हुई पताका सीता के मन का प्रतीक है, मानो वह राम के पास लौट जाना चाह रही है। राम खिन्न भाव से जाते हुए रथ को निहार

रहे हैं। इसमें पात्रों की संख्या भी कम ही आने पायी है। वैसे इस काव्य में सीता को लेकर प्रवाद है। इसीलिए काव्य का नामकरण भी 'प्रवाद पर्व' हुआ है, लेकिन इस काव्य का मुख पात्र राम ही है। राम के अलावा लक्ष्मण, सीता, भरत, मंत्री, शत्रुघ्न, मंत्रीपरिषद् के सदस्य, अन्य सभासद, कुछ विशिष्टजन, प्रतिहारी, परिचारिकाएँ, अनाम साधारणजन, अर्थात् धोबी ये सारे गौण पात्र हैं। इस तरह इस काव्य में कुल बारह पात्र हैं। वैसे धोबी इसमें प्रत्यक्ष रूप से पात्र नहीं है। लेकिन उसकी अभिव्यक्ति ही इसमें मुख्य भूमिका निभाती है। उसी को लेकर इतना बड़ा प्रवाद फैला है, जिसका समाधान सीता के निर्वासन के रूप में होता है।

इस काव्य में कवि ने राज्य तथा राज्य व्यवस्था के अकूत शक्ति सम्पन्न हो जाने से उत्पन्न अराजकता की स्थिति को भी उठाया है। प्रायः देखा जाता है कि राज्य–व्यवस्था के अकूत शक्ति सम्पन्न हो जाने की स्थिति में शासक स्वयं को ही राष्ट्र समझने लग जाता है। यही कारण है कि लक्ष्मण, भरत तथा अन्य सभासद अनाम साधारणजन की उठी तर्जनी को राजद्रोह मानते हुए उसे दंडित करने का प्रस्ताव देते हैं। उनकी दृष्टि में सीता राष्ट्र का प्रतीक है। दूसरी तरफ राम सीता को राष्ट्र का प्रतीक नहीं मानते। वे अनामजन की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की हर हाल मे रक्षा करना चाहते हैं। वे सीता को राष्ट्र के साथ जोड़कर नहीं देखना चाहते। कवि का विचार है कि जिस दिन ऐसा समझा जाने लगेगा, उस दिन से एक गलत परम्परा की शुरूआत हो जाएगी। जैसा कि सबको मालूम है–आपातकाल के दौरान देवकान्त बरुआ ने 'इन्दिरा इज इण्डिया, इण्डिया इज इन्दिरा' कहकर इस परम्परा की शुरुआत की थी।

इस प्रकार, प्रवाद पर्व में कवि ने व्यक्ति या प्रशासक या लोक बनाम राजतन्त्र की समस्या को वर्तमान परिप्रेक्ष में देखते हुए इसे सुलझाने का प्रयास किया है।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2026 Page No. : 145-150

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

चूड़ी का प्रतीकवाद : स्त्री पहचान और बाजार संस्कृति

शुभम यादव, शोधार्थी
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय।
प्रोफेसर राज भारद्वाज
भगिनी निवेदिता कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय नजफगढ़, दिल्ली।

शोध सार –

यह शोध पत्र प्रसिद्ध शिक्षाविद् और विचारक प्रो. कृष्ण कुमार की पुस्तक 'चूड़ी बाजार में लड़की' का समाजशास्त्रीय और सांस्कृतिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। शोध का मुख्य उद्देश्य यह समझना है कि भारतीय समाज में 'चूड़ी' केवल एक आभूषण न होकर, स्त्री की पहचान, नियंत्रण और बाजार संस्कृति का एक जटिल प्रतीक कैसे बन जाती है। यह अध्ययन बताता है कि पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्री के लिए एक अलग 'दृष्टिशास्त्र' निर्मित किया है, जहाँ उसकी 'देह' को 'दिमाग' से अलग रखने का उपक्रम किया जाता है। कृष्णा सोबती के शब्दों में, यह शोध पत्र उस 'आन्तरिक संस्कारी स्नायुतंत्र' की पड़ताल करता है जो स्त्री को पारिवारिक संस्था के भीतर एक 'प्रतीक' मात्र बनाए रखता है। साथ ही, यह शोध फिरोजाबाद के चूड़ी उद्योग के माध्यम से उस बाजार संस्कृति के क्रूर यथार्थ को भी उजागर करता है, जहाँ चमक और खनक के पीछे बाल श्रम और गरीबी का अँधेरा छिपा है। यह पत्र स्थापित करता है कि स्त्री का संघर्ष केवल बाहरी सामाजिक बेड़ियों से नहीं, बल्कि उन सांस्कृतिक प्रतीकों के 'चक्रव्यूह' से भी है जो उसे 'अभिमन्यु' की तरह घेरते हैं।

बीज शब्द :

आंतरिक संस्कारी स्नायु तंत्र, पितृसत्तात्मक, बाजार संस्कृति, बेड़ियां, मूक आंतरिक ध्वनि संस्कार।

प्रस्तावना –

भारतीय समाज में वस्तुओं का महत्व उनके उपयोगितावादी मूल्य से कहीं अधिक उनके प्रतीकात्मक अर्थों में निहित होता है। जब ये वस्तुएँ स्त्री के जीवन, विशेषकर उसके वैवाहिक और सामाजिक दर्जे से जुड़ी हों, तो उनका अर्थ और भी गहरा और राजनीतिक हो जाता है। प्रो. कृष्ण कुमार की चर्चित पुस्तक 'चूड़ी बाजार में लड़की : संस्कृति और शिक्षा की स्त्री–केन्द्रित विवेचना' इसी प्रतीकात्मकता का एक गंभीर पाठ है। यह पुस्तक महज एक समाजशास्त्रीय अध्ययन नहीं है, बल्कि जैसा कि प्रख्यात लेखिका कृष्णा सोबती ने कहा है, यह 'तर्क और तथ्य को आमने–सामने रख सहजता, सतर्कता और सघनता से बुना गया एक वैचारिक पाठ' है। "कोई लड़की संस्कृति के सामने एक दिन में घुटने नहीं टेकती है। इस समर्पण के लिए उसे धीरे–धीरे तैयार किया

जाता है। यह सब उसके साथ किस उम्र में शुरू होता है यह कहना बहुत मुश्किल है"।[1]

इस शोध पत्र का उद्देश्य 'चूड़ी' के माध्यम से स्त्री की अस्मिता और बाजार के अंतर्संबंधों को खंगालना है। हम देखते हैं कि कैसे एक नाजुक काँच का टुकड़ा स्त्री के संपूर्ण अस्तित्व 'उसके सुहाग, उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा, और उसकी शारीरिक गतिविधियों' को नियंत्रित करने वाला एक शक्तिशाली उपकरण बन जाता है। यह अध्ययन यह भी रेखांकित करता है कि शिक्षा और सामाजीकरण की प्रक्रिया कैसे स्त्री को 'चूड़ी' जैसे प्रतीकों के माध्यम से एक निर्धारित साँचे में ढालती है।

चूड़ी का चिह्नशास्त्र : अखंडता और भंगुरता का द्वंद्व –

प्रो. कृष्ण कुमार चूड़ी के रूप में जिस 'संकेत शास्त्र' की रचना करते हैं, उसमें चूड़ी केंद्रीय भूमिका में है। भारतीय संस्कृति में चूड़ी का होना 'सौभाग्य' का प्रतीक है, और उसका न होना 'अमंगल' का। हमारी कलाई हमारे सुरक्षा बोध का निवास स्थान कहीं जा सकती है, किसी भी अंग के मुकाबले यह हमारी निजी चेतना के मानचित्र में एक निर्णायक सीमा का काम करती है लेकिन स्त्री की कलाई को नाजुक क्लाई की संज्ञा देना उसकी कमजोरी को स्त्री पहचान और सुंदरता का लक्षण बना देना एक सामाजिक कृत्य है। स्त्री की कलाई को नाजुक बनाने वाले औजारों की पड़ताल करे तो चूड़ी भी एक ऐसा ही हथियार है। "कलाई से हाथ का संज्ञान होता है। इस भूमिका में कलाई मनुष्य की कर्मठता का प्रतीक कहीं जा सकती है, शरीर के ऐसे स्थान को नाजुक बना देना किसी मनुष्य को अपंग बना देना ही है जिन औजारों के जरिए इस अपराध को अंजाम दिया जाता है, चूड़ी उनमें से अप्रतिम है"।[2] "अपराध में इस्तेमाल किए जाने वाले हथियार बहुत तेज और नुकीले होते है लेकिन चूड़ी बहुत कोमल होती है ऐसा क्यो? अगर पड़ताल करे तो पाते है की ये कोमल चूड़ियाँ ना केवल कार्य करने की क्षमता को कम करती है साथ ही साथ उनकी तेजी को भी कम करती है जिससे वे औरतों की व्यक्तिगत जिन्दगियों को पुरुष के क़ब्जे और काबू रखने की संस्कृति में मदद करती है।

वैवाहिक स्थिति का सार्वजनिक विज्ञापन –

लेखक तर्क देते हैं कि सिंदूर और चूड़ी स्त्री की देह पर चिपकाई गई ऐसी सूचनाएँ हैं जो समाज को दूर से ही यह बता देती हैं कि अमुक स्त्री 'विवाहित' है और किसी पुरुष की 'संपत्ति' या 'संरक्षण' में है। यह 'लेबलिंग' पुरुष के लिए आवश्यक नहीं मानी गई, लेकिन स्त्री के लिए इसे अनिवार्य बना दिया गया। यह अनिवार्यता स्त्री की निजता का हनन करती है और उसे एक सार्वजनिक वस्तु में बदल देती है।

ध्रुवीकृत अस्तित्व –

चूड़ी की भौतिक प्रकृति काँच की है, जो स्वभाव से ही भंगुर होता है। कृष्ण कुमार एक अत्यंत सूक्ष्म निरीक्षण करते हैं कि चूड़ी केवल दो ही अवस्थाओं में रह सकती है– या तो वह 'संपूर्ण' (अखंड) होगी या 'खंडित' (टूटी हुई)। गिलास या अन्य वस्तुओं की तरह चूड़ी दरार के साथ अस्तित्व में नहीं रह सकती। यह 'संपूर्णता'

---

1. चूड़ी बाजार में लड़की : भूमिका से।
2. चूड़ी बाजार में लड़की : प्रो. कृष्ण कुमार, पृष्ठ 56

और 'खंडित' होने का द्वैत भारतीय स्त्री के जीवन का रूपक है। समाज उसे या तो 'सधवा' (संपूर्ण) के रूप में स्वीकार करता है या 'विधवा' (खंडित) के रूप में उसे हाशिए पर धकेल देता है। बीच की कोई अवस्था 'जहाँ वह स्वतंत्र अस्तित्व के साथ जी सके' समाज को मान्य नहीं है।

भाषा और भय का मनोविज्ञान –

चूड़ी का प्रतीकवाद भाषा को भी नियंत्रित करता है। समाज ने स्त्री को सिखाया है कि चूड़ी टूट जाने पर 'टूट गई' नहीं कहना चाहिए, बल्कि 'मौल गई' या 'बढ़ गई' कहना चाहिए। 'टूटने' शब्द में जो हिंसा और अमंगल का भाव है, वह स्त्री के अवचेतन मन में 'विधवापन' के भय को गहरा करता है। इस प्रकार, एक आभूषण के माध्यम से स्त्री के मन में पति की मृत्यु और अपनी सामाजिक सुरक्षा छिन जाने का स्थायी भय रोपा जाता है।

बाजार संस्कृति और फिरोजाबाद का अँधेरा यथार्थ –

चूड़ी केवल कलाई की शोभा नहीं है, वह एक बाजार का उत्पाद भी है। 'चूड़ी बाजार में लड़की' का विश्लेषण हमें उस ग्लैमर और चमक के पीछे छिपे अंधकारमय यथार्थ तक ले जाता है। फिरोजाबाद के कांच उद्योग का काला सच हमारे सामने आता है, काँच पिंघलाने के लिए जिन आदिम भट्टियों का प्रयोग होता है और उनमें डाला जाने वाले रसायन और उनसे उठने वाला धुआँ मनुष्य के शरीर को किस तरह से घायल करता है बता पाना मुस्किल है पिंघला हुआ काँच कैसे चूड़ी की शक्ल लेता है इसके पीछे बहुत ही दयनीय यातना छिपी होती है। काँच के कारखाने में काम करने वाले मजदूर प्रौढ़ होने के पहले ही बूढ़े हो जाते है आँख और साँस की बीमारी के साथ शेष जीवन बिताते है।

छोटे बच्चो द्वारा कारखाने से ढलकर आई चूड़ी वलयों को घाई बनाना उनपर चमकी चढ़ाना चुड़ियो को ड़ब्बो में भरना छोटे बच्चों के हाथों करवाया जाता है जिसके लिए उन्हें हजार चूड़ी पर बीस रुपये के हिसाब से मजदूरी दीं जाती है।

सौंदर्य बनाम श्रम –

कृष्णा सोबती ने अपनी टिप्पणी में सही कहा है कि यह कृति 'चूड़ी बाजार के अँधेरे में बदरंग दड़वों के रसायनी घोल से गढ़ी गई चूड़ियों की खनक को अस्त्र–शस्त्र और वस्त्र के शक्ति–गलियारों से जोड़ने' की क्षमता रखती है। आगरा के ताजमहल की भव्यता और फिरोजाबाद की तंग गलियों की गरीबी का द्वंद्व यहाँ स्पष्ट दिखाई देता है। जिस चूड़ी को 'सुहाग' और 'सौंदर्य' का प्रतीक माना जाता है, उसका निर्माण उन अंधेरे कमरों में होता है जहाँ गरीब बच्चियाँ मोमबत्ती की लौ में अपनी आँखों की रोशनी और फेफड़ों की सांसें होम कर देती हैं।

गरीबी का प्रश्न –

पुस्तक में वर्णित एक प्रसंग अत्यंत मार्मिक है, जहाँ लेखक एक बाल श्रमिक बच्ची से पूछता है कि वह ईश्वर से क्या मांगेगी। बच्ची का उत्तर– 'मैं पूछूँगी कि आपने मुझे इतनी गरीबी में क्यों पैदा किया?' पूंजीवादी बाजार व्यवस्था के मुँह पर एक तमाचा है। यह दर्शाता है कि बाजार संस्कृति में स्त्री की भूमिका दोहरी है– एक उपभोक्ता के रूप में जो पितृसत्तात्मक प्रतीकों (चूड़ी, सौंदर्य प्रसाधन) को खरीदती है, और दूसरी एक श्रमिक

के रूप में जो अपने जीवन की कीमत पर इनका निर्माण करती है। यह विडंबना ही है कि एक स्त्री के 'सुहाग' की रक्षा का प्रतीक दूसरी स्त्री (बच्ची) के 'जीवन' के ह्रास पर टिका है।

देह, दिमाग और पारिवारिक स्नायुतंत्र –

इस शोध पत्र का सबसे महत्वपूर्ण आयाम वह है जिसे कृष्णा सोबती ने रेखांकित किया है। उनका कथन है कि 'स्त्री एक देह है और उसके सुखों की संकल्पनाएँ भी संस्थाबद्ध हैं'।[3] यह विचार प्रो. कृष्ण कुमार के विश्लेषण को एक नई दार्शनिक ऊंचाई देता है। देह की अवधारणा का प्रसारण भाषा, साहित्य धर्म और सिनेमा व टेलीविजन के जरिए उन भूमिकाओं की ताकतवर पुष्टि और प्रसारण दिन रात होता रहता है। तथा स्त्री देह को दुर्बलता में बाधनें वाली भाषा रूपको के माध्यम से लड़कियों के लिए दीक्षा का काम करती है। जो लड़कियों के मनोवैज्ञानिक विकास क्रम में स्थान रखती है।

देह बनाम विचार –

लेखक का तर्क है कि समाज ने स्त्री के लिए एक अलग 'दृष्टिशास्त्र' रचा है। इसके अनुसार, स्त्री का प्राथमिक अस्तित्व उसकी 'देह' है। "यदि इस देह में 'दिमाग' या 'विचार' शामिल हो जाएं, तो परिवार संस्थान में उथल–पुथल से समाज में अनर्थ होगा।"[4] इसलिए, पूरी सामाजिक व्यवस्था का जोर इस बात पर है कि स्त्री को 'विचार शून्य' रखा जाए और उसे केवल 'देह' और 'संस्कारों' तक सीमित कर दिया जाए। चूड़ी, बिंदी, पायल– ये सब उसे 'देह' होने का अहसास कराते रहते हैं। हर पल बजती चूड़ी उसे याद दिलाती है कि उसका अस्तित्व दूसरों के लिए है, न कि स्वयं के चिंतन के लिए।

पारिवारिक स्नायुतंत्र –

कृष्णा सोबती 'चूड़ी बाजार की खनक' को 'भारतीय परिवार के संस्थान के आन्तरिक संस्कारी स्नायुतंत्र' से जोड़ती हैं। यह एक अद्‌भुत रूपक है। स्नायुतंत्र शरीर को नियंत्रित करता है और संवेदनाओं का संचार करता है। ठीक उसी तरह, परिवार रूपी शरीर को नियंत्रित करने के लिए 'संस्कारों' का एक स्नायुतंत्र बनाया गया है। इसमें स्त्री को 'सुख–साधन व्यवस्था का प्रतीक' बना दिया गया है। जब तक वह सुंदर दिखती है, चूड़ियाँ पहनती है, और 'विचार' नहीं करती, तब तक परिवार का स्नायुतंत्र सुचारू रूप से चलता है। जैसे ही वह प्रश्न करती है, यह तंत्र गड़बड़ा जाता है।

पुरूष और नारी का संस्थागत विभाजन –

सोबती और कुमार दोनों इस बात पर सहमत दिखते हैं कि पुरुष के भीतर नारी और नारी के भीतर पुरुष की स्वाभाविकता को नकार दिया गया है। पुरुष को कठोर और विचारशील माना गया, जबकि स्त्री को कोमल और भावुक। ऊँची एड़ी की सैंडल का उदाहरण देते हुए लेखक बताते हैं कि कैसे फैशन के नाम पर स्त्री की देह को इस तरह मोड़ा जाता है कि वह पुरुष की कामुक दृष्टि के लिए अधिक आकर्षक बन सके। यह सब

---

3. कृष्णा सोबती : पुस्तक के आवरण पर टिप्पणी।
4. चूड़ी बाजार में लड़की, पृष्ठ 67

'संस्कृति' के आवरण में होता है, लेकिन इसका मूल उद्देश्य स्त्री को 'भोग्या' बनाए रखना है।

अभिमन्यु की शिक्षा और मुक्ति का संघर्ष –

कृष्ण कुमार अपनी पुस्तक में 'अभिमन्यु' का रूपक इस्तेमाल करते हैं। महाभारत में अभिमन्यु चक्रव्यूह में प्रवेश करना तो जानता था, लेकिन निकलना नहीं। आज की लड़कियाँ भी इसी स्थिति में हैं। उनमें चूड़ी पहनाए जाने की इच्छा का उद्‌भव और चूड़ी को अपनी सुंदरता का साधन मान लेने का भाव छोटी लड़की को पुरुष प्रधान सभ्यता में ढलने का सहज चरण मात्र है। वह शिक्षा की औपचारिक सीमाओ को लांघकर व्यक्तिगत अमुभाव के आधार पर दृष्टि की सृष्टि कर सकती थी लेकिन उनको केवल चक्रव्यह में शामिल होने का ज्ञान है निकालने का नहीं।

सामाजीकरण का चक्रव्यूह –

बचपन से ही लड़कियों को घर के काम, त्याग, और मर्यादा का पाठ पढ़ाया जाता है। यह उनका 'सामाजीकरण' है जो उन्हें पितृसत्ता के चक्रव्यूह में प्रवेश करना सिखाता है। स्कूल और शिक्षा भी अक्सर इसी भूमिका को पुख्ता करते हैं। पाठ्यक्रम और शिक्षण विधियाँ लड़कियों को 'आज्ञाकारी' और 'सुशील' बनाने पर जोर देती हैं, न कि प्रश्नकर्ता। जहाँ स्कूल और राज्य अपने सीमित दृष्टिकोण और संकोची इरादे के भीतर रहकर लड़की को एक शिक्षित नागरिक बनते है।

अस्तित्व का संघर्ष –

जैसा कि लेखक कहता हैं कि स्त्री पुरुष की पूरकता का अर्थ महज उनकी इक दूसरे पर निर्भरता नही जैसा की आमतौर पर माना जाता है, लेखक स्त्री को जिस चक्रव्यूह से बाहर लाना चाहते हैं, वह 'निश्चय ही उसके अस्तित्व के संघर्ष की पराकाष्ठा होगी।' यह संघर्ष केवल बाहरी दुनिया से नहीं, बल्कि अपने भीतर रोपे गए उस 'संस्कारी स्नायुतंत्र' से भी है। जब एक लड़की 'चूड़ी' को केवल आभूषण न मानकर उसे अपनी बेड़ियों के रूप में पहचानने लगती है, वहीं से उसके संघर्ष की शुरुआत होती है। कृष्ण कुमार का लेखन उस 'मूक आन्तरिक ध्वनि–संसार' को आवाज देता है, जो सदियों से दबा हुआ है।

निष्कर्ष –

प्रो. कृष्ण कुमार की कृति 'चूड़ी बाजार में लड़की' और उस पर कृष्णा सोबती की टिप्पणी को मिलाकर देखने पर हम एक ऐसे निष्कर्ष पर पहुँचते हैं जो भारतीय समाज की नग्न सच्चाई को बयां करता है। 'चूड़ी' यहाँ महज एक काँच का टुकड़ा नहीं है। यह एक ऐसा बहुआयामी प्रतीक है जिसमें संस्कृति, बाजार और राजनीति तीनों का समावेश है।

1. सांस्कृतिक रूप से, यह स्त्री को 'सधवा' और 'विधवा' के खानों में बांटकर उसकी कामुकता और प्रजनन क्षमता पर पहरा बिठाती है।
2. आर्थिक रूप से, यह बाजार के मुनाफे का साधन है, जो बाल श्रम और शोषण की नींव पर खड़ा है।
3. मनोवैज्ञानिक रूप से, यह वह तंत्र है जो स्त्री को 'देह' तक सीमित रखता है और उसे 'विचार' करने से रोकता है।

कृष्णा सोबती के शब्दों में, यह आख्यान केवल सहानुभूति का नहीं, बल्कि 'शक्ति–गलियारों' की समझ का है। आज आवश्यकता इस बात की है कि स्त्री शिक्षा और आत्म–चेतना के माध्यम से इस 'चक्रव्यूह' को भेदे। उसे अपनी 'नाजुकता' के मिथक को तोड़कर, अपनी 'अखंडता' को स्वयं परिभाषित करना होगा। 'चूड़ी' का टूटना अब अपशकुन नहीं, बल्कि उन रूढ़ियों के टूटने का प्रतीक बनना चाहिए जो उसे मनुष्य होने से रोकती हैं।

संदर्भ सूची –

1. कुमार, कृष्ण. (2014). चूड़ी बाजार में लड़की : संस्कृति और शिक्षा की स्त्री–केन्द्रित विवेचना. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन। भूमिका।
2. शर्मा, प्रेमपाल. (2014). 'पुस्तक समीक्षा : चूड़ी बाजार में लड़की'. शिक्षा विमर्श, जनवरी–फरवरी 2014, पृष्ठ 45–47
3. खेतान, प्रभा. (1991). स्त्री उपेक्षिता. नई दिल्ली : सरस्वती विहार। पृष्ठ – 67
4. सोबती, कृष्णा. (टिप्पणी). 'चूड़ी बाजार में लड़की' पर वैचारिक प्रतिक्रिया (जैसा कि शोध प्रश्न में उद्धृत है)।
5. द बहुआ, सिमौन. (अनुवादित). द सेकंड सेक्स (स्त्री उपेक्षिता के संदर्भ में)

मोबाइल नंबर–9170506952

ईमेल – sy045968@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2026 Page No. : 151-155

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

हिंदी महिला कथाकारों के उपन्यासों में किन्नर अस्मिता और सामाजिक यथार्थ : एक आलोचनात्मक अध्ययन

प्रोफेसर (डॉ.) अनुज कुमार पटेल
प्रोफेसर, हिंदी विभाग, गणपत सहाय पीजी कॉलेज, सुलतानपुर।
शालिनी वर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, एमडीपीजी कॉलेज, प्रतापगढ़।

सारांश :

हिंदी साहित्य में किन्नर समुदाय का चित्रण समकालीन सामाजिक विमर्श का महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुका है। विशेष रूप से महिला कथाकारों के उपन्यासों में किन्नर जीवन को केवल जैविक या लैंगिक भिन्नता के रूप में न देखकर सामाजिक असमानता, पहचान, अस्मिता, बहिष्कार और संघर्ष के व्यापक संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है। इन रचनाओं में किन्नर पात्र परिवार, समाज, शिक्षा, रोजगार और मानवीय संबंधों के स्तर पर अनेक प्रकार की समस्याओं से जूझते दिखाई देते हैं। उनकी सबसे बड़ी समस्या अपनी पहचान को स्वीकार कराने और सम्मानजनक जीवन प्राप्त करने की है। महिला कथाकारों की दृष्टि किन्नर जीवन के प्रति संवेदनशीलता, मानवीय करुणा और सामाजिक आलोचना को एक साथ प्रस्तुत करती है। उनके उपन्यासों में किन्नर पात्र धीरे–धीरे दया या उपेक्षा के पात्र से आगे बढ़कर अपनी अस्मिता, आत्मसम्मान और अधिकार के प्रति सजग मनुष्य के रूप में सामने आते हैं। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य महिला कथाकारों के उपन्यासों में अभिव्यक्त किन्नर अस्मिता और सामाजिक यथार्थ का आलोचनात्मक विश्लेषण करना तथा यह देखना है कि हिंदी कथा–साहित्य किन्नर समुदाय की सामाजिक स्थिति और संघर्ष को किस प्रकार अभिव्यक्त करता है।

बीज–शब्द : किन्नर विमर्श, अस्मिता, पहचान, सामाजिक यथार्थ, बहिष्कार, संघर्ष, महिला कथाकार, हिंदी उपन्यास।

प्रस्तावना :

साहित्य समाज की संरचना, उसकी विसंगतियों और परिवर्तनशील चेतना का सृजनात्मक प्रतिबिंब है। समाज के हाशिए पर स्थित समुदायों की आवाज को अभिव्यक्ति देना साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। स्त्री, दलित, आदिवासी और अन्य वंचित समुदायों के साथ किन्नर समुदाय भी समकालीन हिंदी साहित्य में एक महत्वपूर्ण विमर्श के रूप में उभरा है।

किन्नर समुदाय की समस्या केवल लैंगिक पहचान तक सीमित नहीं है। यह सामाजिक स्वीकृति,

पारिवारिक संबंध, शिक्षा, रोजगार, आर्थिक आत्मनिर्भरता और मानवीय गरिमा से जुड़ा प्रश्न है। पारंपरिक सामाजिक संरचना में स्त्री और पुरुष की द्विआधारी अवधारणा के कारण किन्नर व्यक्तियों को लंबे समय तक 'अन्य' के रूप में देखा गया। परिणामस्वरूप उनके प्रति उपेक्षा, उपहास, भेदभाव और सामाजिक दूरी की स्थिति बनी रही।

हिंदी महिला कथाकारों ने इस जीवन–सत्य को संवेदनशीलता के साथ साहित्य में स्थान दिया है। उनके उपन्यासों में किन्नर पात्र केवल सहानुभूति प्राप्त करने वाले चरित्र नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक संरचना पर प्रश्न उठाने वाले और अपनी पहचान स्थापित करने के लिए संघर्ष करने वाले व्यक्तियों के रूप में सामने आते हैं। इस दृष्टि से किन्नर विमर्श सामाजिक न्याय और मानवीय समानता के व्यापक प्रश्न से जुड़ जाता है।

अध्ययन का उद्देश्य :

इस अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य हिंदी महिला कथाकारों के उपन्यासों में किन्नर अस्मिता और सामाजिक यथार्थ का विश्लेषण करना है। इसके अंतर्गत किन्नर पहचान के संकट, पारिवारिक अस्वीकृति, सामाजिक बहिष्कार, शिक्षा एवं रोजगार की समस्याओं, आत्मसम्मान तथा संघर्ष की चेतना को समझने का प्रयास किया गया है। साथ ही यह देखने का प्रयास है कि महिला कथाकारों की दृष्टि किन्नर जीवन को किस प्रकार मानवीय संवेदना और सामाजिक आलोचना से जोड़ती है।

शोध–पद्धति :

प्रस्तुत अध्ययन मुख्यतः वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक और आलोचनात्मक पद्धति पर आधारित है। किन्नर विमर्श से संबंधित हिंदी उपन्यासों, आलोचनात्मक साहित्य तथा उपलब्ध सामाजिक और विधिक सामग्री का अध्ययन करते हुए साहित्यिक पाठों में व्यक्त सामाजिक यथार्थ का विश्लेषण किया गया है। साहित्य के समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण को आधार बनाकर पात्रों, परिस्थितियों और घटनाओं के माध्यम से व्यक्त सामाजिक संरचना को समझने का प्रयास किया गया है।

किन्नर अस्मिता : पहचान और आत्मस्वीकृति :

किन्नर अस्मिता का मूल प्रश्न 'पहचान' से जुड़ा है। किसी भी व्यक्ति के लिए उसकी पहचान केवल बाहरी सामाजिक संबोधन नहीं, बल्कि उसके आत्मबोध का महत्वपूर्ण हिस्सा होती है। जब समाज किसी व्यक्ति की पहचान को स्वीकार नहीं करता, तब उसकी अस्मिता संकट में पड़ जाती है।हिंदी साहित्य में किन्नर पात्रों का संघर्ष इसी अस्मिता–संकट से प्रारंभ होता है। वे अपने अस्तित्व को स्वीकार किए जाने की इच्छा रखते हैं। उनकी आकांक्षा केवल सामाजिक सहानुभूति प्राप्त करना नहीं, बल्कि समान मनुष्य के रूप में सम्मान प्राप्त करना है। इसीलिए किन्नर अस्मिता का प्रश्न आत्मसम्मान और मानवीय गरिमा से जुड़ जाता है।

महिला कथाकारों की रचनाओं में यह दृष्टि विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। किन्नर पात्रों को केवल उनके शरीर या लैंगिक पहचान से परिभाषित करने के स्थान पर उनकी संवेदनाओं, इच्छाओं, संबंधों और संघर्षों को महत्व दिया जाता है। इससे साहित्य में उनकी मानवीय छवि अधिक स्पष्ट होती है।

परिवार और सामाजिक बहिष्कार :

किन्नर जीवन की सबसे जटिल समस्याओं में पारिवारिक अस्वीकृति प्रमुख है। परिवार व्यक्ति के भावनात्मक और सामाजिक विकास का आधार होता है। लेकिन जब परिवार ही लैंगिक पहचान को स्वीकार नहीं

करता, तो व्यक्ति के सामने अकेलेपन और विस्थापन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। महिला कथाकारों के उपन्यासों में परिवार और सामाजिक प्रतिष्ठा की रूढ़ धारणाएँ किन्नर पात्रों के जीवन को प्रभावित करती दिखाई देती हैं। परिवार द्वारा छिपाना, अलग करना अथवा सामाजिक भय के कारण अस्वीकार करना केवल व्यक्तिगत पीड़ा नहीं है, बल्कि यह उस सामाजिक मानसिकता को उजागर करता है जिसमें व्यक्ति की पहचान से अधिक सामाजिक प्रतिष्ठा को महत्व दिया जाता है।

सामाजिक बहिष्कार परिवार के बाहर भी जारी रहता है। विद्यालय, पड़ोस, सार्वजनिक स्थान और कार्यस्थल पर उपहास तथा भेदभाव किन्नर व्यक्ति को मुख्यधारा से दूर करते हैं। साहित्य इन अनुभवों को सामने लाकर पाठक को उस जीवन की वास्तविक कठिनाइयों से परिचित कराता है।

शिक्षा और रोजगार का संकट :

शिक्षा व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाने का महत्वपूर्ण माध्यम है। लेकिन सामाजिक उपेक्षा और भेदभाव के कारण किन्नर समुदाय के अनेक व्यक्तियों के लिए शिक्षा प्राप्त करना कठिन हो जाता है। विद्यालय और महाविद्यालय में उपहास या असुरक्षा की भावना उनके शैक्षिक विकास को प्रभावित कर सकती है। इसी प्रकार रोजगार का प्रश्न भी केवल आर्थिक नहीं, बल्कि सामाजिक सम्मान से जुड़ा हुआ है। पर्याप्त शिक्षा और कौशल के अभाव में रोजगार के अवसर सीमित हो जाते हैं। दूसरी ओर, रोजगार प्राप्त होने पर भी कार्यस्थल पर समान व्यवहार और सम्मान की आवश्यकता होती है।

हिंदी उपन्यासों में आर्थिक निर्भरता और रोजगार की समस्या को किन्नर समुदाय की व्यापक सामाजिक स्थिति से जोड़कर देखा गया है। आर्थिक आत्मनिर्भरता के अभाव में व्यक्ति सामाजिक और पारिवारिक दबावों के प्रति अधिक संवेदनशील हो सकता है। इसलिए शिक्षा और रोजगार किन्नर अस्मिता को मजबूत करने वाले महत्वपूर्ण साधन हैं।

रूढ़ियाँ और सामाजिक दृष्टिकोण :

किन्नर समुदाय के प्रति समाज में प्रचलित अनेक रूढ़ धारणाएँ उनके सामाजिक बहिष्कार को बढ़ाती हैं। उन्हें अक्सर सामान्य सामाजिक जीवन से अलग मान लिया जाता है। उनके संबंध में बनी पूर्वधारणाएँ उनके व्यक्तित्व और क्षमताओं को सीमित कर देती हैं।साहित्य इन रूढ़ियों को चुनौती देने का कार्य करता है। महिला कथाकारों के उपन्यासों में किन्नर पात्र संवेदनशील, भावनाशील, प्रतिभाशाली और संघर्षशील मनुष्य के रूप में सामने आते हैं। इससे यह स्थापित होता है कि लैंगिक पहचान किसी व्यक्ति की मानवीय क्षमताओं का निर्धारण नहीं करती।

यही कारण है कि किन्नर विमर्श केवल किसी समुदाय की समस्याओं का वर्णन नहीं है। यह उस सामाजिक मानसिकता की आलोचना भी है जो मनुष्य को उसकी पहचान के आधार पर अलग–अलग श्रेणियों में बाँटती है।

साहित्य में संघर्ष और प्रतिरोध :

समकालीन किन्नर विमर्श का महत्वपूर्ण पक्ष संघर्ष और प्रतिरोध है। किन्नर पात्र अब केवल पीड़ा सहने वाले व्यक्तियों के रूप में प्रस्तुत नहीं होते। वे अपने अधिकारों, सम्मान और पहचान के लिए संघर्ष करते दिखाई देते हैं।

प्रदीप सौरभ के तीसरी ताली जैसे उपन्यासों में किन्नर समुदाय के सामाजिक जीवन और उसके संघर्षों को व्यापक सामाजिक संदर्भ में देखा गया है। इसी प्रकार अन्य समकालीन रचनाओं में किन्नर पात्र अपने अस्तित्व की स्वीकृति की मांग करते हैं। उनका संघर्ष कभी परिवार के भीतर दिखाई देता है, कभी शिक्षा प्राप्त करने में और कभी सम्मानजनक रोजगार की तलाश में।

इस संघर्ष का साहित्यिक महत्व यह है कि इससे किन्नर पात्रों की हमदबल सामने आती है। वे केवल परिस्थितियों के शिकार नहीं रहते, बल्कि अपनी स्थिति को बदलने की इच्छा रखने वाले सक्रिय व्यक्ति बनते हैं। इस परिवर्तन के साथ किन्नर विमर्श करुणा से अधिकार–बोध और उपेक्षा से अस्मिता की ओर बढ़ता है।

महिला कथाकारों की दृष्टि और किन्नर विमर्श :

महिला कथाकारों द्वारा किन्नर जीवन का चित्रण विशेष संवेदनात्मक महत्व रखता है। स्त्री लेखन स्वयं पितृसत्तात्मक और सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध प्रश्न उठाने की दीर्घ परंपरा से जुड़ा रहा है। इसी कारण किन्नर जीवन को देखने में भी मानवीय संवेदना और हाशिए की दृष्टि दिखाई देती है।महिला कथाकार किन्नर पात्रों को केवल सामाजिक समस्या के रूप में प्रस्तुत नहीं करतीं, बल्कि उनके निजी जीवन, भावनाओं और संबंधों को भी महत्व देती हैं। इससे पाठक को यह समझने का अवसर मिलता है कि सामाजिक बहिष्कार का प्रभाव व्यक्ति के मन और संबंधों पर किस प्रकार पड़ता है।

यह साहित्यिक दृष्टि किन्नर विमर्श को व्यापक मानवीय विमर्श से जोड़ती है। अस्मिता की तलाश, सम्मान की इच्छा और सामाजिक स्वीकृति की आवश्यकता किसी एक समुदाय तक सीमित नहीं है। इस अर्थ में किन्नर पात्रों का संघर्ष समानता और गरिमा के सार्वभौमिक प्रश्न को सामने लाता है।

सामाजिक यथार्थ से मानवीय विमर्श तक :

हिंदी महिला कथाकारों के उपन्यासों में किन्नर समुदाय का चित्रण केवल समस्याओं की सूची प्रस्तुत नहीं करता। इसके पीछे सामाजिक संरचना और उसके अंतर्विरोधों को समझने की कोशिश दिखाई देती है। परिवार, धर्म, सामाजिक प्रतिष्ठा, लैंगिक रूढ़ियाँ और आर्थिक व्यवस्था मिलकर व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करती हैं। इन उपन्यासों की विशेषता यह है कि किन्नर पात्रों के माध्यम से समाज की उस व्यवस्था पर प्रश्न उठाया जाता है जो कुछ पहचानों को सामान्य और अन्य को असामान्य मानती है। साहित्य इस विभाजन को मानवीय अनुभवों के माध्यम से चुनौती देता है।

इस प्रकार किन्नर विमर्श सामाजिक यथार्थ से आगे बढ़कर मानवीय गरिमा, समानता और सामाजिक न्याय का विमर्श बन जाता है। यह परिवर्तन हिंदी साहित्य की संवेदनशीलता और सामाजिक चेतना दोनों को दर्शाता है।

निष्कर्ष :

हिंदी महिला कथाकारों के उपन्यासों में किन्नर अस्मिता और सामाजिक यथार्थ का चित्रण बहुआयामी है। इसमें पहचान का संकट, पारिवारिक अस्वीकृति, सामाजिक बहिष्कार, शिक्षा और रोजगार की कठिनाईयाँ तथा सम्मानजनक जीवन की आकांक्षा प्रमुख रूप से सामने आती है। इन रचनाओं में किन्नर पात्र केवल करुणा के पात्र नहीं हैं, बल्कि वे अपनी पहचान, अधिकार और आत्मसम्मान के लिए संघर्ष करने वाले मनुष्य हैं। महिला कथाकारों की संवेदनशील दृष्टि ने किन्नर जीवन को सामाजिक यथार्थ के व्यापक संदर्भ में प्रस्तुत किया है।

उनके उपन्यास यह प्रश्न उठाते हैं कि किसी व्यक्ति को उसकी लैंगिक पहचान के कारण सामाजिक जीवन से क्यों अलग किया जाए। इस दृष्टि से किन्नर विमर्श केवल तृतीय लिंग की समस्याओं का साहित्यिक चित्रण नहीं, बल्कि समानता और मानवीय गरिमा की खोज है।

समकालीन हिंदी साहित्य में किन्नर अस्मिता का यह स्वर महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन का संकेत देता है। साहित्य ने किन्नर समुदाय को अदृश्यता और उपेक्षा से निकालकर विमर्श के केंद्र में लाने का कार्य किया है। इस साहित्य की सार्थकता इसी में है कि वह पाठक को किन्नर व्यक्ति को 'अन्य' नहीं, बल्कि समान अधिकारों और गरिमा वाले मनुष्य के रूप में देखने के लिए प्रेरित करता है।

संदर्भ-सूची :

1. पाण्डेय, मैनेजर। साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका। नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन।
2. सौरभ, प्रदीप। तीसरी ताली। नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन।
3. माधव, नीरजा। यमदीप। नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन।
4. मुद्गल, चित्रा। पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा। नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन।
5. भीष्म, महेंद्र। किन्नर कथा। नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन।
6. सिंह, नामवर। कविता के नए प्रतिमान। नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
7. National Legal Services Authority v. Union of India, Supreme Court of India, 2014.
8. Government of India. The Transgender Persons (Protection of Rights) Act, 2019.
9. Government of India. The Transgender Persons (Protection of Rights) Rules, 2020.
10. Census of India. Census of India 2011: Transgender Population Data. Government of India.
11. National Portal of India. Transgender Persons: Government Policies and Welfare Measures. Government of India.
12. Kapil, Geeta and Kalpana Nama. "The Discourse on Transgender Identity in Neerja Madhav's Novel Yamdeep." Research Review International Journal of Multidisciplinary.
13. समकालीन हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श से संबंधित विभिन्न आलोचनात्मक शोध एवं आलेख।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2026 Page No. : 156-170

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

Caste-Based Identity Mobilization and Political Representation in Uttar Pradesh : A Comparative Study of Descriptive and Substantive Representation of OBCs and Dalit Communities (2007–2022)

Ms. Gurdeep Kaur, Ph.D. Scholar,
Manav Rachna International Institute of Research and Studies,
Mr. Dhiraj Chaudhary, Assistant Professor,
Maharishi University of Information Technology Sector-110. Noida.

Abstract :

Caste remains an important social and political category in Indian electoral politics. In Uttar Pradesh, the political mobilisation of Other Backward Classes (OBCs) and Dalit communities has significantly shaped party strategies, electoral coalitions and patterns of political representation. However, the increasing political visibility of historically marginalised communities raises an important question : does greater descriptive representation necessarily result in substantive representation?

This paper examines the relationship between caste-based identity mobilisation and political representation in Uttar Pradesh during the period 2007–2022. It focuses on OBC and Dalit communities and uses Hannah Pitkin's distinction between descriptive and substantive representation as its principal theoretical framework. The study relies on secondary sources, including Election Commission of India statistical reports, political party documents and manifestos, scholarly literature and existing research on caste and electoral politics in Uttar Pradesh. The analysis covers four Assembly election cycles : 2007, 2012, 2017 and 2022.

The paper argues that caste mobilisation and political representation are closely connected but should not be treated as synonymous. Electoral mobilisation can increase political visibility, facilitate access to representative institutions and encourage political parties to incorporate historically marginalised communities into their electoral strategies. Nevertheless, the presence of representatives belonging to a particular social group does not, by itself, establish substantive

representation. Substantive representation requires examination of political agendas, policy commitments and the extent to which representatives address the interests of the communities they claim to represent. The paper therefore proposes an analytical distinction between electoral inclusion and substantive political representation and demonstrates its relevance to the study of caste politics in Uttar Pradesh.

Keywords : Caste politics, OBC, Dalit politics, political representation, descriptive representation, substantive representation, Uttar Pradesh, electoral politics.

1. Introduction :

Indian democracy has transformed the political significance of caste. Although caste historically operated as a system of social hierarchy and exclusion, democratic institutions and electoral competition have created new political spaces in which caste identities can be organised, negotiated and mobilised. Political parties have increasingly engaged with caste identities while constructing electoral coalitions, selecting candidates and framing political programmes.

This transformation is particularly visible in Uttar Pradesh. The state has historically been an important arena of caste-based political mobilisation and has witnessed the emergence of political formations that sought to represent socially disadvantaged communities. The political assertion of Dalits and OBCs has contributed to changes in party competition and has increased the visibility of historically marginalised communities within representative institutions.

The political importance of this transformation, however, cannot be understood only through electoral numbers. The election of representatives belonging to marginalised communities may constitute an important form of democratic inclusion, but numerical presence does not automatically establish that the political interests of those communities are being represented.

This distinction between presence and action is central to the concept of political representation. Hannah Pitkin's The Concept of Representation provides a foundational theoretical framework for distinguishing different dimensions of representation, including descriptive and substantive representation. Descriptive representation concerns the extent to which representatives resemble the represented population, whereas substantive representation concerns acting for the represented and their interests.

The distinction is particularly relevant to caste politics. If a political party nominates candidates belonging to an OBC or Dalit community, this may contribute to descriptive representation. Yet it does not necessarily demonstrate that those representatives will advocate policies or political agendas that advance the interests of the community.

The present study therefore examines caste-based identity mobilisation and political

representation together while keeping the two concepts analytically distinct.

The study focuses on Uttar Pradesh Assembly elections between 2007 and 2022. The period covers four electoral cycles—2007, 2012, 2017 and 2022—and captures changes in party competition and caste-based electoral strategies. The Election Commission of India maintains official statistical reports for all four elections. The central research problem is whether caste-based mobilisation has contributed merely to greater electoral visibility and descriptive inclusion or whether it has also created conditions for substantive representation.

Rather than assuming either outcome, this paper examines the relationship through electoral representation, party strategies, political discourse and policy commitments.

2. Research Problem :

Caste-based electoral mobilisation creates an important paradox for democratic representation. On one hand, mobilisation can enable historically marginalised communities to enter political institutions, influence party strategies and gain greater visibility. On the other hand, electoral mobilisation can also use social identities primarily as instruments for constructing electoral coalitions.

The central problem is therefore the gap that may exist between political inclusion and effective representation. The presence of OBC and Dalit representatives in legislative institutions can be understood as one dimension of democratic inclusion. However, the substantive dimension requires examining what representatives and political parties do after, and beyond, electoral mobilisation.

Existing research on Dalit political representation in Uttar Pradesh has similarly raised questions about whether increased political representation produces broader changes in the political and social position of Dalit communities.

This study consequently asks whether caste mobilisation should be understood as an end in itself or as a political mechanism whose representational consequences require further examination.

3. Objectives of the Study

The study has four objectives :

1. To examine the role of caste-based identity mobilisation in the electoral politics of Uttar Pradesh.
2. To examine patterns and forms of political representation of OBC and Dalit communities between 2007 and 2022.
3. To analyse the distinction between descriptive and substantive representation in the context of caste politics.
4. To examine whether caste-based electoral mobilisation is accompanied by evidence of

substantive political representation.

4. Research Questions

The study addresses the following questions :

1. How have political parties mobilised OBC and Dalit identities in Uttar Pradesh between 2007 and 2022?
2. What forms of descriptive representation can be identified for OBC and Dalit communities?
3. How does caste-based mobilisation relate to substantive political representation?
4. What gaps exist between numerical inclusion and effective representation of community interests?

5. Review of Literature :

5.1 Caste as a Political Resource :

The relationship between caste and democratic politics has been a major theme in the study of Indian politics. Rajni Kothari's work demonstrated that caste should not be understood merely as a traditional social institution separated from modern politics. Democratic competition created new political functions for caste, allowing caste identities to become resources for political mobilisation.

The transformation of caste into a political resource is particularly important in electoral politics because political parties operate within a competitive environment in which social identities can influence candidate selection, coalition formation and political communication.

The political transformation of lower-caste communities in Uttar Pradesh has also been documented in scholarship on the state's electoral politics. Sudha Pai's work identifies significant transformations in lower-caste politics during the 2000s and examines changing strategies through which political parties sought support among Dalits and backward communities. Thus, caste mobilisation should not be treated as a static continuation of traditional caste structures.

It is also a product of political competition and institutional opportunities.

5.2 OBC Political Mobilisation :

OBC political mobilisation became particularly important following the political developments associated with the Mandal period. The growing political assertion of backward communities altered the social basis of electoral competition in North India.

In Uttar Pradesh, OBC politics cannot be understood as a single unified political process. Different communities within the OBC category have distinct political histories, interests and levels of political organisation. Consequently, the category "OBC" itself contains significant internal diversity.

This creates an important methodological challenge. Official electoral data does not consistently classify individual candidates by OBC subgroup. Therefore, this study does not infer caste identity from names or constituencies. Instead, OBC mobilisation is examined through established scholarship, party strategies, political discourse and reliable documentary sources.

5.3 Dalit Political Mobilisation :

Dalit political mobilisation represents another major dimension of caste politics in Uttar Pradesh. The rise of Dalit political organisations and leaders created new forms of political representation and assertion. Research on Dalit politics has examined the relationship between political participation, democracy, development and representation. Husain's study, for example, examines Dalit assertion in Uttar Pradesh through the broader relationship between democracy, development and political representation.

At the same time, research on reserved constituencies in Uttar Pradesh demonstrates that the existence of constitutionally reserved seats does not by itself resolve questions concerning the political autonomy or substantive orientation of Dalit representation. Singh and Ali's study specifically examines whether reserved constituencies in Uttar Pradesh produce Dalit-centred politics.

These debates reinforce the importance of distinguishing electoral inclusion from substantive representation.

5.4 Political Representation :

Political representation has been theorised through several competing approaches. Pitkin's The Concept of Representation remains one of the foundational works in the field. Published by the University of California Press in 1967, the work develops a multidimensional understanding of representation.

For this study, the distinction between descriptive and substantive representation is particularly important. Descriptive representation concerns resemblance between representatives and represented groups. Substantive representation, by contrast, focuses on acting for the represented and advancing their interests. Contemporary scholarship continues to use these dimensions to examine political representation and policy responsiveness.

The literature therefore suggests that numerical presence and substantive political action should not be treated as identical.

6. Theoretical Framework :

6.1 Pitkin's Concept of Representation :

The theoretical framework of the study is based primarily on Hannah Pitkin's theory of political representation.

Pitkin identifies four dimensions of representation :

- Formalistic representation;
- Descriptive representation;
- Symbolic representation; and
- Substantive representation.

The present study concentrates on the relationship between descriptive and substantive representation.

Descriptive Representation :

Descriptive representation refers to the resemblance between representatives and the represented in socially relevant characteristics.

In the context of this research, caste identity is treated as one relevant characteristic.

Thus, the presence of OBC or Dalit representatives in political institutions can be considered evidence of descriptive representation.

Substantive Representation :

Substantive representation refers to the extent to which representatives act on behalf of the interests of those they represent.

For this study, substantive representation is examined through :

- Political claims;
- Manifesto commitments;
- Policy priorities;
- Public articulation of community-related issues; and
- Available evidence concerning political action.

Importantly, a manifesto promise is treated as evidence of political commitment, not automatic proof of substantive representation. Actual implementation would require separate evidence.

7. Methodology :

The study adopts a qualitative, descriptive and comparative research design. It relies primarily on secondary sources, including :

1. Election Commission of India statistical reports;
2. Election results and candidate records;
3. Political party manifestos and official documents;
4. Scholarly books and journal articles;
5. Existing research on caste politics and political representation in Uttar Pradesh.

The Election Commission of India provides official statistical reports for Uttar Pradesh

Assembly elections, including 2007, 2012, 2017 and 2022. These reports provide election-level information regarding constituencies, candidates, votes and results.

The study uses comparative analysis across four electoral cycles.

The analysis proceeds through two related dimensions.

Dimension 1 : Descriptive Representation :

This dimension examines the presence and electoral representation of members of marginalised communities where reliable identification is available.

For Dalit representation, constitutional reservation and SC-category electoral information provide an identifiable institutional basis for analysis.

For OBC representation, because official ECI datasets do not provide a consistent candidate-level OBC classification, the analysis relies on established scholarly research and reliable documentary evidence rather than inferring caste identity.

Dimension 2 : Substantive Representation :

Substantive representation is assessed through :

- Political party manifestos;
- Policy commitments;
- Political discourse;
- Articulation of community interests; and
- Available evidence of political action.

The study therefore does not equate candidate identity with substantive representation.

8. Scope of the Study :

The geographical scope is limited to Uttar Pradesh.

The temporal scope covers the Assembly elections of : 2007, 2012, 2017 and 2022.

The study focuses on OBC and Dalit communities.

The selection of this period allows comparison across four electoral cycles and enables examination of changes in party strategies and representational patterns.

The study does not attempt to analyse every caste group in Uttar Pradesh. It focuses specifically on the relationship between caste mobilisation and representation among two broad historically disadvantaged categories.

9. Caste-Based Identity Mobilisation in Uttar Pradesh :

Caste-based mobilisation in Uttar Pradesh should be understood as a dynamic political process. Political parties have historically constructed electoral strategies around social identities while also attempting to expand their support beyond a single caste group.

This means that caste mobilisation can operate through several mechanisms :

- Candidate selection;
- Party organisation;
- Electoral alliances;
- Campaign narratives;
- Manifesto commitments;
- Welfare and development claims; and
- Coalition-building across caste categories.

The transformation of lower-caste politics in Uttar Pradesh during the 2000s demonstrates that political parties increasingly combined caste-based mobilisation with broader political narratives.

Pai's research, for example, identifies changing strategies through which the BJP sought support among sections of Dalits and backward communities in the 2014 and 2017 electoral contexts.

This suggests that caste mobilisation should not be conceptualised as a simple contest between parties representing fixed caste blocs.

Instead, political parties may seek to construct broader coalitions while simultaneously addressing particular caste identities.

10. OBC Mobilisation and Representation :

OBC political mobilisation has been central to the transformation of electoral politics in North India.

The political significance of OBC communities lies not only in their numerical presence but also in their ability to influence party strategies and electoral coalitions.

However, the OBC category is internally heterogeneous. Different OBC communities may have different political interests and varying degrees of representation within political parties.

Consequently, the study avoids treating OBC political mobilisation as a single unified phenomenon.

The analytical distinction between mobilisation and representation is especially important here.

A political party may mobilise OBC voters during an election without necessarily providing sustained substantive representation of all OBC interests.

Conversely, an OBC representative may pursue a broader political agenda that is not limited to OBC-specific demands.

Therefore, descriptive and substantive dimensions need to be analysed separately.

11. Dalit Mobilisation and Representation :

Dalit political mobilisation has played a distinctive role in Uttar Pradesh.

The emergence of Dalit political leadership and organisations expanded the political visibility of communities that had historically experienced social and political exclusion.

However, representation through reserved constituencies raises a further question: whether institutional presence necessarily produces political agendas centred on Dalit interests.

Research on Uttar Pradesh indicates that Dalit representation has historically been concentrated in reserved constituencies, while representation from non-reserved constituencies has been comparatively limited.

This distinction matters because reserved constituencies guarantee descriptive access to legislative institutions but do not independently establish the substantive orientation of elected representatives.

The political significance of Dalit representation therefore needs to be evaluated through both institutional presence and political action.

12. Electoral Cycles, 2007–2022 :

The four Assembly elections examined in this study represent different political contexts.

- **2007 :**

The 2007 election is particularly significant for the study of Dalit political representation because the BSP secured a majority in the Uttar Pradesh Assembly. Research on the period also identifies the importance of BSP's political strategy and its attempt to construct broader electoral support beyond a single social group.

The election therefore provides an important case for examining the relationship between Dalitled political mobilisation and broader electoral coalition-building.

- **2012 :**

The 2012 election provides a different political context and allows comparison with the preceding electoral cycle.

Rather than treating the 2007 outcome as evidence of a permanent transformation, comparison with 2012 makes it possible to examine the changing relationship between caste mobilisation, party competition and representation.

The ECI's official 2012 statistical report provides the electoral basis for such comparison.

- **2017 :**

The 2017 election represents another significant shift in Uttar Pradesh's political competition.

Research on lower-caste politics identifies the importance of the BJP's efforts to attract

sections of Dalits and backward communities during this period.

This is analytically important because it demonstrates that political mobilisation of historically marginalised communities is not restricted to parties historically identified with particular caste groups.

- **2022 :**

The 2022 election provides the final electoral point in the study.

Its inclusion allows the paper to examine whether the patterns observed in earlier elections continued, changed or became more complex.

The ECI provides official statistical records for the 2022 Assembly election, allowing the electoral context to be documented independently of political narratives.

Table 1. Electoral Participation in SC-Reserved Constituencies in Uttar Pradesh, 2007–2022

Indicator	2007	2012	2017	2022
SC-reserved constituencies	89	85	85	84
Total electors	24,185,324	27,134,128	28,719,439	31,204,238
Electors who voted	10,693,589	15,972,494	17,672,007	19,137,867
Poll percentage (%)	44.22	58.86	61.53	61.33
Valid votes	10,690,764	15,962,090	17,667,254	19,056,777
Polling stations	23,775	29,009	30,336	36,823
Average electors per polling station	1,017	935	947	847

Source : Election Commission of India, Statistical Reports on the Uttar Pradesh Legislative Assembly Elections, 2007, 2012, 2017 and 2022; compiled by the author. The 2007 and 2012 figures are also directly reflected in the ECI statistical reports.

Analysis :

The electoral data reveal a substantial increase in electoral participation in Scheduled Caste (SC)- reserved constituencies in Uttar Pradesh between 2007 and 2022. The number of SC-reserved constituencies declined from 89 in 2007 to 84 in 2022, whereas the total electorate increased from 24.19 million to 31.20 million. The number of electors who voted increased from 10.69 million in

2007 to 19.14 million in 2022. Similarly, the poll percentage increased from 44.22 per cent in 2007 to 58.86 per cent in 2012 and 61.53 per cent in 2017, before remaining broadly stable at 61.33 per cent in 2022. The increase in voter participation provides an important empirical basis for examining changes in electoral behaviour within SC-reserved constituencies over the period.

However, electoral participation alone cannot be treated as direct evidence of caste-based identity mobilisation. The ECI data establish changes in participation and representation within SCreserved constituencies, but the mobilisation of caste identities requires examination of additional electoral indicators. These include party-wise vote shares, candidate profiles, electoral margins, changes in party performance across successive elections, and the political articulation of caste identities. Accordingly, the present study uses ECI electoral statistics alongside constituency-level and secondary qualitative evidence to examine the relationship between caste identity and electoral mobilisation.

13. Descriptive and Substantive Representation : Comparative Analysis :

The central analytical distinction of this paper can be summarised as follows :

Dimension	Descriptive Representation	Substantive Representation
Core question	Who represents?	What interests are represented?
Main concern	Social composition	Political action

Possible evidence Candidate/representative identity Policies, agendas, legislative priorities

Electoral relevance Candidate selection and election Political commitments Limitation Presence does not establish action Commitments do not automatically establish implementation This distinction prevents two analytical errors.

The first is to assume that the election of a member of a marginalised community automatically produces substantive representation.

The second is to assume that substantive representation requires representatives to belong to the same social group as the represented.

Pitkin's framework demonstrates why representation is more complex than resemblance alone. In the context of Uttar Pradesh, this means that the political identity of a representative is relevant but insufficient.

14. Discussion :

The analysis of caste mobilisation and representation in Uttar Pradesh reveals several important relationships.

First, caste remains an important political resource, but its political use changes across electoral contexts.

Second, caste mobilisation can increase political visibility and create opportunities for representation.

Third, political parties can incorporate marginalised communities into broader electoral coalitions without necessarily constructing their entire political programme around those communities.

Fourth, descriptive representation and substantive representation should not be treated as interchangeable.

Fifth, the relationship between caste identity and representation is mediated by political parties, electoral institutions and broader political competition.

This is particularly evident in the transformation of lower-caste politics during the 2000s and the subsequent expansion of political strategies directed toward sections of Dalit and OBC communities.

The evidence therefore supports a more cautious understanding of caste mobilisation. Mobilisation can create conditions for representation, but substantive representation requires additional political processes.

15. Findings :

The study identifies the following principal findings.

15.1 Caste mobilisation contributes to political inclusion :

Caste-based mobilisation has created political opportunities for historically marginalised communities by making their social identities relevant to electoral competition.

15.2 Descriptive representation is not equivalent to substantive representation :

The presence of OBC or Dalit representatives can indicate political inclusion but cannot, by itself, demonstrate that community interests are being advanced.

15.3 Representation is shaped by electoral competition :

Political parties may alter their strategies depending on changing electoral circumstances. The same caste community may therefore be approached differently across electoral cycles.

15.4 Dalit representation has an important institutional dimension :

Reserved constituencies provide a formal mechanism for Dalit political representation. However, existing research indicates that questions remain concerning the substantive orientation of representation in these constituencies.

15.5 OBC representation requires attention to internal diversity :

OBCs are not a politically homogeneous category. Therefore, examining OBC representation requires attention to differences between communities rather than treating the entire category as a single political bloc.

15.6 Political commitment is not the same as policy implementation :

Manifesto commitments and campaign promises can provide evidence of political recognition of community interests. However, they should not be treated as proof of substantive outcomes without additional evidence.

16. Limitations :

The study has several limitations.

First, official electoral datasets do not consistently identify the caste identity of every candidate. Therefore, the study does not infer OBC identity from names, constituencies or other indirect characteristics.

Second, substantive representation is difficult to measure through secondary data alone.

Third, manifesto commitments do not necessarily translate into implementation.

Fourth, the study does not include interviews with voters, legislators or political party representatives.

Fifth, the study does not use statistical modelling to establish a causal relationship between caste mobilisation and electoral outcomes.

The findings should therefore be understood as a qualitative and comparative analysis rather than a causal statistical test.

17. Conclusion :

Caste-based identity mobilisation remains an important feature of electoral politics in Uttar Pradesh. Between 2007 and 2022, political parties operated within an electoral environment in which OBC and Dalit identities remained significant components of political mobilisation and coalition-building.

The study demonstrates, however, that caste mobilisation and political representation should not be treated as identical processes.

Caste mobilisation can contribute to political inclusion by increasing visibility, encouraging candidate selection and creating opportunities for historically marginalised communities to enter representative institutions. Yet the presence of members of a community within political institutions does not automatically establish substantive representation.

The distinction developed by Hannah Pitkin between descriptive and substantive representation provides an appropriate conceptual framework for examining this problem. Descriptive representation addresses the question of who is represented, while substantive representation concerns how and whether representatives act for the interests of those they represent.

The experience of Uttar Pradesh demonstrates the importance of maintaining this distinction.

Dalit political representation, including representation through reserved constituencies, has expanded institutional access, while OBC mobilisation has played a major role in the construction of electoral coalitions. Yet neither numerical inclusion nor electoral mobilisation alone can establish substantive political empowerment.

The central contribution of this study is therefore analytical rather than causal. It argues that research on caste politics should move beyond electoral arithmetic and examine the relationship between identity mobilisation, institutional representation and political action.

Future research can strengthen this analysis through constituency-level datasets, interviews with representatives and voters, legislative data and systematic examination of policy implementation. Such research would make it possible to investigate more directly whether descriptive inclusion is accompanied by measurable changes in substantive representation.

Ultimately, caste-based political mobilisation should be understood neither simply as symbolic electoral politics nor automatically as substantive empowerment. Its democratic significance depends on the institutional and political processes through which mobilisation is translated into representation, policy and political action.

References :

1. Ambedkar, B. R. (1987). Dr. Babasaheb Ambedkar: Writings and speeches. Government of Maharashtra.
2. Election Commission of India. (2007). Statistical report: General election to the Legislative Assembly of Uttar Pradesh, 2007. Election Commission of India.
3. Election Commission of India. (2012). Statistical report: General election to the Legislative Assembly of Uttar Pradesh, 2012. Election Commission of India.
4. Election Commission of India. (2017). Statistical report: General election to the Legislative Assembly of Uttar Pradesh, 2017. Election Commission of India.
5. Election Commission of India. (2022). Statistical report: General election to the Legislative Assembly of Uttar Pradesh, 2022. Election Commission of India.
6. Husain, Z. (2022). Democracy, development and political representation: Notes on Dalit assertion in Uttar Pradesh. Contemporary Voice of Dalit, 18(1), 8–18. https://doi.org/10.1177/2455328X221115614
7. Kothari, R. (1970). Politics in India. Orient Longman.
8. Pai, S. (2022). From social justice to aspiration: Transformation of lower caste politics in Uttar Pradesh in the 2000s. In Neoliberalism, Urbanization and Aspirations in Contemporary

India (pp. 212–232). Oxford University Press.
9. Pitkin, H. F. (1967). The concept of representation. University of California Press.
10. Singh, S. S., & Ali, M. (2019). Are reserved constituencies Dalit centric? Experience from Uttar Pradesh. Studies in Indian Politics, 7(1). https://doi.org/10.1177/2321023019838652
11. Yadav, Y. (1999). Electoral politics in the time of change: India's third electoral system, 1989–99.
12. Economic and Political Weekly.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2026 Page No. : 171-174

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

धर्मपाल साहिल के उपन्यासों में मीडिया की भूमिका

प्रवीण भाटिया

शोधार्थी–हिंदी विभाग,

हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला, समरहिल, 171005

शोध सार :–

धर्मपाल साहिल हिंदी साहित्य के प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध रचनाकार हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं से हिंदी साहित्य में बहुमूल्य योगदान दिया है। धर्मपाल साहिल के उपन्यासों को हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। उन्होंने अपने उपन्यासों में समाज की विविध समस्याओं और कृतियों को उजागर किया है। वर्तमान समय में मीडिया की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। आज संपूर्ण विश्व 'ग्लोबल विलेज' बन गया है जिसमें मीडिया की भूमिका अत्यंत प्रभावशाली है। प्रस्तुत शोध पत्र 'धर्मपाल साहिल के उपन्यासों में मीडिया की भूमिका' मीडिया के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्षों का विश्लेषण करता है।

बीज शब्द – मीडिया, उपन्यास, चौथा स्तंभ, समाज, जागरूक।

लोकतंत्र में मीडिया को 'चौथा स्तंभ' माना जाता है। मीडिया की भूमिका समाज को जागरूक करने, सत्ता पर नजर रखने और सूचनाओं के आदान–प्रदान में महत्वपूर्ण है। वर्तमान समय में मीडिया की असंतुलित भूमिका चिंताजनक पहलू है। टी.वी, रेडियो, समाचार पत्र, इंटरनेट आज मीडिया के महत्वपूर्ण साधन है। 'समझौता एक्सप्रेस' उपन्यास में मीडिया की भूमिका का लेखक ने बहुत अच्छे ढंग से विश्लेषण किया है। इस उपन्यास में दिखाया गया है कि कैसे टी.वी पर दिखाए जाने वाले कार्यक्रम बच्चों और बड़ों को समानांतर रूप से प्रभावित करते हैं। लेखक के शब्दों में, "प्रोफेसर नंदा खत लेटर बॉक्स में डालकर घर लौटे तो देखा कि टी.वी. पर फिल्म चल रही है, और घर के छोटे–बड़े सभी टी.वी. के सामने जुड़े बैठे हैं। वे टी.वी. पर खबरें या गुरबाणी सुनने के सिवा कोई और कार्यक्रम कम ही देखते हैं। अन्दर टी.वी. से आती आवाज 'हिंदुस्तान–जिंदाबाद, पाकिस्तान मुर्दाबाद' सुनकर वे ठिठक कर रुक गये। उन्हें देख कर उनका 10–12 वर्षीय पोत्र गगनदीप कहने लगा, "दादा जी–दादा जी, आ जाओ टी.वी. पर हिंदुस्तान–पाकिस्तान वाली फिल्म आ रही है। बहुत बढ़िया फिल्म है। देखो न, हीरो कैसे पाकिस्तानियों को मारता है।"[1] उपन्यास में बताया गया है कि कैसे टी.वी पर दिखाए जाने वाले ऐसे काल्पनिक दृश्य बच्चों–बड़ों में भी नफरत के बीज बो रहे है। वे ऐसे दृश्यों को काल्पनिक दृश्य ना मानकर वास्तविक समझते हैं। ऐसी फिल्में, हिंसक दृश्य दिखाना समाज के लिए बहुत नुकसानदेह होता है।

'बेटी हूं ना!' उपन्यास 'मीडिया की भूमिका' सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्षों का चित्रण करता है। उपन्यास में राजा कुँअर जो मंत्री है उसकी बेटी का विवाह है। उपन्यास में बताया गया है कि कैसे सारा

मीडिया कुँअर की पुत्री की कवरेज करने में लगा हुआ है। चौबीस घंटे मीडिया में शादी की चर्चा चल रही है ऐसा लग रहा है जैसे देश में और कुछ हो ही नहीं रहा। मीडिया के पास लोगों को दिखाने के लिए कोई खबर नहीं है। लेखक के शब्दों में, "सारा मीडिया देश–दुनिया की खबरें भूल कर, बाणी की शादी की कवरेज के बिना कोई काम ही ना रह गया था जैसे।"[2] मीडिया में दिखाई जाने वाली ऐसी खबरें लोगों को बहुत प्रभावित करती है। वे भी इस ढंग से शादी के बारे में सोचने लगते हैं जिससे कहीं ना कहीं दहेज प्रथा को भी बढ़ावा मिलता है। उपन्यास में मीडिया की सकारात्मक भूमिका को भी दिखाया गया है कि कैसे मीडिया में बार–बार राजा कुँअर के बेटे प्रिंस के अनैतिक आचरण को दिखाया जाता है जिस कारण राजा कुँअर को अपने पद से इस्तीफा देना पड़ता है। इस तरह मीडिया भ्रष्टाचार, नीतियों में कमी, मंत्रियों का चरित्र आदि को उजागर उनको जनता के प्रति जवाब दे बनाता है।

'खिलने से पहले' उपन्यास में मीडिया की भूमिका का सूक्ष्म ढंग से वर्णन किया गया है। टी.वी पर दिखाए जाने वाले अवैध संबंध, अश्लील दृश्य आदि बच्चों की मानसिक स्थिति को बहुत प्रभावित करते हैं। वे उम्र से पहले इन बातों को जान रहे हैं। उपन्यास की मुख्य पात्र सैफी को इंटरनेट की आदत हो जाती है जिस कारण उसकी मैडम सुमित्रा चिंतित है। मैडम सुमित्रा सोचती है कि, "इतनी छोटी उम्र में ही वह लड़की सुहागरात के सपने देखने लग पड़ी है। उसे तो इस शब्द के अर्थ भी पूरी तरह नहीं पता। बेशक सैफी की भावनाओं का संसार अभी कोरा है, लेकिन टी.वी और फिल्मों में सुहागरात की दृश्य देख–देख कर वह अभी से ऐसे सपने लेने लग पड़ी है।"[3] आज बच्चे बाहर खेल–कूद करने की बजाय घर में ज्यादातर समय टी.वी देखने, वी.डी.ओ. गेम खेलते हैं। वे असल शारीरिक क्रियाओं से दूर है जिसका उनकी सेहत पर भी बुरा असर पड़ता है। धर्मपाल साहिल के शब्दों में, "मोबाइल और माउस, जिनसे 'टीन एजर' खिलौने समझ कर खेल रहे हैं, एक दिन वे स्वयं ही इन यंत्रों के हाथों के खिलौने बन जाएंगे, ऐसा सोचना कभी कल्पना से परे की बात थी। आज 'टीन एजर' ड्रग–एडिक्शन के साथ–साथ नेट–एडिक्शन के भी शिकार हो रहे हैं। ये बच्चे एक अलग कल्पनालोक में विचर रहे हैं। ये रोग हमारे बच्चों को शारीरिक ही नहीं, मानसिक तौर पर भी पंगु बना रहा है। इस तनाव में उन मासूमों के फूल से चेहरे 'खिलने से पहले' ही मुर्झाने लगे हैं।"[4] इस तरह धर्मपाल साहिल युवा पीढ़ी और बच्चों के प्रति अपनी चिंता प्रकट करते हैं।

मीडिया का काम होता है लोगों को स्पष्ट जानकारी देना, समाज में हो रहे गलत कामों के प्रति लोगों को जागरूक करना। 'आर्त्तनाद 'उपन्यास में मीडिया की भूमिका को स्पष्ट किया गया है। उपन्यास की मुख्य पात्र चंदा का एक संत और उसके साथी शारीरिक शोषण करते हैं। मीडिया में इस खबर को और भी अधिक बढ़ाकर दिखाया जाता है जिससे संत के श्रद्धालू भड़क जाते हैं। मीडिया में जैसे खबर फैलती हैं की चंदा का शारीरिक शोषण हुआ है तो प्रैस रिपोर्टर आधी रात को ही उसके पति को फोन करने लग जाते हैं यह जाने बिना कि वह अभी इन सवालों के जवाब दे भी सकते हैं या नहीं। धर्मपाल साहिल के शब्दों में, "प्रैस वाला प्रश्न पर प्रश्न किया जा रहा था। रोहित परेशान हो उठा, उन प्रश्नों की बौछार से उसने स्पष्ट न करते हुए कहा–

देखिए भाई साहिब, हम इस समय आपके किसी भी प्रश्न का उत्तर देने की स्थिति में नहीं है। हम बहुत ज्यादा परेशान और मेंटली डिस्टर्बड है। आप के प्रश्नों से हमारी परेशानी और बढ़ रही है, इसलिए आप ऐसे सवाल करके हमें और ज्यादा डिस्टर्ब मत करें।"[5]

समाचार पत्रों में शारीरिक शोषण जैसी खबरें और अर्द्धनग्न तस्वीरों को बड़ा करके छापा जाता है जिससे पाठकों पर कहीं ना कहीं नकारात्मक असर पड़ता है। आज ऐसे बहुत कम पत्रकार है जो सभी तथ्यों को सामने रख सच्चाई को पेश करते हैं। वर्तमान समय में मीडिया राजनीतिक लोगों और धार्मिक लोगों के हाथों की कठपुतली बनता जा रहा है। मीडिया में ऐसे पत्रकारों की संख्या बहुत कम है जो निडरता और ईमानदारी से अपना काम करते हैं। उपन्यास में मीडिया की सकारात्मक भूमिका को चित्रित करते हुए दिखाया गया है कि कैसे खोजी नाम का पत्रकार संत की सच्चाई मीडिया में पेश करता है। लेखक के शब्दों में, ".....तभी एक खोजी पत्रकारिता के लिए प्रसिद्ध समाचार पत्र के एक खोजी पत्रकार द्वारा बहुत परिश्रम और खोजबीन के बाद संत कामेश्वर के जीवन की बखियां उधेड़ती, लोमहर्षक कहानी प्रस्तुत की गई। उसे पढ़ने–सुनने के बाद लोगों के रोंगटे खड़े हों गये।"[6] इस तरह मीडिया में संत का पर्दाफाश होता है और उसके श्रद्धालु धीरे–धीरे इस सच्चाई को मान लेते हैं कि कैसे उनके साथ भी धोखा हुआ है।

'मचान' उपन्यास में धर्मपाल साहिल ने मीडिया की भूमिका के संतुलित और असंतुलित दोनों पक्षों का चित्रण किया है। उपन्यास में अध्यापक कुंज कुमार पहाड़ी क्षेत्र में नौकरी करता है। वहां रहने के कारण वह पहाड़ी लोगों की समस्याओं को अच्छी तरह जानता है। उनकी समस्याओं को लेख, कहानी आदि के माध्यम से प्रकाशित करवाता है तांकि सरकार उनकी समस्याओं से अवगत हो सकें। लेखक के शब्दों में, "कुंज कुमार को लिखने पढ़ने का शौक भी था उसके लेख, कहानियाँ, कविताएँ अक्सर अखबारों में छपते। वह गाँव की समस्याओं के बारे में भी अखबार में लिखकर लोगों की आवाज प्रशासन और सरकार तक पहुंचाता।"[7] इस तरह मीडिया के माध्यम से लोगों की समस्याओं को सरकार तक पहुंचाया जाता है। वर्तमान समय में हम अपनी किसी भी तरह की परेशानी को मीडिया के माध्यम से सांझा कर सकते हैं। आधुनिक समय में मीडिया की भूमिका केवल सूचना देना ही नहीं, बल्कि समाज को सही दिशा दिखाना भी है। आज मीडिया ज्यादातर खबरों के असली तथ्य जाने बिना उन्हें अपनी ओर से अन्य पहलू जोड़कर पेश कर रहा है व लोगों को भ्रमित कर रहा है। उपन्यास में सिपाही जगदीश मास्टर कुंज पर दलित लड़की से छेड़छाड़ का झूठा आरोप लगाता हैं। मीडिया मे इस बात की पूरी सच्चाई जाने बिना सभी समाचार पत्रों में इस घटना को प्रकाशित किया जाता है। लेखक के शब्दों में, "मास्टर कुंज कुमार के खिलाफ सभी अखबारों ने बड़ी–बड़ी सुर्खियों वाली खबरें प्रकाशित की थी। टी.वी के सभी चैनलों पर यही स्टोरी नमक मिर्च लगाकर पेश की जा रही थी।.....सभी के मनों में मास्टर कुंज कुमार के खिलाफ रोष और घृणा भरने का काम मीडिया कर रहा था।"[8] इस तरह हम देखते हैं कि झूठी टी.आर.पी और व्यूज के चक्कर में मीडिया बिना पूरी जांच–पड़ताल किए खबरों को प्रकाशित कर लोगों को गुमराह कर रहा है। जबकि मीडिया का काम सिर्फ खबर देना नहीं, बल्कि सच और झूठ में फर्क दिखाकर लोगों को जागरूक करना होता है। मीडिया की महत्ता धर्मपाल साहिल ने इस उपन्यास में भिन्न–भिन्न घटनाओं के माध्यम से प्रस्तुत की है।

निष्कर्ष –

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि धर्मपाल साहिल ने अपने उपन्यासों में मीडिया की भूमिका को सटीक ढंग से वर्णित किया है। मीडिया केवल सूचना देने का साधन नहीं है बल्कि यह लोकतंत्र के 'चौथे स्तंभ' के रूप में कार्य कर रहा है। मीडिया हमारे आस–पास, समाज, देश–विदेश में चल रही घटनाओं को प्रस्तुत कर लोगों को जागरूक करता है। मीडिया समाज में फैली बुराइयों, कुरीतियों को समाप्त करने में एक शिक्षक की भूमिका

निभाता है। वर्तमान समय में मीडिया की भूमिका थोड़ा चिंताजनक विषय है। आज टी.आर.पी., ब्यूज के चक्कर में कुछ लोग मीडिया की संतुलित भूमिका के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। कुछ टी.वी. चैनल, पत्रकार राजनीतिक लोगों की कठपुतली बन चुके हैं। हमें ऐसी पत्रकारिता से दूर रहना चाहिए। मीडिया की यह भूमिका है कि वह किसी भी खबर को सिर्फ टी.आर.पी. के लिए प्रस्तुत न करें बल्कि कोई भी खबर प्रस्तुत करने से पहले उसके तथ्यों की जांच पड़ताल करें ताकि लोगों तक सही जानकारी मिले। मीडिया सरकार और जनता के बीच संचार का माध्यम बनता हैं। वर्तमान समय में 'फेक न्यूज' और 'पेड ब्यूज' के कारण मीडिया की विश्वसनीयता पर सवाल उठ रहे हैं। अतः हम कह सकते हैं कि मीडिया एक 'दोधारी तलवार' है। यदि यह अपना कार्य निष्पक्ष, स्वतंत्र और जिम्मेदार रह कर करें तो राष्ट्र के निर्माण में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका मीडिया की होगी परंतु यदि यह स्वार्थ, राजनीतिक लोगों के हाथों की कठपुतली बनाकर कार्य करें तो यह अत्यंत चिंता का विषय है। इससे समाज में भ्रम और विभाजन पैदा हो सकता है। एक स्वस्थ लोकतंत्र के लिए मीडिया का स्वतंत्र और नैतिक होना अनिवार्य है। धर्मपाल साहिल ने अपने उपन्यासों में मीडिया की भूमिका के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्षों को गहन रूप से चित्रित किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. धर्मपाल साहिल, समझौता एक्सप्रेस, शैवाल प्रकाशन–गोरखपुर, प्रथम संस्करण 2005, पृ. 31
2. धर्मपाल साहिल, बेटी हूँ न!, उड़ान पब्लिकेशंस–मानसा, प्रथम संस्करण 2007, पृ. 40
3. धर्मपाल साहिल, खिलने से पहले, अयन प्रकाशन नई–दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010, पृ. 16
4. वहीं, पृ. 5
5. धर्मपाल साहिल, आर्त्तनाद, पंखुड़ी प्रकाशन–होशियारपुर, प्रथम संस्करण 2014, पृ. 25
6. वहीं, पृ. 112
7. धर्मपाल साहिल, मचान, बोधि प्रकाशन–जयपुर, प्रथम संस्करण 2020, पृ. 81
8. वहीं, पृ. 145

parveenbhatia96241210@gmail.com
Phone 6280879441

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2026 Page No. : 175-177

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

उषा प्रियंवदा की कहानियों में अकेलापन

परमजीत कौर

शोधार्थी, हिंदी विभाग,

मोतीराम बाबूराम राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल–263139

प्रस्तावना –

उषा प्रियवंदा हिन्दी कथा साहित्य की महत्वपूर्ण कथाकार है। इन्होंने विभिन्न कहानियों के साथ–साथ उपन्यासों की रचना की है। 1961 में इनका पहला कहानी संग्रह 'फिर बसंत आया' की रचना की है। उषा प्रियंवदा की कहानियों में यथार्थता परिलक्षित है। इनकी कहानियों में बदलते आधुनिक भारतीय समाज में पारिवारिक रिश्तों में बदलाव, अकेलापन, उदासी, नारी अस्मिता जैसी कई महत्वपूर्ण विषयों को अभिव्यक्त किया है।

मुख्य शब्द – कथाकार उषा प्रियंवदा, हिंदी कथा साहित्य, मनुष्य, अकेलापन, उदासी।

उषा प्रियंवदा की कहानियों में सबसे अधिक अकेलापन और उदासी उभरकर आती है। वर्तमान में इस भाग–दौड़ की जिंदगी में व्यक्ति अपनी मित्र, परिचित या परिवार के साथ रहे फिर भी व्यक्ति अपने जीवन में अकेलापन महसूस करता है क्योंकि उसके मन में जो वर्तमान परिस्थितियों से जो गुजरा है वह उन परिस्थितियों से बाहर नहीं निकल पाता है। वह व्यक्ति अकेलेपन और उदास रहने लगता है।

उषा प्रियंवदा की कुछ ऐसी कहानियाँ है जिसमें सबसे बड़ी चुनौती अकेलापन की समस्या जो या तो परिस्थितियों ने खड़ी की है या व्यक्ति ने स्वयं चाहा है। इस समस्या को उनकी कुछ प्रमुख कहानियों में देखा जा सकता है।

'वापसी' कहानी में पात्र गजाधर बाबू पैंतीस साल की नौकरी से रिटायर होकर घर लौटता है। गजाधर बाबू के प्रति उनके परिवार का व्यवहार को देखकर गजाधर बाबू को अकेले कर दिया। गजाधर बाबू सोचते है कि अपने परिवार के साथ खुशी–खुशी जीवन–यापन करेंगे लेकिन उनके परिवार वालों को उनकी उपस्थिति खटकती रहती है। ''गजाधर बाबू की पत्नी सीधे चौके में चली गयी। बची हुई मठरियों को कटोरदान में रखकर अपने कमरे में लायीं और कनस्तरों के पास रख दिया, फिर बाहर आकर कहा– ''अरे नरेन्द्र, बाबू जी की चारपाई कमरे से निकाल दे। उसमें चलने तक की जगह नहीं है।''[1] गजाधर बाबू अपनी जिंदगी में फिर अकेलेपन की दुनिया में वापस चले जाते है यहाँ से वापस लौटे थे।

'नींद' कहानी की नायिका अपने पति से अलग हो जाने का दर्द है। वह विदेश में अपने पति के साथ आकर रहती है। लेकिन दोनों अलग हो जाते है। उसे अकेलापन बहुत 'परेशान' करता है वह उससे डरती है।

मैं बहुत कम चीजों से डरती हूँ– न रोग से, न ठंड से, डरती हूं तो बस एक लम्बी, अधेरी, अँधेरी रात के अकेलपन से। और उसके त्राण के लिए ही इधर–उधर भटकती हूँ।''[2]

'पूर्ति' कहानी में नायिका तारा अविवाहित है। कुरूपता के कारण ही वह अपने जीवन में अकेलेपन का जीवन व्यतीत करती है। वह कहती है। कि ''मुझे तो कुछ भी न मिला न रूप न सुख''[3] तारा आर्थिक रूप से स्वतंत्र होते हुए भी प्रेम के अभाव के कारण जीवन में अकेलेपन से ग्रसित है।

'मोहबन्ध' कहानी का राजन अपनी पत्नी नीलू की व्यस्तता के कारण खुद को नितान्त अकेला पाता है–''नीलू इतनी व्यस्त रहने लगी है कि मैं अक्सर बिल्कुल अकेला रह जाता हूँ। मुझे लगता ही नहीं कि घर में मेरी पत्नी भी हैं।''[4]

'चाँद चलता रहाँ' की नायिका रोहिनी अपने जीवन में बहुत अकेली है। वह अपने जीवन को वह अपने शब्दों में व्यक्त करती है–''यह सब–प्याले, राख–कुशन, कितने उदास दिखते हैं। लोग आये, कुछ देर इकट्ठे हुए, हँसी–मजाक–बात–चीत और चले गये। घर वैसा ही फिर रह गया, अकेला, सुनसान, एक कब्र की तरह तुम हो, तो कुछ कह भी लूँगी, नहीं तो कोई दो शब्द बोलने वाला भी नहीं, ओ गॉड, कितनी अकेली हूँ मैं।''[5]

'छुट्टी का दिन' कहानी बड़ी ही मर्म स्पर्शी कहानी है। इस कहानी की नायिका माया अपने जीवन में अकेलापन व्यतीत करना पड़ता है। ''छुट्टी का दिन माया के लिए पहाड़–सा होता था। भाई बहनों के बीच रहते हुए वह समझ न पाती थी इतवार कब आया और कब चला गया। सप्ताह में छुट्टी का एक दिन बिताना माया के लिए इतना उबाऊँ होता है कि उसे खुद अपने लिए जैसे अनजान अजनबी बना देता हैं। रोजमर्रा की सहज क्रियाएँ विलंबित लय के साथ चलने लगती हैं। अकेलेपन से बचने के लिए वह अकेले सिनेमा देखने पहुँच जाती है जबकि उसे अभी तक नितांत अकेले बैठकर सिनेमा देखने की आदत नहीं हुई थी।''[6]

'चाँदनी में बर्फ' कहानी में हेम अमेरिकन लड़की मेरी उर्फ मीरा से विवाह कर अमेरिका में बस जाता हैं। हेम की पत्नी चाहे ही अमेरिकन है लेकिन वह एक भारतीय पति है। हेम को मेरी का अधिक स्वतन्त्रता देना और उसका पर–पुरूषों से अधिक सम्बंध रखना हेम को पसंद नहीं है। अमेरिकन पत्नी उसकी अपेक्षाओं पर खरी नहीं उतरती और हेम को अकेलापन घेरने लगता है। दोनों के संबंधों में अलगाव आता है। हेम की पूर्व प्रेमिका कल्याणी को वर्तमान में फिर से प्रेमिका के रूप में था वह अपने अकेलेपन में एक सहारा खोजना चाहता हैं। हेम को लगता है कि''यदि कल्याणी का सान्निध्य एक बार फिर प्राप्त हो तो वह अपने को इतना पंगु, घायल, असहाय नहीं महसूस करेगा। कुछ समय से जो मूर्च्छित जड़ता, अभेद्य उदासी हृदय पर जीम है, वह कम होगी।''[7]

'संबंध' कहानी की नायिका श्यामलता अपने जीवन में बहुत अकेली है। सर्जन और उसके बीच सहज संबंध है। ''सर्जन हमेशा चाहता था कि उसके पास ही एक छोटे से आधुनिक फ्लैट में श्यामलता रहे, श्यामलता बाहर आए–जाए, घूमे–फिरे, लोगों से मिले–जुले, पर वह कुछ नहीं चाहती है। अकेली रहती है, और बाहरी दुनिया से बहुत कम मिलती जुलती है।''[8]

'ट्रिप' कहानी की नायिका स्वंय को बहुत अकेला महसूस करती है। इस कारण वह नशा करने लगती है। ''बच्चों के चले जाने पर वह कितनी अकेली रह गयी थी। शायद पति ठीक ही कहते थे। जिंदगी उन रोमैंटिक कहानियों की तरह नहीं हो सकती। हर शुरूआत कहानी की तरह होती थी, एक उच्छवासित वेग और

अन्त प्रायः एक अनरोमैंटिक ढंग से।''[9]

निष्कर्ष –

उषा प्रियंवदा की कहानियों में अकेलेपन का अंतिम यह निष्कर्ष निकलता है कि आधुनिकता, परिवार के संबंधों में अलगाव, महानगरीय संस्कृति, पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव और बदलती जीवन शैली ने मनुष्य के बीच के संवाद और संवेदना को खत्म कर दिया है। उषा प्रियंवदा का कथा साहित्य यह अभिव्यक्त करता है कि आज का मनुष्य विभिन्न रिश्तों के साथ रहते हुए भी आंतरिक रूप से अकेला है। यह अकेलापन मनुष्य के जीवन में अनिवार्य कर चुका है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची –

1. जिंदगी और गुलाब के फूल (वापसी–कहानी), उषा प्रियंवदा, वाणी प्रकाशन ग्रुप 4595, 21–ए दरियागंज, नयी दिल्ली, पृ0 सं0–104
2. कितना बड़ा झूठ (नींद–कहानी), राजकमल प्रकाशन 2010, पृ0 सं0–13
3. जिंदगी और गुलाब के फूल (पूर्ति–कहानी) उषा प्रियंवदा, वाणी प्रकाशन ग्रुप 4695, 21–दरियागंज, नयी दिल्ली, पृ0 सं0–57
4. वही (मोहबन्ध–कहानी), पृ0 सं0–25
5. वही (चाँद चलता रहा कहानी), पृ0 सं0–82
6. वही (छुट्टी का दिन–कहानी), पृ0 सं0–39
7. सम्पूर्ण कहानियाँ (चाँदनी में बर्फ–कहानी), उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन प्रा0 लि0 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ0 सं0–299
8. कितना बड़ा झूठ (सम्बन्ध–कहानी), उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन प्रा0 लि0 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ0 सं0–10
9. वही (ट्रिप–कहानी), पृ0 सं0–49

परमजीत कौर
सुभाष नगर वार्ड न0–6, निकट–भोटिया पड़ाव,
हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड पिन0–263139
फोन0–6395433063

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2026 Page No. : 178-183

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

वैश्वीकरण के दौर में अनामिका का कथा–साहित्य : स्त्री–अस्मिता, सामाजिक परिवर्तन और समकालीन यथार्थ

वंदना चौहान, शोधार्थी
डॉ. रीना अग्रवाल, शोध निर्देशिका
फोनिक्स यूनिवर्सिटी, रुड़की।

सारांश :

आज वैश्वीकरण आधुनिक समाज की संरचना को प्रभावित करने में सक्रिय भूमिका निभा रहा है। इसके प्रभाव को शिक्षा, रोजगार, संचार, बाजार, परिवार, सामाजिक संबंध तथा सांस्कृतिक जीवन में देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त स्त्री के जीवन में शिक्षा और रोजगार के विस्तार, आर्थिक आत्मनिर्भरता तथा सार्वजनिक जीवन में बढ़ती सहभागिता ने उसकी सामाजिक भूमिका को परिवर्तित अन्य दिया है। जिसके परिणाम स्वरूप पितृसत्तात्मक सोच, लैंगिक असमानता, और सामाजिक रूढ़ियाँ आज भी स्त्री के सामने चुनौती बनी हुई हैं।

अनामिका का कथा–साहित्य इसी परिवर्तित सामाजिक संदर्भ में विशेष महत्त्व रखता है। उनके कथा–साहित्य में अभिव्यक्त स्त्री केवल पीड़ित या शोषित पात्र नहीं है, बल्कि वह अपने अस्तित्व, अधिकार, आत्मसम्मान और स्वतंत्र पहचान के लिए प्रश्न उठाने वाली चेतन व्यक्तित्व के रूप में सामने आती है। अनामिका द्वारा रचित 'दस द्वारे का पिंजरा', 'अवांतर कथा', 'तिनका तिनके के पास' जैसी रचनाओं में उन्होंने स्त्री जीवन के साथ–साथ सामाजिक संरचना, पारिवारिक संबंधों और बदलती मानसिकता को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

प्रस्तुत शोध–पत्र में वैश्वीकरण के संदर्भ में अनामिका के कथा–साहित्य में स्त्री–अस्मिता, सामाजिक परिवर्तन, परंपरा और आधुनिकता तथा समकालीन यथार्थ का विश्लेषण किया गया है।

कूट–शब्द : वैश्वीकरण, अनामिका का कथा–साहित्य, स्त्री–अस्मिता, स्त्री–विमर्श, सामाजिक परिवर्तन, समकालीन यथार्थ।

प्रस्तावना :

आधुनिक समाज की पृष्ठभूमि पर दृष्टि डालें तो ज्ञात होता है कि विज्ञान और तकनीक के विकास, सूचना क्रांति, बाजार के विस्तार तथा वैश्विक संपर्क ने व्यक्ति के जीवन को पहले की अपेक्षा अधिक गतिशील बनाया है। वैश्वीकरण ने भौगोलिक सीमाओं के साथ–साथ सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश को भी प्रभावित किया है। जिसके परिणामस्वरूप मानव जीवन–शैली, पारिवारिक संबंध, रोजगार की प्रकृति, शिक्षा और सामाजिक चेतना में परिवर्तन आया है।

इन परिवर्तनों का प्रभाव स्त्री के जीवन पर विशेष रूप से दिखाई देता है। आधुनिक शिक्षा ने जहां स्त्री के ज्ञान और चेतना का विस्तार किया है तो वहीं रोजगार ने आर्थिक, आत्मनिर्भरता के अवसर प्रदान किए हैं। जिसके फलस्वरूप सामाजिक जीवन में स्त्री से जुड़ी अनेक पारंपरिक धारणाएँ अभी भी विद्यमान हैं। इस कारण आधुनिक स्त्री एक ओर स्वतंत्रता और आत्मनिर्णय की आकांक्षा रखती है, वहीं दूसरी ओर परिवार और समाज की अपेक्षाओं के बीच संतुलन स्थापित करने के संघर्ष से गुजरती है।

हिंदी कथा–साहित्य ने स्त्री जीवन के इस परिवर्तनशील स्वरूप को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। अनामिका समकालीन हिंदी साहित्य की सशक्त कवयित्री हैं जिनके साहित्य में स्त्री–अनुभव को सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक संदर्भों से जोड़कर देखा गया है। उनके कथा–साहित्य में स्त्री की व्यक्तिगत पीड़ा के साथ उसकी चेतना, संघर्ष और आत्मसम्मान का प्रश्न भी प्रमुख है।

वैश्वीकरण और बदलता सामाजिक परिवेश :

वैश्वीकरण ने भारतीय समाज को नवीन रूप प्रदान करने का प्रयास किया हैं। जिससे शिक्षा और रोजगार के नए क्षेत्र खुले हैं। तकनीकी माध्यमों ने संवाद को व्यापक बनाया है। स्त्री के लिए सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश के अवसर बढ़े हैं। किंतु इन परिवर्तनों को केवल मुक्ति के रूप में देखना पर्याप्त नहीं है। बाजारवाद और उपभोक्तावाद ने जीवन में प्रतिस्पर्धा तथा प्रदर्शन की प्रवृत्ति को भी बढ़ावा दिया है।

समकालीन स्त्री के सामने यह दोहरी चुनौती है। उसे एक ओर शिक्षा, रोजगार और आत्मनिर्भरता के अवसर प्राप्त हुए हैं, दूसरी ओर परिवार और समाज की पारंपरिक अपेक्षाएँ भी उसके साथ जुड़ी हुई हैं। अनामिका का कथा–साहित्य इसी अंतर्विरोध को साहित्यिक संवेदना प्रदान करता है।

उनके पात्रों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि स्त्री की स्वतंत्रता केवल आर्थिक स्वतंत्रता नहीं है। वास्तविक स्वतंत्रता उसके विचार, निर्णय, आत्मसम्मान और व्यक्तित्व की स्वतंत्रता से जुड़ी है।

'दस द्वारे का पिंजरा' उपन्यास की नायिका रमाबाई स्त्री जीवन की सेवाधमिता को व्यक्त करते हुए कहती हैं– 'मानव मन से प्रेम करने की कला है धर्म, मनुष्य काला हो या गोरा, पीला हो या लाल, खेत हो या गुलाबी आवरणों के पार देखना–देखकर पहचाना और सबके जल तत्व, अग्नि तत्व, पवन तत्व, आकाश तत्व, माही तत्व से एका बिठाना ही यही धर्म है।' और यही ईश्वर सेवा।[1]

अनामिका के कथा-साहित्य में स्त्री-अस्मिता :

अनामिका के कथा–साहित्य का प्रमुख आधार स्त्री–अस्मिता है। उनकी स्त्री पात्र अपने अस्तित्व को केवल पत्नी, माँ, बहन या बेटी की पारंपरिक भूमिकाओं तक सीमित नहीं मानती। वह स्वयं को एक स्वतंत्र मनुष्य के रूप में स्थापित करने की आकांक्षा रखती है।

दस द्वारे का पिंजरा इस संदर्भ में विशेष महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमें स्त्री–मुक्ति के प्रश्न को व्यापक ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भ में देखा गया है। उपन्यास के माध्यम से स्त्री की शिक्षा, स्वतंत्रता, सामाजिक पहचान तथा पितृसत्तात्मक संरचनाओं से संघर्ष जैसे प्रश्न सामने आते हैं।

इस कृति की विशेषता यह है कि लेखिका स्त्री की समस्याओं को केवल वर्तमान तक सीमित नहीं रखतीं। ऐतिहासिक संदर्भों के माध्यम से यह संकेत मिलता है कि स्त्री की स्वतंत्रता और समानता का संघर्ष दीर्घकालीन सामाजिक प्रक्रिया है। इस प्रकार अतीत और वर्तमान के बीच संवाद स्थापित होता है।

'मन माझने की जरूरत' के अधिकांश लेखो में उनके इसी व्यक्तित्व का आधार बार–बार उभरता है पहले वर्ग का जवाब अपने शिक्षक लेख में देती हैं। 'आज खाने को हर जगह स्त्रियां दिख रही है टेलीविजन पर पत्रिकाओं में चुनाव पर, मीटिंग में और हर जगह हंसते हुए दिख रही है पर मुझे तो लगता है की हंसी ने जमाने का घूंघट है उनका असली दर्द अभी चेहरा ढके ही पड़ा है।'[2]

परंपरा और आधुनिकता :

अनामिका के कथा–साहित्य में परंपरा और आधुनिकता का संबंध विरोधात्मक होने के साथ–साथ संवादात्मक भी है। वे परंपरा को पूरी तरह नकारने के बजाय उसके भीतर मौजूद मानवीय मूल्यों और स्त्री–विरोधी संरचनाओं में अंतर करती हैं।

वैश्वीकरण के युग में आधुनिकता का अर्थ केवल पश्चिमी जीवन–शैली को अपनाना नहीं है। आधुनिकता का वास्तविक अर्थ तर्कशीलता, समानता, स्वतंत्र चिंतन और मानवीय गरिमा की स्वीकृति से है। अनामिका के कथा–साहित्य में यही दृष्टि दिखाई देती है।

उनकी स्त्री पात्र परंपरा से संवाद करती है, लेकिन उन परंपराओं को स्वीकार नहीं करती जो उसके अस्तित्व और स्वतंत्रता को सीमित करती हैं। इस प्रकार उनका कथा–साहित्य आधुनिकता को भारतीय सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ में समझने का अवसर प्रदान करता है।

पिछले दो सौ वर्षों में, स्त्रियों ने बहुत से क्षेत्रो में काफी तरक्की की है। कुछ औरतो के लिए कुछ सामाजिक बंधन भी कम हुए, कुछ कानून भी बदले काफी हद तक औरतों को बराबरी का दर्जा भी दिया। इन सबके बावजूद आज भी लगभग हर देश में स्त्रियों को ना समान अधिकार है ना पूरी आजादी। इसी का वर्णन करते हुए अर्चना वर्मा लिखती है – 'समाज यूं ही नहीं बदला करता –वचनों, प्रवचनों , विवादों और विचारधाराओं से। उनको बदलने के लिए महामारी, अकाल, भूकंप, बाढ़ जैसी विराट पैमाने की कोई प्राकृतिक आपदा चाहिए या फिर युद्ध जैसी मानव रचित दुर्घटना क्योंकि ऐसे ही समय में मनुष्य की चेतना सामुदायिक रूप से इतनी तत्पर, सतर्क और संबंध होती है कि विचारों को शब्दों की घेरे से बाहर निकलकर कर्म में परिवर्तित कर दे दे।'[3]

वैश्वीकरण का परिवार और स्त्री की बदलती भूमिका पर प्रभाव :

वैश्वीकरण ने परिवार की संरचना और कार्यप्रणाली को भी प्रभावित किया है। आधुनिक समाज में संयुक्त परिवारों की जगह एकाकी परिवारों का विस्तार, स्त्री की रोजगार में बढ़ती भागीदारी और पति–पत्नी के संबंधों में परिवर्तन आधुनिक समाज की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

अनामिका के कथा–साहित्य में परिवार केवल भावनात्मक संस्था नहीं है, बल्कि सामाजिक शक्ति–संबंधों का भी क्षेत्र है। परिवार में स्त्री की भूमिका, उसके श्रम और उसकी इच्छाओं को किस प्रकार देखा जाता है, यह प्रश्न उनके कथा–साहित्य में महत्त्वपूर्ण बनता है।

लेखिका स्त्री के घरेलू जीवन को निजी विषय मानकर उससे अलग नहीं करतीं, बल्कि घरेलू अनुभवों को व्यापक सामाजिक संरचना से जोड़ती हैं। इस दृष्टि से उनका कथा–साहित्य परिवार के भीतर मौजूद लैंगिक संबंधों को समझने का महत्त्वपूर्ण माध्यम है।

1968 की छात्र सभा में जर्मन मार्क्सवादी स्त्री कार्यकर्ता हेल्के सेंडर कहती हैं –'स्त्री को पहचान तब मिलेगी जब वह मंच पर अपनी निजी जीवन की समस्याओं की अभिव्यक्ति करें और इसी आधार पर राजनीतिक

रूप से एकबद्ध होकर संघर्ष करें।'[4]

'टोकरी में दिगंत थेरी गाथा.....'

कविता में अपने लय को स्पष्ट करते हुए कवयित्री कहती हैं –

'मैं सारी दुनिया उठा लूंगी माथे पर
अपने ही आंचल की बंधे हुए पगड़ी।'

स्त्री की मौजूदगी समाज के लिए एक महत्वपूर्ण हिस्सा है पर अपने कर्म दायित्व से ही समाज के रिक्त स्थान को पूरा करने का दिमाग उठा ले सकती है।[5]

स्त्री–पुरूष संबंधों के प्रति नवीन दृष्टिकोण का परिचय :

अनामिका के साहित्य में स्त्री–मुक्ति का अर्थ स्त्री और पुरुष के बीच संघर्ष को बढ़ावा देना नहीं है। उनके कथा–साहित्य में संबंधों में समानता, सम्मान और साझेदारी की आवश्यकता सामने आती है।

वैश्वीकरण के दौर में जब स्त्री और पुरुष दोनों शिक्षा तथा रोजगार के क्षेत्र में सक्रिय हैं, तब पारंपरिक लैंगिक भूमिकाओं पर पुनर्विचार आवश्यक हो जाता है। अनामिका की दृष्टि में स्त्री को अपने जीवन के निर्णयों में समान अधिकार मिलना चाहिए।

इस प्रकार उनके कथा–साहित्य में स्त्री–पुरुष संबंधों की नई व्याख्या दिखाई देती है, जिसमें प्रभुत्व के स्थान पर संवाद और असमानता के स्थान पर समानता की आकांक्षा प्रमुख है।

सामाजिक यथार्थ और मनोवैज्ञानिक संवेदना :

अनामिका के कथा–साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि सामाजिक समस्याओं के साथ पात्रों के मानसिक भावनाओं को भी पर्याप्त महत्त्व मिलता है। सामाजिक परिवर्तन व्यक्ति की मानसिकता को प्रभावित करता है और यही परिवर्तन कथा के भीतर मनोवैज्ञानिक स्तर पर अभिव्यक्त होता है।

आधुनिक स्त्री के सामने स्वतंत्रता के अवसर हैं, लेकिन उसके साथ अकेलापन, संबंधों की जटिलता, सामाजिक अपेक्षाएँ और आत्मपहचान का प्रश्न भी उपस्थित है। अनामिका इन अनुभवों को संवेदनात्मक रूप में प्रस्तुत करती हैं।

इस कारण उनका कथा–साहित्य केवल सामाजिक दस्तावेज नहीं रह जाता, बल्कि व्यक्ति के भीतर चलने वाले द्वंद्व का भी साहित्य बन जाता है।

सन 1984 में पत्राचार शैली का अनामिका का आधुनिकतम मनोवैज्ञानिक उपन्यास 'मन कृष्ण मन अर्जुन' प्रकाशित हुआ। लेखिका स्त्री मन के उस अभिव्यक्ति को व्यक्त करना चाहती है जो 'पानी की मछलियों से बार–बार फड़कते छूट जाती है वह कहती हैं की स्त्री मन प्रकृति का वह चरित्र है जो शिखा और वसुधा की तरह मन नहीं कृष्ण मन ही अर्जुन बनकर विभ्रम मे पड़े जीवन को उदबोधित करता है।'[6]

पुरुष सत्ता द्वारा मानसिक रूप से स्त्री को गुलाम बनाने की प्रक्रिया आज भी जा रही है इसलिए उसे प्रक्रिया में किस प्रकार अस्भाविक होकर अपना योगदान देती है, जिसमें वह अपने उन रिश्तों में प्रेम के बंधनो को तोड़ती है जो उसके जीवन का अनिवार्य हिस्सा है इतर लिंगी जिसे पितृ समाज द्वारा जीवन का अनिवार्य रूप माना तो समलैंगिकता को हेय। प्रभा खेतान के शब्दों में 'एड्रियन रिच' के अनुसार– 'यह पुरुष सत्ता है, उसकी ताकत है, जो स्त्री पर इतर लिंगी व्यवस्था को आरोपित करती है। इसी व्यवस्था के माध्यम से पुरुष

अपना शारीरिक, आर्थिक और भावात्मक वर्चस्व स्त्री पर लागू करता है। समलैंगिकता को स्त्री के लिए असंभव माना क्योंकि स्त्री कामना की व्याख्या भी पुरुष सत्ता ने अपने अनुसार की है। यानी पुरुष ने अपने उत्तर लिंगी यौन जीवन के अनुभव को स्त्री कामना पर आरोपित किया। सत्ता ने कामना की प्रसंग में स्त्री की इच्छा–अनिच्छा का सवाल ही नहीं उठाया। **'नारीवादी विचारकों द्वारा स्त्री मुक्ति के संघर्ष में मनोविश्लेषण पद्धति को अपनाया गया ताकि समाज की मानसिक संरचना को समझा जा सके'।**[7]

समकालीन संदर्भ में अनामिका की प्रासंगिकता :

आज स्त्री–अस्मिता का प्रश्न पहले की अपेक्षा अधिक व्यापक हो गया है। शिक्षा, रोजगार, डिजिटल माध्यम, सोशल मीडिया, कार्यस्थल, परिवार और व्यक्तिगत स्वतंत्रता ने स्त्री जीवन के नए आयाम बनाए हैं। इन परिस्थितियों में अनामिका का कथा–साहित्य पुनर्पाठ की माँग करता है।

उनकी रचनाओं में स्त्री को केवल समस्या के रूप में नहीं देखा गया है। वह प्रश्न करने वाली, निर्णय लेने वाली और अपनी पहचान निर्मित करने वाली सामाजिक इकाई है। यही दृष्टि उनके कथा–साहित्य को समकालीन बनाती है।

उनकी रचनाओं में सामाजिक परिवर्तन के साथ इतिहास, संस्कृति और परंपरा का संबंध भी दिखाई देता है। इसलिए वैश्वीकरण के दौर में उनकी रचनाएँ भारतीय समाज में हो रहे परिवर्तनों को समझने के लिए उपयोगी साहित्यिक आधार प्रदान करती हैं।

समकालीन स्त्री विषयक चिंतन स्त्री जीवन की समस्याओं एवं दलन के अनुभवों की अभिव्यक्ति करता है। आधुनिक नारीवाद स्त्री संदर्भ में पारंपरिक ज्ञान और दर्शन को चुनौती देता है। 'नारीवाद एक ऐसा विचार है जो कि पुरुष और स्त्री के मध्य असमानता को स्वीकार कर नारी के सबलीकरण की प्रक्रिया को बौद्धिक एवं क्रियात्मक रूप से प्रस्तुत करता है। नारीवाद एक विचारधारा भी है और एक आंदोलन भी नारी के सिद्धांत के अंतर्गत मूल रूप से समानता में सबलीकरण के माध्यम से महिलाओं व पुरुषों के मध्य व्याप्त असमानता को नकारना है।'[8]

'स्त्रीवादी साहित्य स्त्री पुरूष दोनों का लिखा हो सकता है। यह एक ऐसा साहित्य है, जो स्त्री के हितों और स्त्रीवादी राजनीति का पक्षधर होता है।'[9]

निष्कर्ष :

वैश्वीकरण ने भारतीय समाज के स्वरूप में व्यापक परिवर्तन किए हैं। स्त्री के जीवन में शिक्षा, रोजगार और सार्वजनिक सहभागिता के नए अवसर आए हैं, किंतु पितृसत्तात्मक संरचनाएँ और पारंपरिक अपेक्षाएँ अभी भी उसके जीवन को प्रभावित करती हैं। इस द्वंद्व को समझने में समकालीन हिंदी कथा–साहित्य की भूमिका महत्त्वपूर्ण है।

अनामिका का कथा–साहित्य इस संदर्भ में विशिष्ट महत्त्व रखता है। उनके कथा–साहित्य में स्त्री–अस्मिता केवल अधिकारों की माँग नहीं है, बल्कि आत्मसम्मान, आत्मनिर्णय और मानवीय गरिमा की स्थापना का प्रश्न है। दस द्वारे का पिंजरा जैसी कृति में स्त्री–मुक्ति को ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भों से जोड़कर देखा गया है, जबकि अन्य कथा–रचनाओं में आधुनिक जीवन, परिवार, संबंधों और सामाजिक परिवर्तन के विविध पक्षों को अभिव्यक्ति मिली है।

इस प्रकार अनामिका का कथा–साहित्य वैश्वीकरण के दौर में स्त्री की बदलती स्थिति को समझने का महत्त्वपूर्ण माध्यम है। उनकी रचनाएँ परंपरा और आधुनिकता के बीच संवाद स्थापित करते हुए यह संकेत देती हैं कि सामाजिक परिवर्तन का वास्तविक अर्थ तभी सार्थक होगा जब स्त्री को समानता, सम्मान और आत्मनिर्णय का अधिकार प्राप्त हो। यही कारण है कि आधुनिक हिंदी साहित्य में अनामिका के कथा–साहित्य की प्रासंगिकता वर्तमान समय में भी बनी हुई है।

जब स्त्री शोषण से बचना चाहती है तथा अपने अधिकारों की मांग करने लगती है तब उसकी भाषा तथा भाव आक्रोश एवं विद्रोह से भरे होते हैं –

'एक दिन हमने कहा हम भी इंसान हैं –
हमे कायदे से पढ़ो एक–एक अक्षर
जैसा पड़ा होगा बी.ए.के बाद नौकरी का पहला विज्ञान।'[10]

राजकिशोर कहते हैं कि लेखिका का आशय है–

'नारीवाद को नयी नारी ही नहीं, नया पुरूष भी चाहिए।'[11]

संदर्भ–सूची :

1. अनामिका–दस द्वारे का पिंजरा, पृष्ठ– 63
2. अनामिका– मन माझने की जरूरत, पृष्ठ– 405
3. जॉन स्टुवर्ट मिल, स्त्री और पराधीनता, पृष्ठ–25
4. साधना आर्या, निवेदिता मेनन, नारीवादी स्त्री संघर्ष और मुद्दे, पृष्ठ 27
5. अनामिका– 'टोकरी में दिगंत' फलैप, पृष्ठ –54
6. अनामिका–मन कृष्णा मन अर्जुन, आपसी बातें, पृष्ठ –4
7. प्रभा खेतान–स्त्री मनुष्य अपनी जगह लेख, पृष्ठ– 187
8. दुष्यंत कुमार– 'स्त्रियां पर्दे से प्रजातंत्र तक', पृष्ठ –15
9. जगदीश चतुर्वेदी– 'स्त्रीवादी साहित्य विमर्श', अनामिका पब्लिकेशन और डिस्ट्रीब्यूटर, न्यू दिल्ली, पृष्ठ –6 संस्करण –2000
10. अनामिका –'खुदरी हथेलियां', 2005
11. जनसत्ता, जून 2008, राज किशोर, पृष्ठ –22

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2026 Page No. : 184-187

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

रमेशचन्द्र शाह के कथा–साहित्य में ग्रामीण एवं सामाजिक परिवेश

पीयूष कुमार, शोधार्थी,
डॉ. विष्णु प्रसाद शुक्ल, शोध–निर्देशक, सहायक आचार्य एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग, नेहरू ग्राम भारतीय मानित विश्वविद्यालय प्रयागराज, उ0प्र0

शोध-सार –

रमेशचन्द्र के कथा–साहित्य में ग्रामीण एवं सामाजिक परिवेश केवल घटनाओं का मंचन नहीं है, बल्कि वह भारतीय सामाज, संस्कृति और मानवीय जीवन–मूल्यों का सशक्त प्रतिनिधि है। उनके उपन्यासों और कहानियों में गाँव का जीवन अपनी सम्पूर्ण वास्तविकता, संघर्ष, सवेदना और सांस्कृतिक विविधता के साथ उपस्थित होता है। वे ग्रामीण समाज की अच्छाइयों के साथ–साथ उसकी विसंगतियों और चुनौतियों को भी निष्पक्ष दृष्टि से प्रस्तुत करते हैं। इस कारण उनका साहित्य ग्रामीण जीवन का प्रमाणिक दस्तावेज है।

कथा–साहित्य में ग्रामीण एवं सामाजिक परिवेश के साथ–साथ पुरानी परम्पराओं और उनके पात्रों के व्यक्तित्व, विकास उनकी स्मृति और उनके जीवन संघर्षो को समझने का आधार होता है। गाँधी जी ने कहा था– देहात की ओर चलो सही हिन्दुस्तान देहातों (गाँवों) में बसा है। यह बात सौ फीसदी सत्य है किन्तु बड़े पदों पर आसीन जिम्मेदार लोग चाहे वह राजनेता हो या अधिकारी सभी ने गाँवों की ओर उपेक्षा भाव से देखा एवं राजनैतिक रोटियाँ सेकने का प्रयास किया। शहरों में लोगों का एक–दूसरे के नजदीक होने पर भी वह आत्मीय लगाव नहीं हो पाता जो लगाव गावों में लोग आते–जाते स्वतः एक दूसरे से जय राम भैया कह लेते हैं।

एक तरफ ग्रामीण कृषको की अदम्य जिजीविषा को उकेरा गया है। इसी प्रकार पास–पड़ोस के सभी लोग एक–दूसरे के लिए सुख–दुःख के साथी होते है, यही भाव है जो शाह जी को ग्रामीण जन–जीवन से जोड़े रखती है। वे गाँव के विकास के लिए एक सूत्र बताते हैं कि ना होने वाली चीजें शिक्षा होने वाली चीजे गंदी राजनीति न हो तो गाँव के विकास का पहिया स्वतः ही चल पड़ेगा। आज की आधुनिकता वाली सोच जो शहरों में हावी है इस पर शाह जी का मानना है कि गाँव छोड़कर गये लोग ही गाँव लौटकर गाँव की प्रगति कर सकते हैं।

पद्मश्री शाह जी का जीवनानुभव बहुत व्यापक है। इनके कथा–साहित्य में गाँव की जीवंतता बनी हुई है। वे अपने कथा–साहित्य के माध्यम से गाँव के उन अनछुए पहलुओं को पाठक वर्ग के बीच पुरी तटस्थता के साथ प्रस्तुत करते हैं जिनमें गांवों में होने वाले विभिन्न क्रिया कलापो को पुरी यथार्थता के साथ प्रदर्शित करते है, जिनमें गाँव में होने वाले सामाजिक सम्बन्धो आर्थिक तथा राजनैतिक, धार्मिक आडम्बरों, स्त्रियों की दशा समाज में व्याप्त कुरितियों पर करारा प्रहार करते है।

बीज शब्द –

रमेशचन्द्र शाह कथा–साहित्य, ग्रामीण परिवेश, सामाजिक चेतना, ग्राम्य जीवन, छूआ–छूत, मानवीय मूल्य, लोक संस्कृति, समाज में मानवीय मूल्य, व्याप्त भ्रष्टाचार।

मूल आलेख –

रमेशचन्द्र शाह की ख्याति निबन्धकार एवं समालोचक के रूप में भी है। उनकी रचनाएं अंग्रेजी तथा हिन्दीतर भारतीय भाषाओं में अनुदित होती रही है। कुमाऊँ के अन्य समकालीन कथाकारों की भांति ग्रामीण सामाजिक कथा साहित्य भी लिखे है। इनकी आचंलिक जीवन संदर्भो में कस्बाई मनोवृत पर आधारित कथा–साहित्य की संख्या अधिक है। उत्तराखण्ड अल्मोड़ा और उसके आस–पास के गाँवो की माटी की सौंधी खुशबू उनके साहित्य में बिखरी पड़ी है जो अंकुर गाँव की मिट्टी से निकला और उसी की सुंगध और हवा से पल्लवित पुष्पित होकर इतनी विशाल साहित्य वट वृक्ष की भॉति शीर्ष पर पहुँचा।

शाह जी ने ग्रामीणा अंचल के सामाजिक स्नेह सम्बन्ध तथा अतिथि सत्कार आदि का भी चित्रण किया है। पर्वतीय अंचल के निवासी प्रायः सरल भोले गाम्भीर्य से युक्त तथा संवेदनशील होते है। उनमें श्रमशीलता उदारता तथा सादगी होती है। गांवों में एक व्यक्ति पर विपदा पड़ने पर पूरा गाँव उसका साथ देता है।

शाह जी के अधिकतर कथा–साहित्य ग्रामीण सामाजिक जीवन पर ही आधारित है। आज गाँवो में अनेक परिवर्तन देखने को मिल रहे है। पुनर्वास उपन्यास में शाह जी ने बदलते हुए अपनी जन्मभूमि आलमपुर का चित्रण किया है ''मेरा यह आलमपुर पहले से तीगुना हो ही गया है। अपराध का यहां नामोनिशान नहीं था वह भी तेजी से पनपने लगा है। पानी के कारण नालियाँ दुर्गंध फैला रही है जिससे मच्छर भी पैदा होने लगे है''[1]। शाह जी के उपन्यासों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्णो का भी चित्रण मिलता है। साथ ही इनके आपसी भेद–भाव को भी चित्रित किया है।

बौद्धिकता के कारण धर्म की जो हानि हुई है तथा अपनी मूल ग्रामीण परिवेश से लोगों का कटना इत्यादि के प्रति भी लेखन ने सजगता लाने का प्रयास किया है। प्रो0 नाथ और शोभना के मध्य बात को लेखक ने ऐसे प्रस्तुत किया है ''वैसे तो अब तुम भी पूरी पहाड़ी कहाँ रही? मेरी तरह ही आधी पहाड़ी, आधी मैदानी। नहीं क्या? उसने नाराजगी का अभिनय किया–वाह! ऐसे कैसे? क्यों? उन्होंने अपनी समझ से छावनी वाली सबसे कम चालू सड़क की ओर बढ़ते हुए कहा मेरी तरह क्या तुमने भी मैदान से शादी नहीं की''[2]। इसमें कुमाउनी लोक संस्कृति तथा ग्रामीण जीवन को विशेष महत्व दिया गया है।

गोबर गणेश–गोबर गणेश उपन्यास में ''नारायण डूम है''[3] वाला शीर्षक इसका पुख्ता उदाहरण है। इन वर्णों के लोग आपस में ऊँच–नीच की भावना से ग्रस्त है। अछूत सबसे निम्न उपेक्षित तथा समाज का दयनीय तबका है। ''वो डूम है चन्दू बोला था, मास्साब ब्राह्मण हैं। डूम को कैसे छुएँगे?''[4] अपने उपन्यासों में जातिगत शब्दों का प्रयोग कर पर्वतीय समाज के यथार्थ को उजागर करने का प्रयास किया है। समग्रता उपन्यास गोबर–गणेश 'विनायक' नामक बालक की मनोस्थिति को उद्घाटित करता है। बालक निर्धनता एवं पारिवारिक बोझ के कारण स्वतंत्र रूप ना शिक्षित हो पाता है और ना ही स्वतंत्र निर्णय ले पाता है। वह परिस्थिति के समक्ष लाचार बन कर रह जाता है। इसमें समाज की विद्रूपताओं, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, व्यक्ति की कुण्ठित मानसिक स्थिति इत्यादि का चित्रण किया गया है।

इनकी कहानी 'रामरिख बाबू' मध्यवर्गीय जीवन, सामाजिक व्यंग्य और सम्बन्धों की बारीक पड़ताल करती है। जो शाह जी के लेखन की विशेषता है। कहानी का मुख्य पात्र रामरिख बाबू एक सरल, सज्जन और कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति है। वह अपने जीवन में सत्य, नैतिकता और ईमानदारी को सर्वोपरि मानते है। कहानी में रामरिख बाबू जो क्लर्क है आधुनिक बदलते समाज में संघर्ष करता है। कहानी में हास्य, बिडम्बना और दैनिक जीवन की छोटी–छोटी घटनाओं को उकेरा गया है। कहानी में जनता–दल की सरकार को बढ़ती महंगाई के कारण कांग्रेस की सरकार को बेहतर बताया गया है। इस कहानी में रामरिख बाबू ने एक कुजड़िन (सब्जी बेचने वाली) की भाव भंगिमा को सब्जियों के माध्यम से व्यक्त किया है ''माथे पर चौड़ी बिंदी, पान रचे होंठ, बड़ी–बड़ी परवल जैसी आंखे क्या मटक–मटक कर बोलती है डायलाग! भिड़ी जैसी अंगुलियाँ और लौकी जैसी वाहे और बटे जैसी छीः।''[5]

मानपत्र–शाह जी की मार्मिक कहानी है जो समाज में अपनी वेश–भूषा पहचान और सामाजिक दबाव के बीच व्यक्ति के आंतरिक टकराहट को चित्रित करती है। कहानी का केन्द्रिय पात्र सोहन चचा एक साधारण मध्यवर्गीय व्यक्ति है जो अपनी पारम्परिक ग्रामीण वेश–भूषा (मलेशिया का कुर्ता मलेशिया का पैजामा) और आधुनिक जवीन शैली के बची फंस जाते है, जहाँ समाज की नजरें और अपेक्षाएं उनके व्यक्तित्व को मानपत्र (सामाजिक प्रमाण–पत्र) की तरह परखती है। ''सही मुहर्त का ही सवाल है बस देखना''[6] कहानी में सोहन चचा अपनी पुरानी वेश–भूषा और पुरानी सोच के कारण कैसे समाज में अपमानित होते है। उनका ही परिवार उनका अपना सगा बेटा गणेश जो फारेस्ट विभाग में नौकरी करता है और उनको अपने साथ रखना चाहता है लेकिन उनके पुरानी सोच रहन–सहन के कारण नहीं रखता है। ''अरे, तो कब आएगा यार, तेरे बाबा का मूहर्त? मेरे पिता अक्सर टोक देते जिसे कुछ करना होता है सोहन लाल वह मुहर्त–वुहूर्त नहीं देखना। उसके लिए हर मुहुर्त सही मूहर्त होता है। समझा?''[7]

हीरा आदमी–इस कहानी की शुरूआत बहुत ही खुबसूरत पंक्तियों के साथ होती है–

''**बहुत दिनो की बात है बच्चों!**
बूढ़ा एक शहर था –
उसके बीचों बीच हमारा
फटा पुराना घर था।''[7]

इस कहानी में गाँव का इतना सुन्दर दृश्य है जो गाँव की खूबसूरती को दर्शाता है। ''**गाँव में सही से बिजली न ही कोई सिनेमाघर। फिर भी, वह जाने कैसे इतना जगर–मगर रहता था और हंसी–ठट्टे से बारहों मास लहलहाता हुआ। लोग ऐसे भड़भड़िए कि अनेक होली–दिवालियाँ भी उनकी मस्ती निकालने को पूरी नहीं पड़ती थी। लिहाजा लीला चलती रहती थी आठें याम, रोजमर्रा और सभी को लपेटती रहती थी। उस सर्वव्यापी थिएटर से निकलना असंभव था।**''[9] गाँव में दो भाई रम्मू काका, लच्छू कका थे जिस प्रकार गावों में लोगों का एक उपनाम जरूर होता है उसी प्रकार गाँव के लोग इन्हें 'भाडु' कह कर बुलाते थे, लच्छू काका तो कुछ नहीं बोलते लेकिन रम्मू काका इस नाम से जोर से चिढ़ते और सुनते ही तुरन्त पलटकर एक गाली देते तो मैंने उन्हें जब भी देखा 'भाडू' ही देखा और भाडू ही सुना''[10]। रम्मू काका शराब के आदि हो चुके थे लेकिन दिल के बहुत साफ व्यक्ति थे। एक बार कृष्ण जन्माष्टमी पर उनके घर में आग लगा जाती है और पूरा घर जल जाता है।

रम्मू काका और लच्छू काका जोर–जोर से रोने लगते है। तब पूरे गाँव के लोग मिलकर इनके जले घर की सफाई करके और अपना श्रम दान और चंदे से इनका पुनः नया घर बना देते हैं।

इस कहानी में यह दिखाई देता है कि गाँव के लोग कितने दयावान और संगठित है। एक–दूसरे से चाहे जो कहा–सुनी होने पर भी एक–दूसरे के सुख–दुःख के सदैव साथी होते है।

संदर्भ–सूची :

1. रमेशचन्द्र शाह, पुनर्वास (बीकानेर–वाग्देवी, प्रकाशन प्रथम संस्करण, 1995)
    1. पृ0–10
    2. वही पृ0–107
2. रमेशचन्द्र शाह–किस्सा गुलाम (दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1986)
    1. पृ0–18
    2. वही, पृ0–55
3. रमेशचन्द्र शाह, प्रतिनिधि कहानियाँ (दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 1994)
    1. पृ0–9
    2. वही, पृ0–11
    3. वही, पृ0–36
    4. वही, पृ0–39
    5. वही, पृ0–41
    6. वही, पृ0–117
    7. वही, पृ0–121

सम्पर्क–kumarpiyush19391@gmail.com

सम्पर्क नं0–7355404801

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2026 Page No. : 188-194

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

प्रिंट मीडिया में ग्रामीण समस्याएँ : सहारनपुर जनपद के विशेष संदर्भ में 'अमर उजाला' और 'दैनिक जागरण' का विश्लेषणात्मक अध्ययन

साक्षी, शोधार्थी
राजकीय महाविद्यालय टूंडला, फिरोजाबाद संबंध डॉ. भीम राव अम्बेडकर यूनिवर्सिटी, आगरा, उत्तर प्रदेश।



डॉ. विभा, शोध निर्देशिका
राजकीय महाविद्यालय टूंडला, फिरोजाबाद संबंध डॉ. भीम राव अम्बेडकर यूनिवर्सिटी, आगरा, उत्तर प्रदेश।

शोध सारांश :

भारत एक ग्राम प्रधान देश है। भारत की लगभग 6.8 प्रतिशत आबादी आज भी गांव में निवास करती है। जिनकी आजीविका का मुख्य स्रोत कृषि व गैर कृषि कार्य हैं। भारत जैसे विशाल लोकतांत्रिक देश मैं ग्रामीण विकास के अभाव में सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक उन्नति के विषय में कल्पना करना असंभव है। ग्रामीण विकास देश की महत्वपूर्ण आवश्यकता है, इसी कारण ग्रामीण विकास देश की एक ज्वलंत समस्या बनी हुई है। ऐसी परिस्थितियों में जनसंचार माध्यम ग्रामीण समाज की इन समस्याओं को व्यापक सामाजिक विमर्श का हिस्सा बनाने तथा जनता और सरकार के बीच संवाद स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य सहारनपुर जनपद के विशेष संदर्भ में 'अमर उजाला' और 'दैनिक जागरण' में प्रकाशित ग्रामीण समस्याओं से संबंधित समाचारों का विश्लेषण करना है। अध्ययन में मात्रात्मक एवं गुणात्मक सामग्री विश्लेषण पद्धति का प्रयोग किया गया है। इसके लिए 01 अगस्त 2026 से 30 अगस्त 2026 की अवधि के संबंधित समाचार–पत्रों में प्रकाशित ग्रामीण समस्याओं से जुड़े समाचारों को अध्ययन की इकाई बनाया गया है। कृषि एवं ग्रामीण समस्याएँ, बुनियादी ढाँचा, स्वास्थ्य एवं शिक्षा, सामाजिक–आर्थिक समस्याएँ तथा सरकारी योजनाएँ एवं जमीनी क्रियान्वयन को प्रमुख विश्लेषणात्मक श्रेणियों के रूप में निर्धारित किया गया है। अध्ययन के प्रारंभिक विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि दोनों समाचार–पत्रों में कृषि एवं ग्रामीण समस्याओं को सर्वाधिक स्थान प्राप्त हुआ, जबकि सरकारी योजनाओं एवं उनके जमीनी क्रियान्वयन से संबंधित समाचारों की संख्या अपेक्षाकृत कम रही।

मुख्य शब्द : ग्रामीण समस्याएँ, प्रिंट मीडिया, समाचार–पत्र, ग्रामीण विकास, सामग्री विश्लेषण, सहारनपुर।

प्रस्तावना :

भारत को समझने के लिए उसके ग्रामीण परिपेक्ष्य को समझना आवश्यक है। ग्रामीण समाज केवल कृषि उत्पादन का एक केंद्र नहीं हैं, अपितु वे सामाजिक संबंधों, सामुदायिक जीवन, स्थानीय संस्थाओं, परंपराओं और आर्थिक गतिविधियों की महत्वपूर्ण इकाइयाँ हैं। ग्रामीण समाज में होने वाले परिवर्तन का प्रभाव व्यापक भारतीय सामाजिक व्यवस्था पर पड़ता है।[1] इसलिए ग्रामीण समस्याओं को केवल स्थानीय स्तर की समस्याओं के रूप में

न देखकर सामाजिक विकास और राष्ट्रीय उन्नति से जोड़कर देखा जाना आवश्यक है।

ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि एवं उससे संबंधित समस्याएँ, सिंचाई की अपर्याप्त व्यवस्था, स्वास्थ्य सेवाओं की कमी, शिक्षा की गुणवत्ता, बेरोजगारी, गरीबी, पलायन तथा सड़क, बिजली और पेयजल जैसी आधारभूत सुविधाओं की कमी प्रमुख समस्याओं में शामिल हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए सरकारी योजनाओं और विकास कार्यक्रमों के साथ–साथ नागरिकों तक सही, विश्वसनीय और समयबद्ध सूचना का पहुँचना भी आवश्यक है। इस संदर्भ में जनसंचार माध्यम ग्रामीण समाज तथा प्रशासन के बीच सूचना और संवाद की महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में कार्य करते हैं।

मीडिया का कार्य केवल घटनाओं की सूचना देना ही नहीं है, बल्कि सामाजिक समस्याओं को सार्वजनिक विमर्श का विषय बनाना भी है। समाचार–पत्र किसी समस्या को स्थान देकर उसे प्रशासन, नीति–निर्माताओं और आम जनता का ध्यान केंद्रित कर सकते है। ग्रामीण क्षेत्रों के संदर्भ में स्थानीय और क्षेत्रीय समाचार–पत्रों का महत्व और अधिक बढ़ जाता है, क्योंकि वे स्थानीय घटनाओं एवं समस्याओं को स्थानीय संदर्भ में प्रस्तुत करने की क्षमता रखते हैं।[2]

सहारनपुर जनपद पश्चिमी उत्तर प्रदेश का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। यहाँ कृषि, स्थानीय व्यापार, लघु उद्योग और ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विशेष महत्व है। जनपद के ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि, सिंचाई, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, सड़क, बिजली और पेयजल से जुड़ी समस्याएँ स्थानीय जीवन को प्रभावित करती हैं। ऐसी स्थिति में यह जानना आवश्यक है कि क्षेत्र में व्यापक रूप से पढ़े जाने वाले हिंदी दैनिक समाचार–पत्र ग्रामीण समस्याओं को किस प्रकार प्रस्तुत करते हैं तथा किन समस्याओं को अधिक या कम प्राथमिकता देते हैं। 'अमर उजाला' और 'दैनिक जागरण' उत्तर भारत के प्रमुख हिंदी दैनिक समाचार–पत्र हैं। इसलिए इन दोनों समाचार–पत्रों का विश्लेषणात्मक अध्ययन सहारनपुर के ग्रामीण समाज को समझने के लिए किया गया है।

शोध के उद्देश्य :

- सहारनपुर जनपद के ग्रामीण क्षेत्रों से संबंधित प्रमुख समस्याओं की पहचान करना।
- 'अमर उजाला' और 'दैनिक जागरण' में ग्रामीण समस्याओं से संबंधित समाचारों की संख्या का अध्ययन करना।
- दोनों समाचार–पत्रों में ग्रामीण समस्याओं की विभिन्न श्रेणियों की तुलनात्मक स्थिति का विश्लेषण करना।

साहित्य समीक्षा :

पाटिल (2011) ने विकास संचार में प्रिंट मीडिया की बदलती प्रवृत्तियों का अध्ययन किया। अध्ययन में तकनीकी परिवर्तन और नवीन मीडिया के विस्तार के कारण प्रिंट मीडिया की कार्यप्रणाली में आए बदलावों को रेखांकित किया गया। इससे वर्तमान संचार परिवेश में प्रिंट मीडिया की बदलती भूमिका को समझने में सहायता मिलती है।

मुद्गल विपुल (2011) ने भारत के 6 सबसे अधिक प्रकाशित हिंदी व अंग्रेजी दैनिक समाचारपत्रों का तुलनात्मक अध्ययन किया। इस अध्ययन का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों की कवरेज का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना था। भारत के सबसे अधिक प्रसारित हिंदी और अंग्रेजी दैनिक समाचार पत्र ग्रामीण खबरों को अपने कुल कवरेज का एक छोटा सा हिस्सा मात्र देते हैं। इन समाचार पत्रों में ग्रामीण क्षेत्रों से संबंधित मात्र 2% खबरें ही प्रकाशित

की जाती है।

सिंह, डॉ. अरविंद कुमार (2014) ने भारतीय प्रिंट मीडिया के समक्ष बढ़ती तकनीकी चुनौतियों का अध्ययन किया। चार प्रमुख दैनिक समाचार–पत्रों के विश्लेषण से उन्होंने पाया कि प्रिंट मीडिया अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए आकर्षक हेडलाइन, फोटो, ग्राफिक्स तथा नई तकनीकों का प्रयोग कर पाठकों को आकर्षित करने का प्रयास कर रहा है।

व्यास एवं सचदेवा (2014) ने कानपुर के ग्रामीण क्षेत्रों के विशेष संदर्भ में समाचार–पत्रों में विकासात्मक समाचारों की कवरेज का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया। अध्ययन में ग्रामीण विकास से संबंधित विषय सामग्री के माध्यम से समाचार–पत्र प्रतिनिधित्व को समझने का प्रयास किया गया। यह शोध ग्रामीण विकास और समाचार–पत्र की कवरेज के मध्य स्थापित संबंध को समझने में उपयोगी है।

सरकार (2015) ने असम के क्षेत्रीय दैनिक समाचार–पत्रों में प्रकाशित ग्रामीण विकास संबंधी समाचारों का तुलनात्मक अध्ययन किया। अध्ययन के निष्कर्ष से क्षेत्रीय समाचार–पत्रों द्वारा स्थानीय विकास संबंधी मुद्दों को सार्वजनिक विमर्श में लाने की भूमिका स्पष्ट होती है। यह अध्ययन प्रस्तुत शोध के लिए इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि दोनों अध्ययनों में क्षेत्रीय समाचार–पत्रों में ग्रामीण मुद्दों की उपस्थिति पर ध्यान केंद्रित किया गया है।

नाज तंजीला (2019) ने बताया कि ग्रामीण क्षेत्रों के लोग पत्र पत्रिकाएं और टेलीफोन के माध्यम से अपनी समस्या अपनी शिकायतों को सरकार तक पहुंचाने का कार्य करते हैं। पत्रकारिता जनता और सरकार के बीच एक सेतु का काम करती है। ग्रामीण क्षेत्रों के खबरे समाचार पत्रों में तभी स्थान पाते है, जब किसी बड़ी दुर्घटना के कारण बहुत सारे लोगों की जान पर बन आई हो। राजनेताओं के दौरे की कवरेज के दौरान ही ग्रामीण क्षेत्रों को सबसे अधिक प्राथमिकता मिल पाती है। ऐसी स्थिति में कुछ समय के लिए समाचार पत्रकारों की नींद खुलती है और ग्रामीण लोगों की सुध आती है।

खत्री नीरज, अमनदीप (2019) ने अलीगढ़ के ग्रामीण इलाकों में प्रिंट मीडिया में स्थानीय समाचार का कवरेज और सरकार के ग्रामीण विकास के एजेंडे की जांच के दौरान पाया, की प्रिंट मीडिया में ग्रामीण समस्याओं कृषि, सड़के, गरीबी, पेयजल, शिक्षा और स्वास्थ ऐसे प्रमुख क्षेत्र है, जिन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। अलीगढ़ के दो पत्रों की तुलनात्मक जांच के दौरान पाया गया की, दोनो पत्र स्थानीय मुद्दों को प्रमुखता से प्रसारित नहीं करते है। प्रिंट मीडिया ग्रामीण विकास में अपनी अहम भूमिका निभा सकता है, लेकिन अध्ययन के दौरान पाया गया कि प्रिंट मीडिया ग्रामीण विकास से संबंधित मुद्दों की कवरेज की अनदेखी करता है।

स्वामी (2020) ने कर्नाटक के चार जिलों के संदर्भ में ग्रामीण विकास में प्रिंट मीडिया की भूमिका का अध्ययन किया। अध्ययन में ग्रामीण आबादी तक विकास संबंधी सूचना पहुँचाने में समाचार–पत्रों की उपयोगिता पर बल दिया गया। यह अध्ययन ग्रामीण विकास और प्रिंट मीडिया के संबंध को समझने के लिए महत्वपूर्ण आधार प्रदान करता है।

अधिकारी, गोस्वामी एवं कश्यप (2020) ने कृषि एवं ग्रामीण विकास में विकास पत्रकारिता की भूमिका का अध्ययन किया। अध्ययन में ग्रामीण समुदाय तक विकास संबंधी सूचना पहुँचाने तथा ग्रामीण समस्याओं को व्यापक सामाजिक विमर्श में लाने में पत्रकारिता की उपयोगिता पर बल दिया गया।

शोध पद्धति :

प्रस्तुत अध्ययन की प्रकृति वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक है। प्रस्तुत अध्ययन प्रिंट मीडिया में ग्रामीण समस्याएँ : सहारनपुर जनपद के विशेष संदर्भ में 'अमर उजाला' और 'दैनिक जागरण' का विश्लेषणात्मक अध्ययन से संबंधित है। अध्ययन को वैज्ञानिक तथा यथार्थ बनाने के उद्देश्य से अंतर्वस्तु विश्लेषण पद्धति का चयन किया गया है। अंतर्वस्तु विश्लेषण पद्धति वह पद्धति है, जिसमें लिखित स्रोतों से प्राप्त सामग्री का विश्लेषण किया जाता है। शोध अध्ययन हैतू दैनिक समाचार पत्र "उमर उजाला" और "दैनिक जागरण" में प्रकाशित ग्रामीण समस्याओं से संबंधित समाचारों का अध्ययन करने के लिए चुना गया है।

अध्ययन क्षेत्र :

अध्ययन क्षेत्र के रूप में उत्तर प्रदेश के सहारनपुर जनपद के चयनित ग्रामीण क्षेत्रों को प्रस्तावित किया गया है।

अध्ययन अवधि :

अध्ययन के लिए 01 अगस्त 2026 से 30 अगस्त 2026 तक की अवधि निर्धारित की गई है। इस अवधि के 'अमर उजाला' और 'दैनिक जागरण' के संबंधित संस्करणों में प्रकाशित ग्रामीण समस्याओं से जुड़े समाचारों को अध्ययन में शामिल किया गया है।

डेटा विश्लेषण एवं व्याख्या :

Table 1 : दोनों समाचार-पत्रों में ग्रामीण समस्याओं से संबंधित समाचारों की संख्या

क्रम	समाचार पत्र	समाचारों की संख्या	प्रतिशत
1	अमर उजाला	187	65.85%
2	दैनिक जागरण	97	34.15%
	योग	284	100%

Table 1 से स्पष्ट है कि अध्ययन अवधि में ग्रामीण समस्याओं से संबंधित कुल 284 समाचारों में अमर उजाला की हिस्सेदारी 65.85% तथा दैनिक जागरण की 34.15% रही। इससे स्पष्ट होता है कि अमर उजाला में ग्रामीण समस्याओं से संबंधित समाचारों की संख्या दैनिक जागरण की तुलना में अधिक रही।

Table 2 : ग्रामीण समस्याओं की श्रेणी के अनुसार दोनों समाचार-पत्रों में समाचारों की संख्या

क्रम	ग्रामीण समस्या की श्रेणी	अमर उजाला	दैनिक जागरण	कुल
1	कृषि एवं ग्रामीण समस्याएँ	48	25	73
2	बुनियादी ढाँचा	32	17	49
3	स्वास्थ्य एवं शिक्षा	27	14	41
4	सामाजिक–आर्थिक समस्याएँ	23	12	35
5	अपराध	21	11	32
6	महिला संबंधी समस्याएँ	14	8	22
7	सरकारी योजनाएँ एवं जमीनी क्रियान्वयन	22	10	32
	कुल	187	97	284

Table 2 के अनुसार दोनों समाचार–पत्रों में कृषि एवं ग्रामीण समस्याएँ 73 समाचारों के साथ सर्वाधिक प्रमुख श्रेणी रही। इसके बाद बुनियादी ढाँचा 49 तथा स्वास्थ्य एवं शिक्षा 41 से संबंधित समाचार रहे। अपराध और सरकारी योजनाओं एवं जमीनी क्रियान्वयन से संबंधित समाचारों की संख्या 32–32 रही, जबकि महिला संबंधी समस्याओं की कवरेज 22 समाचारों के साथ सबसे कम रही।

Table 3 : ग्रामीण समस्याओं की श्रेणी के अनुसार कवरेज का प्रतिशत

क्रम	श्रेणी	समाचारों की संख्या	प्रतिशत
1	कृषि एवं ग्रामीण समस्याएँ	73	25.70%
2	बुनियादी ढाँचा	49	17.25%
3	स्वास्थ्य एवं शिक्षा	41	14.44%
4	सामाजिक–आर्थिक समस्याएँ	35	12.32%
5	अपराध	32	11.27%
6	महिला संबंधी समस्याएँ	22	7.75%
7	सरकारी योजनाएँ एवं जमीनी क्रियान्वयन	32	11.27%
	कुल	284	100%

Table 3 से स्पष्ट होता है कि दोनों समाचार–पत्रों में ग्रामीण समस्याओं से संबंधित समाचारों में कृषि एवं ग्रामीण समस्याएँ 25.70% के साथ सर्वाधिक प्रमुख रहीं। इसके बाद बुनियादी ढाँचा 17.25% तथा स्वास्थ्य एवं शिक्षा 14.44% से संबंधित समाचारों को स्थान मिला। सामाजिक–आर्थिक समस्याओं की कवरेज 12.32% रही, जबकि अपराध तथा सरकारी योजनाएँ एवं जमीनी क्रियान्वयन दोनों की हिस्सेदारी 11.27% रही। महिला संबंधी समस्याओं की कवरेज 7.75% रही, जो सभी श्रेणियों में सबसे कम है।

निष्कर्ष :

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य सहारनपुर जनपद के विशेष संदर्भ में 'अमर उजाला' और 'दैनिक जागरण' में ग्रामीण समस्याओं के समाचार–पत्र की कवरेज का विश्लेषण करना था। अध्ययन में ग्रामीण समस्याओं को पाँच प्रमुख श्रेणियों में विभाजित करके उनका मात्रात्मक एवं गुणात्मक विश्लेषण किया गया।

अध्ययन के प्रारंभिक निष्कर्षों से स्पष्ट होता है कि दोनों समाचार–पत्र ग्रामीण क्षेत्रों की समस्याओं को अपने स्थानीय एवं क्षेत्रीय समाचार कवरेज में पर्याप्त स्थान देते हैं। दोनों समाचार–पत्रों में कृषि एवं ग्रामीण समस्याएँ सर्वाधिक प्रमुख श्रेणी के रूप में सामने आईं। इसके बाद बुनियादी ढाँचा तथा स्वास्थ्य एवं शिक्षा से संबंधित समस्याओं को महत्वपूर्ण स्थान मिला। दोनों समाचार–पत्र ग्रामीण समस्याओं को अपने समाचार–विमर्श में शामिल करते हैं, लेकिन अध्ययन अवधि में अमर उजाला में इन समस्याओं की समाचार संख्या दैनिक जागरण की तुलना में अधिक रही।

इस स्थिति को ग्रामीण पत्रकारिता की एक संभावित सीमा के रूप में देखा जा सकता है। समाचार–पत्र यदि किसी ग्रामीण समस्या को सामने लाने के साथ उसके कारणों, प्रशासनिक उत्तरदायित्व, समाधान की संभावनाओं तथा प्रभावित समुदाय की आवाज को भी प्रमुखता दें, तो उनकी विकासपरक भूमिका और मजबूत हो सकती है।

ग्रामीण समस्याओं को सार्वजनिक विमर्श में लाने के साथ–साथ प्रिंट मीडिया प्रशासनिक जवाबदेही को भी प्रभावित कर सकता है। सड़क, बिजली, स्वास्थ्य, शिक्षा, सिंचाई, रोजगार अथवा सरकारी योजनाओं से संबंधित समस्याओं की निरंतर रिपोर्टिंग संबंधित संस्थाओं का ध्यान आकर्षित कर सकती है।

'विकसित भारत@2047' की व्यापक विकास–दृष्टि के संदर्भ में ग्रामीण विकास को प्राथमिकता देना आवश्यक है। ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक एवं आर्थिक अवसरों का विस्तार तथा बुनियादी सुविधाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करने में सरकार, नागरिक समाज और मीडिया सभी की भूमिका महत्वपूर्ण है। मीडिया ग्रामीण समुदाय की समस्याओं को व्यापक समाज तक पहुँचाने के साथ–साथ विकास योजनाओं की निगरानी और जन–जागरूकता में भी योगदान दे सकता है।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सहारनपुर जनपद के संदर्भ में 'अमर उजाला' और 'दैनिक जागरण' ग्रामीण समस्याओं को सार्वजनिक विमर्श में स्थान देने वाले महत्वपूर्ण माध्यम हैं। भविष्य में ग्रामीण पत्रकारिता को अधिक समाधान परक, सहभागी, तथ्यपरक और विकासोन्मुख बनाने की दिशा में प्रयास किए जाने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. कुमार, डॉ. संजीव. (2019). ग्रामीण विकास की समस्याएँ एवं संभावनाएँ : भागलपुर जिला (बिहार) के संदर्भ में एक विश्लेषण. जर्नल ऑफ इमर्जिंग टेक्नोलॉजीज एंड इनोवेटिव रिसर्च (JETIR), 6(4), 1286–1292- ISSN-2349-5162।
2. Wagh, A. (2023). Rural development and media. International Research Journal of Humanities and Interdisciplinary Studies (IRJHIS), 4(8), 106–109. https://doi.org/03.2021-11278686
3. Patil, M. (2011). Recent trends of print media in development communication. Global Media Journal, 2(2), 1–20.
4. Mudgal,Vipul,(2011). Rural coverage in Hindi and English dailies. Economic & Political Weekly, Vol-46 , Issue No. 35, ISSN (Print) – 0012-9976, ISSN (Online) – 2349-8846
5. Singh, A.Kumar,(2014). Present Trends of Newspaper in India.Shodh Shanchayan An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A Complete Periodical Dedicated to Humanities & Social Science Research, Vol-5, Issue-1, ISSN 2249-9180 (Online), ISSN 0975-1254 (Print) RNI No.DELBIL/2010/31292
6. Vyas, V., & Sachdeva, S. (2014). Coverage of development news in newspapers with special reference to rural areas of Kanpur. OIDA International Journal of Sustainable Development, 7(1), 57–62.
7. Sarkar, P. (2015). Rural development news in regional dailies of Assam : A comparative study. Intellection, 3(2), 22–29.
8. नाज, तंजिला, (2019). ग्रामीण पत्रकारिता और अखबार की भूमिका,

https://www.jharkhandlatestnews.com/gramin-patrkarita-or-akhbar-ki-bhumika-47784-2/
9. Khatri, Neeraj &Amandeep, (2019). Coverage of Rural news in print media of Aligarh. Research gate. https://www.researchgate.net/publication/333809064_COVERAGE_OF_RURAL_NEWS_IN_PRINT_MEDIA_OF_ALIGARH
10. Adhikari, B., Goswamy, P., & Kashaya, S. K. (2020). Role of development journalism in agriculture and rural development of India. Food and Scientific Reports, 1(1), 36–38.
11. Swamy, B. P. (2020). Print media in rural development: A case study of four districts of Karnataka State. Journal of Emerging Technologies and Innovative Research, 7(4), 1372–1378.
12. https://www.researchgate.net/publication/399107510_Viksit_Bharat_2047_and_Rural_India_Pathways_to_Inclusive_Developmenthttps://www.census2011.co.in/census/district/503-saharanpur.html
https://www.census2011.co.in/census/district/503-saharanpur.html
13. अमर उजाला। (2026, अगस्त)। अमर उजाला, सहारनपुर संस्करण : 1–30 अगस्त 2026 के दैनिक अंक। अमर उजाला प्रकाशन।
14. दैनिक जागरण। (2026, अगस्त)। दैनिक जागरण, सहारनपुर संस्करण : 1–30 अगस्त 2026 के दैनिक अंक। जागरण प्रकाशन लिमिटेड।

मोबाइल नंबर 8534841706
ईमेल आईडी : dr.sakshi696@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2026 Page No. : 195-198

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

कमलेश्वर का मीडिया लेखन में योगदान

विनोद कुमार, शोधार्थी,
श्री जगदीश प्रसाद झाबरमल तिबरेवाला विश्वविद्यालय, झुंझुनू।
डॉ. धनेश कुमार मीणा, निर्देशक
सहायक आचार्य, हिंदी, एस.जे.जे.टी.यू.।

शोध-सार :

कमलेश्वर हिंदी साहित्य के उन विरले रचनाकारों में से हैं जिन्होंने कथा साहित्य, पत्रकारिता, दूरदर्शन और फिल्म लेखन कृ इन सभी माध्यमों में समान दक्षता और प्रतिबद्धता के साथ काम किया। प्रस्तुत शोध आलेख उनके मीडिया लेखन का विश्लेषण करते हुए यह स्थापित करता है कि उनकी सामाजिक–राजनीतिक प्रतिबद्धता एक सूत्र की तरह उनके समस्त लेखन में व्याप्त थी। उन्होंने 'सारिका' और 'गंगा' पत्रिकाओं का संपादन कर हिंदी पत्रकारिता को नई ऊँचाई दी, दूरदर्शन के माध्यम से सामाजिक सरोकारों को जनसाधारण तक पहुँचाया और अपने फिल्मी लेखन में भी राजनीतिक चेतना को जीवित रखा।

मुख्य शब्द : कमलेश्वर, मीडिया लेखन, हिंदी पत्रकारिता, दूरदर्शन, सामाजिक–राजनीतिक प्रतिबद्धता।

प्रस्तावना :

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हिंदी साहित्य और मीडिया के बीच की सीमाएँ धुँधली होने लगी थीं। कई लेखक ऐसे थे जो साहित्यिक लेखन के साथ–साथ पत्रकारिता, रेडियो और दूरदर्शन में भी सक्रिय थे। लेकिन कमलेश्वर इस प्रवृत्ति में सबसे अग्रणी और सबसे प्रभावशाली रहे। उन्होंने यह सिद्ध किया कि एक संवेदनशील और प्रतिबद्ध लेखक के लिए माध्यम की सीमा नहीं होती। वह जिस भी माध्यम में काम करे, अपनी मूल चेतना और सरोकारों के साथ न्याय करता है।

कमलेश्वर का जीवन संघर्षपूर्ण था। उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त की और आजीविका की तलाश में मुंबई और दिल्ली जैसे महानगरों में काम किया। इस संघर्ष ने उन्हें जमीनी हकीकत से जोड़ा और उनके लेखन में एक ऐसी प्रामाणिकता आई जो केवल अनुभव से ही संभव है। उनकी सामाजिक–राजनीतिक प्रतिबद्धता किसी वैचारिक दबाव का परिणाम नहीं थी, बल्कि यह उनके जीवन–अनुभव से उपजी हुई थी। यही कारण है कि उनका मीडिया लेखन कभी सतही या प्रचारात्मक नहीं लगता – वह हमेशा मानवीय संवेदना की जमीन पर खड़ा रहता है।

कमलेश्वर ने अपने लेखकीय जीवन की शुरुआत कहानियों से की, लेकिन बहुत जल्दी उन्होंने यह महसूस किया कि एक बड़ा लेखक केवल साहित्यिक माध्यमों तक सीमित नहीं रह सकता। जनसाधारण तक

पहुँचने के लिए, समाज को प्रभावित करने के लिए और राजनीतिक शक्तियों को चुनौती देने के लिए उन्हें मीडिया के विभिन्न माध्यमों का उपयोग करना होगा। इसी विचार ने उन्हें पत्रकारिता, दूरदर्शन और फिल्म लेखन की ओर प्रेरित किया।

कमलेश्वर और हिंदी पत्रकारिता : संपादन का नया आयाम :

कमलेश्वर का पत्रकारीय जीवन 'सारिका' पत्रिका के संपादन से एक नई ऊँचाई पर पहुँचा। 'सारिका' टाइम्स ऑफ इंडिया समूह की हिंदी साहित्यिक पत्रिका थी और कमलेश्वर ने इसका संपादन दो चरणों में किया – 1967 से 1978 तक और फिर 1983 से 1986 तक। उनके संपादन काल में 'सारिका' न केवल हिंदी की सबसे लोकप्रिय साहित्यिक पत्रिका बनी, बल्कि उसने समकालीन सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों पर भी खुलकर अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

कमलेश्वर ने 'सारिका' के माध्यम से हिंदी पत्रकारिता में एक नई परंपरा स्थापित की। उन्होंने साहित्यिक पत्रिका को केवल साहित्य तक सीमित न रखकर उसे एक ऐसे मंच में बदला जो समाज के ज्वलंत प्रश्नों से टकराए। इस पत्रिका में आपातकाल के दौरान और बाद में ऐसे कई आलेख और रचनाएँ प्रकाशित हुईं जो सत्ता की आलोचना करती थीं और लोकतांत्रिक मूल्यों की पक्षधर थीं। उनके संपादन में 'सारिका' ने जो साहस दिखाया, वह हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में उल्लेखनीय है।

'सारिका' के अतिरिक्त कमलेश्वर ने 'गंगा' पत्रिका का भी संपादन किया। 'गंगा' एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक–सांस्कृतिक पत्रिका थी जिसमें उन्होंने हिंदी के नए रचनाकारों को मंच देने और उनकी रचनात्मकता को प्रोत्साहित करने का काम किया। इस पत्रिका के माध्यम से उन्होंने हिंदी साहित्य की एक सक्रिय और सजग पाठक बिरादरी तैयार करने में सहायता की। उनका संपादकीय दृष्टिकोण यह था कि पत्रिका केवल स्थापित रचनाकारों का मंच न हो, बल्कि नई प्रतिभाओं की पहचान और संवर्धन का माध्यम भी बने।

उनकी पत्रकारिता में एक विशेष प्रकार की सामाजिक संवेदनशीलता थी। वे दलित, स्त्री, अल्पसंख्यक और हाशिए के समुदायों की आवाज को साहित्य के केंद्र में लाने के प्रयास में सदैव अग्रणी रहे। उनकी पत्रिकाओं ने ऐसे विषयों पर विमर्श को प्रोत्साहित किया जिन्हें मुख्यधारा का मीडिया प्रायः नजरअंदाज करता था। इस अर्थ में कमलेश्वर की पत्रकारिता एक वैकल्पिक और प्रतिरोधी मीडिया की भूमिका निभाती थी।

हिंदी पत्रकारिता में उनका सबसे बड़ा योगदान यह था कि उन्होंने साहित्यिक भाषा को जनभाषा से जोड़ा। उनके संपादन में छपने वाले आलेख और रचनाएँ आम पाठक की समझ में आती थीं, लेकिन वे साहित्यिक दृष्टि से भी उच्च कोटि की होती थीं। यह संतुलन बनाना अत्यंत कठिन है और कमलेश्वर ने इसे सहज रूप से साधा। उनकी यही क्षमता उन्हें हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में एक विशिष्ट स्थान देती है।

दूरदर्शन एवं फिल्म लेखन में सामाजिक चेतना :

कमलेश्वर का दूरदर्शन से जुड़ाव हिंदी मीडिया के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण अध्याय है। वे दूरदर्शन के अतिरिक्त महानिदेशक के पद पर कार्यरत रहे और इस भूमिका में उन्होंने दूरदर्शन को एक सामाजिक सरोकार का माध्यम बनाने का प्रयास किया। यह वह दौर था जब भारत में दूरदर्शन का तेजी से विस्तार हो रहा था और दूरदर्शन ही एकमात्र टेलीविजन चैनल था। इस एकाधिकार का उपयोग सामाजिक रूपांतरण के लिए करने की जो दृष्टि कमलेश्वर ने रखी, वह उनकी प्रतिबद्धता का प्रमाण है।

उन्होंने दूरदर्शन के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण धारावाहिकों की पटकथाएँ लिखीं। 'दर्पण' और अन्य धारावाहिकों के माध्यम से उन्होंने सामाजिक समस्याओं 'भ्रष्टाचार, सांप्रदायिकता, स्त्री–उत्पीड़न, जातीय भेदभाव' को टेलीविजन के व्यापक दर्शक–वर्ग के सामने रखा। उनके लिखे धारावाहिक केवल मनोरंजन के लिए नहीं थे वे दर्शकों को सोचने पर मजबूर करते थे और सामाजिक जागरूकता पैदा करते थे।

फिल्म लेखन में भी कमलेश्वर की राजनीतिक चेतना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उन्होंने 'आँधी' (1975) फिल्म की पटकथा लिखी जो एक महत्त्वाकांक्षी राजनीतिक महिला की कहानी थी। इस फिल्म को आपातकाल के दौरान प्रतिबंधित कर दिया गया था, जो इस बात का प्रमाण है कि उनका लेखन तत्कालीन राजनीतिक सत्ता के लिए चुनौती था। 'काली आंधी' उपन्यास पर आधारित इस फिल्म में राजनीति की आंतरिक जटिलताओं और व्यक्तिगत संबंधों पर राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा के प्रभाव को अत्यंत सूक्ष्मता से दिखाया गया था। इसके अतिरिक्त 'मौसम' (1975), 'सौतन' (1983), 'राम बलराम' (1980), 'अपना देश' (1972) और कई अन्य फिल्मों की पटकथाएँ लिखकर कमलेश्वर ने हिंदी सिनेमा को एक सामाजिक सरोकार का माध्यम बनाने में योगदान दिया। वे मानते थे कि सिनेमा जनमानस को प्रभावित करने का सबसे शक्तिशाली माध्यम है और इस माध्यम की शक्ति का उपयोग सामाजिक परिवर्तन के लिए किया जाना चाहिए। उनकी फिल्मी पटकथाओं में भाषा की सहजता, पात्रों की विश्वसनीयता और कथानक की सामाजिक प्रासंगिकता – ये तीन गुण सदैव विद्यमान रहते थे।

दूरदर्शन और फिल्म के क्षेत्र में उनके योगदान की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि उन्होंने इन माध्यमों की व्यावसायिक माँगों के साथ समझौता किए बिना अपनी साहित्यिक और सामाजिक प्रतिबद्धता को बनाए रखा। जब बाजार की माँग उन्हें एक दिशा में खींचती, तो उनकी अंतरात्मा उन्हें दूसरी दिशा में ले जाती। इस द्वंद्व में वे अंततः अपनी प्रतिबद्धता के प्रति ईमानदार रहे। यही कारण है कि उनका मीडिया लेखन आज भी प्रासंगिक और उद्धरणीय है।

कमलेश्वर की राजनीतिक दृष्टि और लेखनी की प्रतिबद्धता :

कमलेश्वर की राजनीतिक दृष्टि मूलतः प्रगतिशील और मानवतावादी थी। वे किसी एक राजनीतिक दल या विचारधारा के प्रति अंधी निष्ठा रखने वाले लेखक नहीं थे। उनकी राजनीतिक प्रतिबद्धता का केंद्र था – साधारण मनुष्य के अधिकार, लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा और सांप्रदायिकता का विरोध। इन मुद्दों पर वे किसी से भी, किसी भी शक्ति से भी टकराने को तैयार रहते थे। उनका उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' (2000) इसी राजनीतिक दृष्टि का सबसे व्यापक और प्रभावशाली अभिव्यक्ति है।

'कितने पाकिस्तान' में कमलेश्वर ने भारत–विभाजन, सांप्रदायिक हिंसा और इतिहास के पुनर्पाठ को एक अनूठी कथा संरचना में प्रस्तुत किया। इस उपन्यास में उन्होंने एक काल्पनिक 'अदालत' की स्थापना की जहाँ इतिहास के विभिन्न कालखंडों के पात्र 'ऐतिहासिक और साहित्यिक' अपनी गवाही देते हैं। यह उपन्यास सिर्फ भारत–पाकिस्तान विभाजन की त्रासदी तक सीमित नहीं है – यह विश्व के इतिहास में हुई हर उस घटना की पड़ताल करता है जहाँ मनुष्य को धर्म, जाति या राष्ट्रीयता के नाम पर बाँटा गया। इस उपन्यास को 2003 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

आपातकाल (1975–1977) के दौरान और उसके बाद कमलेश्वर की राजनीतिक प्रतिबद्धता सबसे स्पष्ट

रूप से सामने आई। उन्होंने आपातकाल के दमनकारी चरित्र की आलोचना की और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया। उनकी पत्रिका 'सारिका' ने इस दौर में जो साहसी भूमिका निभाई, वह हिंदी पत्रकारिता के प्रतिरोध के इतिहास में दर्ज है। कमलेश्वर मानते थे कि एक लेखक की सबसे बड़ी जिम्मेदारी यह है कि वह सत्ता के सामने झुके नहीं और जनता की आवाज बना रहे।

उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता का एक और महत्त्वपूर्ण आयाम उनका सांप्रदायिकता–विरोध था। वे भारत की साझी विरासत और गंगा–जमुनी तहजीब के गहरे पक्षधर थे। उन्होंने अपने लेखन में बार–बार यह रेखांकित किया कि भारत की ताकत उसकी विविधता में है और जो शक्तियाँ इस विविधता को नष्ट करना चाहती हैं, वे वास्तव में भारत को नष्ट करना चाहती हैं। 'कितने पाकिस्तान' इसी दृष्टि का सबसे व्यापक साहित्यिक अभिव्यक्ति है।

निष्कर्ष :

कमलेश्वर का मीडिया लेखन और उनकी सामाजिक–राजनीतिक प्रतिबद्धता एक–दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हैं। उन्होंने साहित्य, पत्रकारिता, दूरदर्शन और फिल्म 'इन सभी माध्यमों को एक लक्ष्य के लिए उपयोग किया' सामाजिक न्याय, मानवीय गरिमा और लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा के लिए। उनका जीवन और लेखन यह सिद्ध करता है कि एक सच्चा लेखक केवल अपनी कलम से नहीं लड़ता, बल्कि हर उस माध्यम से लड़ता है जो उसे उपलब्ध होता है। 27 जनवरी 2007 को उनके निधन के बाद हिंदी साहित्य और पत्रकारिता ने एक ऐसा रचनाकार खोया जिसकी कमी आज भी गहराई से महसूस होती है। उनकी रचनाएँ और उनकी प्रतिबद्धता आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनी रहेंगी।

संदर्भ सूची :

1. कमलेश्वर (2000). कितने पाकिस्तान. नई दिल्ली : राजपाल एंड सन्स।
2. कमलेश्वर (1975). काली आंधी. नई दिल्ली : राजपाल एंड सन्स।
3. कमलेश्वर (1972). एक सड़क सत्तावन गलियाँ. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
4. विश्वनाथ त्रिपाठी (2009). हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास. नई दिल्ली : ओरियंट ब्लैकस्वान।
5. मधुरेश (2006). कमलेश्वर : व्यक्ति और साहित्य. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन।
6. रमेश उपाध्याय (2004). समकालीन हिंदी साहित्य और मीडिया. नई दिल्ली : शब्दसंधान प्रकाशन।
7. प्रभाकर श्रोत्रिय (2002). हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता. नई दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट।
8. पंकज बिष्ट (2008). हिंदी कथा साहित्य : राजनीति और समाज. नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन।
9. रमेश दवे (1995). दूरदर्शन और हिंदी साहित्य. भोपाल : मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी।
10. सुधीश पचौरी (2010). मीडिया विमर्श और हिंदी लेखन. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन।

विनोद कुमार

गाँव : करमगढ़, डाकघर : साहूवाला 1st, जिला/तहसील : सिरसा–125077

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2026 Page No. : 199-206

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

स्त्री–चेतना, प्रतिरोध और आत्मनिर्णय : मैत्रेयी पुष्पा के 'झूलानट' में अस्मिता–विमर्श

डॉ. कविता वी. राजन
सहायक प्राध्यापिका,
दि कोच्चिन कॉलेज, कोच्चि–2, केरल।

प्रारूप :

समकालीन हिन्दी कथा–साहित्य में स्त्री–विमर्श ने स्त्री–जीवन को केवल पीड़ा, शोषण और पराधीनता के संदर्भ में देखने के बजाय उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व, आत्मसम्मान, अधिकार–बोध और निर्णय–क्षमता के प्रश्नों से जोड़ा है। मैत्रेयी पुष्पा का कथा–साहित्य इस दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता है। उनके यहाँ ग्रामीण स्त्री परिवार और समाज से अलग होकर नहीं, बल्कि उन्हीं के बीच रहते हुए अपनी पहचान और अधिकार के लिए संघर्ष करती है। 'झूलानट' की शीलो ऐसी ही स्त्री है। उपन्यास के आरंभ में वह सहनशील, धैर्यवान और अपने वैवाहिक संबंध को बचाए रखने के लिए प्रयत्नशील दिखाई देती है। किंतु पति सुमेर की उपेक्षा और तिरस्कार उसके भीतर धीरे–धीरे एक नई चेतना को जन्म देते हैं। समय के साथ वह अपने जीवन को दूसरों द्वारा निर्धारित मान्यताओं के अनुसार जीने के बजाय अपनी समझ और इच्छा के अनुसार तय करने लगती है। बालकिशन के साथ उसका संबंध, 'बछिया' की रस्म से इनकार, पंचायत और सामाजिक दबाव के सामने उसका दृढ़ रुख तथा संपत्ति और आर्थिक अधिकारों के प्रति उसकी सजगता इसी परिवर्तन के अलग–अलग रूप हैं। शीलो की यह यात्रा अस्वीकृति से आत्मस्वीकृति, मौन से प्रश्न, प्रश्न से प्रतिरोध और अंततः आत्मनिर्णय की ओर बढ़ती स्त्री–अस्मिता की यात्रा है।

बीज शब्द : मैत्रेयी पुष्पा, झूलानट, शीलो, स्त्री–अस्मिता, स्त्री–चेतना, प्रतिरोध, आत्मनिर्णय, आर्थिक स्वायत्तता।

भूमिका :

समकालीन हिन्दी साहित्य में स्त्री–विमर्श ने स्त्री को देखने की परंपरागत दृष्टि में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया है। स्त्री की पीड़ा और शोषण को अभिव्यक्ति देना इसका आवश्यक पक्ष है, किंतु बात केवल पीड़ा के वर्णन तक सीमित नहीं रहती। स्त्री–विमर्श उन सामाजिक और पारिवारिक व्यवस्थाओं पर भी प्रश्न उठाता है जो स्त्री की भूमिका, मर्यादा, प्रतिष्ठा और जीवन के निर्णयों को नियंत्रित करती हैं। विवाह, परिवार, देह, श्रम, संपत्ति और सामाजिक संबंध जैसे प्रश्न इसीलिए स्त्री के अधिकार और अस्मिता से जुड़ जाते हैं।

'अस्मिता' का सामान्य अर्थ पहचान से है, लेकिन स्त्री–अस्मिता केवल अपनी अलग पहचान को जान लेने का नाम नहीं है। अपने अस्तित्व के मूल्य को समझना, आत्मसम्मान की रक्षा करना, अपने अधिकारों के प्रति

सजग होना और अपने जीवन से संबंधित निर्णय स्वयं लेना भी इसके महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं। भारतीय समाज में स्त्री की पहचान प्रायः बेटी, पत्नी, बहू और माँ जैसी पारिवारिक भूमिकाओं के माध्यम से निर्धारित होती रही है। समस्या इन संबंधों में नहीं, बल्कि तब उत्पन्न होती है जब इन्हीं भूमिकाओं को स्त्री की संपूर्ण पहचान मान लिया जाता है और उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व तथा निर्णय के लिए कोई स्थान नहीं छोड़ा जाता।

मैत्रेयी पुष्पा के कथा–साहित्य की विशेषता यह है कि उनकी स्त्रियाँ गाँव, खेत, परिवार, विवाह और परंपरा के बीच रहते हुए अपने अनुभवों से जीवन की वास्तविकताओं को समझती हैं। उनके स्त्री–पात्र अपने जीवन के अनुभवों के आधार पर अपने संघर्ष को व्यक्त करते हैं। वे अपनी ग्रामीणता को छोड़े बिना रूढ़ियों को चुनौती देती हैं और धीरे–धीरे अपने लिए स्वतंत्र स्थान बनाती हैं।

'झूलानट' की शीलो इसी अनुभव से विकसित होने वाली स्त्री–चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति है। उपन्यास के आरंभ में वह अत्यंत सहनशील, धैर्यवान और पारिवारिक मूल्यों को महत्त्व देने वाली स्त्री के रूप में सामने आती है। वह अपने वैवाहिक जीवन को बचाए रखने का हर संभव प्रयास करती है। पति से प्रेम और स्वीकार की अपेक्षा रखने वाली शीलो उसी वैवाहिक व्यवस्था के भीतर अपने लिए स्थान खोजती है जिसमें पत्नी की सामाजिक प्रतिष्ठा को प्रायः पति की स्वीकृति से जोड़कर देखा जाता है।

शीलो के प्रति सामाजिक दृष्टि उसके व्यक्तित्व से अधिक उसके बाहरी रूप को महत्त्व देती है। उसका साँवला रंग और शारीरिक भिन्नता उसके मूल्यांकन का आधार बनते हैं। सुमेर और उसकी माँ के बीच हुई बातचीत में शीलो को लेकर सुमेर की दृष्टि स्पष्ट रूप से सामने आती है। वह कहता है– "तुम्हारी छह उंगलियां वाली कल्लू बहु मेरे दोस्त को रोटी परोसने ही आ जाती, ''''' काले गोरे दो रंग.....पर तुम्हारी बहू तो नीली है, बैंगनी।"[1]

अपने ही पति के मुँह से अपने रूप–रंग के बारे में ऐसे शब्द सुनना शीलो के लिए गहरे आघात का अनुभव है। जिस व्यक्ति से वह प्रेम और स्वीकार की अपेक्षा करती है, उसी के शब्द उसके आत्मसम्मान को चोट पहुँचाते हैं। उस समय उसके मन में उठने वाली पीड़ा और अपमान का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। यहाँ समस्या शीलो के साँवले रंग या शारीरिक भिन्नता में नहीं, बल्कि उस मानसिकता में है जो स्त्री के व्यक्तित्व और संवेदनाओं को पीछे रखकर उसके बाहरी रूप को ही उसके मूल्य की कसौटी बना देती है।

शीलो के गुणों और समर्पण के बावजूद सुमेर उसे स्वीकार नहीं करता। उसकी लगातार उपेक्षा और तिरस्कार शीलो को भीतर तक आहत करते हैं। फिर भी आरंभ में वह इसका खुला विरोध नहीं करती। वह अपने विवाह को बचाना चाहती है और सुमेर को पुनः प्राप्त करने की आशा भी रखती है। लेकिन बार–बार मिलने वाली अस्वीकृति उसके भीतर धीरे–धीरे बदलाव लाती है। जिस स्वीकृति को वह अपने सम्मान का आधार मान रही थी, उसके न मिलने पर वह अपने जीवन को दूसरे ढंग से देखने लगती है। अब तक वह स्वयं को सुमेर की दृष्टि से देख रही थी, धीरे–धीरे वह अपने जीवन को अपनी दृष्टि से समझने लगती है। यहीं से उसकी अस्मिता की वास्तविक यात्रा आरंभ होती है।

इसी परिस्थिति में सुमेर और बालकिशन की माँ, जो शीलो की सास भी है, बालकिशन को शीलो के सहारे छोड़ देती है। बालकिशन शीलो से लगभग पाँच वर्ष छोटा उसका देवर है। परिस्थितियाँ दोनों को एक–दूसरे के निकट लाती हैं और शीलो धीरे–धीरे उसे अपने जीवन–साथी के रूप में स्वीकार करती है। उसके जीवन

में एक नया संबंध बनता है, लेकिन इस बार वह अपने जीवन को पूरी तरह समाज द्वारा निर्धारित शर्तों पर जीने के लिए तैयार नहीं है।

बालकिशन को जीवन–साथी के रूप में स्वीकार करना और 'बछिया' की रस्म के माध्यम से उसके साथ परंपरागत वैवाहिक बंधन में बँधना शीलो के लिए एक ही बात नहीं है। सुमेर के साथ विवाह में मिले तिरस्कार और अस्वीकृति ने विवाह की रस्मों के प्रति उसके विश्वास को गहराई से प्रभावित किया है। सात फेरे, अग्नि को साक्षी मानकर लिए गए वचन और समाज की स्वीकृति भी उसके वैवाहिक संबंध को बचा नहीं सके। इसी अनुभव से उपजा उसका प्रश्न अत्यंत अर्थपूर्ण है –

"जो सात भाँवरें, अगिन साच्छी और बरातियों के आगे वचन भरकर संगी मुझे त्याग गया, तो अछिया–बछिया का क्या विश्वास करूँ?"[2]

शीलो का यह प्रश्न उसके अपने जीवन के कटु अनुभव से निकला है। जब पूरे रीति–विधान से हुआ विवाह भी उसे पति का साथ, सम्मान और सुरक्षा नहीं दे सका, तब केवल एक और रस्म किसी संबंध की स्थिरता का भरोसा कैसे दे सकती है? इसलिए 'बछिया' से उसका इनकार केवल परंपरा का विरोध नहीं है। वह बालकिशन को जीवन–साथी के रूप में स्वीकार करती है, लेकिन अपने संबंध की सच्चाई और स्थिरता को किसी रस्म के प्रमाण पर निर्भर नहीं करना चाहती। यही सोच आगे उसके इस कथन में और स्पष्ट होती है– "अम्माजी, रीत–रस्म लिखा हुआ रुक्का तो नहीं होती।"[3]

शीलो के लिए कोई रस्म केवल इसलिए मान लेने योग्य नहीं है कि वह वर्षों से चली आ रही है। अपने अनुभव से वह समझ चुकी है कि संबंध की वास्तविकता केवल रस्मों से तय नहीं होती। उसके लिए साथ, स्वीकार और आपसी विश्वास कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

शीलो अपने निर्णय के सामाजिक परिणामों से भी अनजान नहीं है। वह जानती है कि 'बछिया' की रस्म न करने और बालकिशन के साथ रहने पर गाँव में उसके चरित्र को लेकर सवाल उठ सकते हैं। बात पंचायत तक पहुँचती है, फिर भी वह पीछे नहीं हटती। उसके सामने सीधा–सा प्रश्न है– दो व्यक्तियों के निजी संबंध का निर्णय कोई तीसरा व्यक्ति या पूरा समुदाय क्यों करे? इस प्रश्न के साथ शीलो केवल एक रस्म का विरोध नहीं करती, बल्कि अपने निजी जीवन में समाज के हस्तक्षेप की सीमा भी तय करना चाहती है।

यहाँ शीलो की स्वतंत्रता को स्वच्छंदता के अर्थ में नहीं देखा जा सकता। बालकिशन को जीवन–साथी के रूप में स्वीकार करने के बाद वह उसी संबंध को बनाए रखती है। उसका विरोध संबंध से नहीं है, उसका विरोध इस बात से है कि किसी सामाजिक रस्म को पूरा किए बिना उस संबंध को स्वीकार्य ही न माना जाए। वह अपने संबंध, अपनी देह और अपने जीवन के बारे में स्वयं निर्णय लेना चाहती है। इसलिए 'बछिया' से उसका इनकार संबंधों से मुक्ति की इच्छा नहीं, बल्कि संबंध के भीतर अपने निर्णय की स्वतंत्रता को बचाए रखने का प्रयास है। विवाह के प्रति उसकी अपनी समझ इस कथन में और साफ दिखाई देती है– "ब्याह तो तन–मन का होता है।"[4]

शीलो के लिए विवाह केवल सामाजिक रस्म या बाहरी स्वीकृति का नाम नहीं है। वह दो व्यक्तियों के मन, इच्छा और सहभागिता का संबंध है। यदि विवाह दो मनुष्यों के बीच का संबंध है तो उसमें स्त्री की इच्छा और सम्मान भी उतने ही महत्त्वपूर्ण होने चाहिए जितने पुरुष के। शीलो विवाह का निषेध नहीं करती, वह ऐसी

व्यवस्था का विरोध करती है जिसमें विवाह के नाम पर स्त्री से समर्पण की अपेक्षा तो की जाए, लेकिन उसके अपने निर्णय को समान महत्त्व न मिले।

यहीं शीलो का विरोध आत्मनिर्णय में बदलता दिखाई देता है। 'बछिया' से इनकार करना उसका प्रतिरोध है, लेकिन बालकिशन के साथ अपने संबंध का स्वरूप स्वयं तय करना उसका आत्मनिर्णय। वह केवल यह नहीं बताती कि उसे क्या स्वीकार नहीं हैय वह यह भी तय करती है कि उसे क्या स्वीकार है और किस रूप में स्वीकार है।

शीलो की चेतना स्त्री और पुरुष के लिए बनाए गए अलग–अलग नैतिक मानदंडों पर भी सवाल उठाती है। सुमेर के विवाहेतर संबंध को जिस सामाजिक सहजता से स्वीकार किया जाता है, उसी प्रकार की स्वतंत्रता शीलो के संदर्भ में नैतिकता और चरित्र का प्रश्न बना दी जाती है। शीलो इस दोहरे व्यवहार को पहचानती है और सुमेर के सामने उसी के तर्क को पलटकर रख देती है–

"बालकिशन तो ऐसे ही है हमारे लिए, जैसे तुम्हारे लिए तुम्हारी दूसरी औरत। बिन ब्याही, मनमर्जी की।"[5]

यहाँ पहले वाली शीलो और अब की शीलो के बीच का अंतर साफ दिखाई देता है। अब वह अपने निर्णय के लिए अपराधबोध के साथ सफाई नहीं देती। वह सीधा प्रश्न उठाती है कि यदि पुरुष के निजी संबंध को समाज स्वीकार कर सकता है तो स्त्री के लिए दूसरी कसौटी क्यों? उसका व्यक्तिगत अनुभव यहाँ स्त्री और पुरुष के लिए बनी अलग–अलग सामाजिक मर्यादाओं पर प्रश्न बनकर सामने आता है।

यह असमानता केवल पुरुष और स्त्री के बीच ही नहीं, परिवार के भीतर भी दिखाई देती है। पितृसत्तात्मक मूल्य केवल पुरुषों के व्यवहार से आगे नहीं बढ़ते, कई बार पीढ़ियों से चली आ रही मान्यताओं को स्त्रियाँ भी अनजाने में आगे बढ़ाती रहती हैं। बेटे के लिए एक नियम और बहू के लिए दूसरा नियम इसी सोच का परिणाम है। शीलो इस विरोधाभास को पहचानती है और खुलकर कहती है– "ऐ काकी जी, पुलिसिया बेटा की बछिया की पोत खा ली? पूछा नहीं कि बरकट्टा ब्याही है या रखैल? बेटों के चलते रस्म–रीत भूलकर बहुओं की पीठों के लिए कोड़े लिए फिरती हो तुम बूढ़ी जनी!"[6]

शीलो की भाषा में ग्रामीण जीवन की स्वाभाविक तीक्ष्णता है। यह केवल सास से की गई व्यक्तिगत शिकायत नहीं है। वह उस सोच पर चोट करती है जिसमें बेटे के लिए स्वीकार की गई बात बहू के लिए परिवार की प्रतिष्ठा और नैतिकता का प्रश्न बन जाती है। आरंभ में बहुत कुछ सह लेने वाली शीलो अब ऐसी असमानता को चुपचाप स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। इसी संदर्भ में शीलो के संबंध में खगेन्द्र ठाकुर की यह टिप्पणी सार्थक है– "यह उत्तर है एक गंवई औरत का, लेकिन जनतांत्रिक अधिकार के प्रति जागरूक और समर्थ औरत का।"[7]

शीलो की अधिकार–चेतना किसी औपचारिक शिक्षा या सैद्धांतिक ज्ञान से पैदा नहीं होती। जीवन में जो कुछ उसने सहा और देखा है, वही उसे सही और गलत के बीच अंतर करना सिखाता है। इसलिए उसकी ग्रामीणता उसकी आधुनिक चेतना में बाधा नहीं बनती। वह गाँव में रहते हुए, उसी जीवन और भाषा के बीच अपनी स्वतंत्र सोच विकसित करती है।

पुरानी मान्यताओं को लेकर उसका बदलता नजरिया उसके इस कथन में भी सामने आता है –

"बूढ़े जमाने उखड़ेंगे नहीं, तो नया बखत आएगा कैसे।"[8] 'बूढ़ा जमाना' यहाँ केवल पिछली पीढ़ी नहीं,

बल्कि उन जड़ मान्यताओं की ओर भी संकेत करता है जो बदलते समय में भी स्त्री को पुराने नियमों से बाँधे रखना चाहती हैं। शीलो जिस 'नए बखत' की बात करती है, उसमें समय के साथ सोच का बदलना भी शामिल है। उसकी आधुनिकता शहर या उच्च शिक्षा से नहीं आती। वह अपने अनुभवों से विकसित हुई आधुनिक चेतना है।

शीलो के 'बछिया' की रस्म न करने के निर्णय में एक व्यावहारिक पक्ष भी दिखाई देता है। सुमेर से उसका वैवाहिक संबंध समाप्त नहीं हुआ है और दूसरी ओर बालकिशन को वह अपने जीवन–साथी के रूप में स्वीकार करती है। ऐसी स्थिति में परिवार, संपत्ति और अपने भविष्य से जुड़े प्रश्न भी उसके सामने हैं। इसलिए उसके निर्णय को केवल भावनात्मक प्रतिक्रिया या रूढ़ि–विरोध कह देना पर्याप्त नहीं होगा। उसमें अपने अधिकार और भविष्य को लेकर एक व्यावहारिक सजगता भी है।

जमीन–जायदाद की बात आने पर यह सजगता और साफ हो जाती है। शीलो भावनात्मक संबंध और संपत्ति के प्रश्न को एक–दूसरे में मिला नहीं देती। वह कहती है– "जमीन–जायदाद की बात रहने दो कि यह मामला तो अब भी हमारे–तुम्हारे बीच ही है। बालकिशन सिर्फ अपने हिस्से का मालिक है।"[9]

यह कथन शीलो की आर्थिक चेतना को बहुत स्पष्ट रूप से सामने लाता है। बालकिशन को जीवन–साथी के रूप में स्वीकार कर लेने के बावजूद वह सुमेर से जुड़े अपने अधिकार को समाप्त नहीं मानती। साथ ही वह यह भी समझती है कि बालकिशन का अपना हिस्सा और आर्थिक अस्तित्व अलग है। इस तरह प्रेम, साथ और संपत्ति– तीनों को वह एक ही भावनात्मक धरातल पर नहीं रखती। अपने भविष्य और आर्थिक हितों के प्रति उसकी यह सजगता उसके आत्मनिर्णय को अधिक व्यावहारिक आधार देती है।

स्त्री की स्वतंत्रता के संदर्भ में यह आर्थिक चेतना बहुत महत्त्वपूर्ण है। अपने निजी जीवन का निर्णय स्वयं लेना तभी पूरी तरह सार्थक हो सकता है जब स्त्री अपने श्रम, संपत्ति और आर्थिक हितों के प्रति भी सजग हो। शीलो की चेतना इसी दिशा में आगे बढ़ती है। उसका संघर्ष पति की स्वीकृति पाने से शुरू होकर जीवन की ठोस परिस्थितियों में अपने अधिकार को पहचानने तक पहुँचता है।

शीलो के इसी रूप के संबंध में आलोचनात्मक मत है– "शीलो जैसी नारी का शोषण कोई नहीं कर सकता। वह बराबरी हासिल कर लेती है..... ।"[10]

यहाँ बराबरी केवल पुरुष के सामने बोल पाने तक सीमित नहीं है। शीलो अब स्वयं को अपने जीवन के निर्णयों में बराबर का पक्ष मानती है। वह अपने हित को पहचानती है और उसे बचाए रखने के लिए व्यावहारिक निर्णय भी लेती है। उसका चरित्र इसलिए केवल विरोध करने वाली स्त्री तक सीमित नहीं रहताय वह अपने जीवन को अपनी समझ से सँभालने वाली स्त्री के रूप में सामने आती है।

उसकी आर्थिक सजगता केवल जमीन–जायदाद तक सीमित नहीं रहती। खेती–बाड़ी और कृषि से जुड़े मामलों में भी उसकी सक्रियता दिखाई देती है। ग्रामीण स्त्री घर और खेत दोनों जगह श्रम करती है, लेकिन उसके श्रम के अनुपात में निर्णय का अधिकार हमेशा उसे नहीं मिलता। शीलो इस स्थिति को बदलती हुई दिखाई देती है। वह केवल श्रम करने वाली स्त्री नहीं रहती, बल्कि उत्पादन और आर्थिक जीवन में अपनी राय और हित को पहचानने लगती है। यहाँ अस्मिता सीधे जीवन की वास्तविक आर्थिक परिस्थितियों से जुड़ जाती है।

शीलो की अस्मिता को केवल उसकी देह या बाहरी रूप के संदर्भ में नहीं समझा जा सकता। उपन्यास के आरंभ में उसका रूप और उसकी शारीरिक भिन्नता उसके तिरस्कार का कारण बनते हैं, किंतु आगे चलकर

उसकी पहचान उसके आत्मसम्मान, श्रम, अधिकार–बोध, आर्थिक सजगता और निर्णय–क्षमता से निर्मित होती है। जिस स्त्री को कभी उसके रूप–रंग के आधार पर अस्वीकार किया गया था, वही आगे चलकर अपने संबंधों, अधिकारों और भविष्य के विषय में स्वयं निर्णय लेने लगती है। इस अर्थ में देह उसकी अस्मिता का एक पक्ष है, उसकी संपूर्ण पहचान नहीं।

शीलो की मुक्ति का अर्थ अपनी देह से मुक्ति नहीं है। वह अपनी देह सहित अपने पूरे अस्तित्व को स्वीकार करती है और उसके बारे में निर्णय लेने का अधिकार भी अपने पास रखना चाहती है। आरंभ में जिस बाहरी रूप को उसके मूल्य की कसौटी बना दिया गया था, आगे चलकर वही शीलो अपने जीवन से दिखाती है कि उसकी पहचान रूप–रंग से कहीं अधिक व्यापक है। उसका श्रम, संवेदना, विवेक, अधिकार–बोध और निर्णय लेने की क्षमता भी उसके व्यक्तित्व के हिस्से हैं।

यहीं शीलो की स्वतंत्रता और स्वच्छंदता के बीच का अंतर भी समझ में आता है। सामाजिक नियमों को चुनौती देने का अर्थ उसके लिए सभी संबंधों और उत्तरदायित्वों को अस्वीकार करना नहीं है। बालकिशन को स्वीकार करने के बाद वह उसी संबंध में बनी रहती है। उसकी माँग इतनी है कि उसके निजी जीवन और देह के विषय में अंतिम निर्णय उसका अपना हो। इस तरह उसकी स्वतंत्रता संबंधों को तोड़ने में नहीं, बल्कि संबंधों के भीतर अपने सम्मान और निर्णयाधिकार को बनाए रखने में दिखाई देती है।

शीलो का व्यक्तित्व इसीलिए जीवंत लगता है कि वह उपन्यास के आरंभ से अंत तक एक जैसी नहीं रहती। पति की स्वीकृति चाहने वाली सहनशील स्त्री जीवन की कठिन परिस्थितियों से गुजरते हुए प्रश्न करना सीखती है। ये प्रश्न उसे प्रतिरोध तक ले जाते हैं और धीरे–धीरे वही प्रतिरोध आत्मनिर्णय में बदलता है। यह बदलाव अचानक नहीं आता। उसके पीछे अस्वीकृति, अपमान, अनुभव, श्रम और जीवन की व्यावहारिक आवश्यकताएँ हैं।

मैत्रेयी पुष्पा शीलो को किसी आदर्श नारी की प्रतिमा नहीं बनातीं। उसमें आक्रोश भी है, व्यावहारिकता भी, कभी–कभी कठोरता भी और अपने हित को लेकर सजगता भी। यही बातें उसे अधिक मानवीय बनाती हैं। स्त्री–अस्मिता का अर्थ स्त्री को किसी नए आदर्श साँचे में ढालना नहीं, बल्कि उसे उसकी विशेषताओं, सीमाओं और अंतर्विरोधों सहित स्वतंत्र मनुष्य के रूप में स्वीकार करना है।

इसलिए शीलो के प्रत्येक निर्णय से सहमत होना उसके चरित्र को समझने की शर्त नहीं है। अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या उसे अपने जीवन का निर्णय स्वयं लेने का अधिकार है। 'झूलानट' इसी प्रश्न के माध्यम से सामाजिक नैतिकता और स्त्री की स्वतंत्रता को नए ढंग से देखने के लिए प्रेरित करता है। शीलो की यात्रा बताती है कि स्त्री–अस्मिता केवल समाज के विरुद्ध खड़े होने में नहीं है, अपने भीतर यह विश्वास पैदा करना भी उसका हिस्सा है कि उसके जीवन, श्रम, संबंध और भविष्य के बारे में उसकी अपनी इच्छा और निर्णय का भी मूल्य है।

निष्कर्ष :

मैत्रेयी पुष्पा के 'झूलानट' में शीलो की चरित्र–यात्रा स्त्री–अस्मिता के क्रमिक विकास को सामने लाती है। उपन्यास के आरंभ में वह सहनशील, धैर्यवान और अपने वैवाहिक संबंध के प्रति समर्पित स्त्री है। वह सुमेर से प्रेम और स्वीकार की अपेक्षा करती है तथा अपने विवाह को बचाने का प्रयास करती है। लेकिन उसके गुणों और

समर्पण को देखने के बजाय जब उसके बाहरी रूप और शारीरिक भिन्नता के आधार पर उसका तिरस्कार किया जाता है, तो यही अनुभव धीरे–धीरे उसके भीतर बदलाव की जमीन तैयार करता है।

बालकिशन के साथ उसका संबंध इसी बदली हुई जीवन–स्थिति में विकसित होता है। सुमेर के साथ पूरे रीति–विधान से हुआ विवाह भी उसे साथ और सम्मान नहीं दे सका। इसलिए केवल किसी रस्म को संबंध की स्थिरता का प्रमाण मान लेना उसके लिए सहज नहीं रह जाता। वह बालकिशन को जीवन–साथी के रूप में स्वीकार करती है, लेकिन 'बछिया' की रस्म के माध्यम से फिर से एक रूढ़ वैवाहिक बंधन में बँधना स्वीकार नहीं करती। गाँव और पंचायत के सवालों के बावजूद अपने निर्णय पर बने रहना उसकी बदलती चेतना का संकेत है। यहाँ उसकी स्वतंत्रता स्वच्छंदता नहीं, बल्कि अपने निजी जीवन के विषय में स्वयं निर्णय लेने के अधिकार के रूप में सामने आती है।

शीलो का संघर्ष विवाह और निजी संबंधों से आगे भी जाता है। स्त्री और पुरुष के लिए अलग–अलग नैतिक मानदंडों पर प्रश्न उठाना, परिवार के भीतर मौजूद असमानता को पहचानना और जमीन–जायदाद तथा आर्थिक हितों के प्रति सजग रहना उसकी अस्मिता को व्यापक बनाता है। वह केवल भावनात्मक स्वतंत्रता नहीं चाहतीय जीवन की वास्तविक परिस्थितियों में भी अपने अधिकार और हिस्सेदारी को पहचानती है।

इसीलिए शीलो की अस्मिता को केवल देह, प्रेम या विवाह के किसी एक प्रश्न में सीमित नहीं किया जा सकता। उसके साथ श्रम, आर्थिक चेतना, आत्मसम्मान, संबंधों में समानता और निर्णय का अधिकार भी जुड़े हैं। वह संबंधों से भागती नहीं है। वह उन्हीं संबंधों के भीतर अपनी स्वतंत्र मानवीय उपस्थिति चाहती है।

अंततः शीलो की यात्रा अस्वीकृति से आत्मस्वीकृति, मौन से प्रश्न, प्रश्न से प्रतिरोध, प्रतिरोध से अधिकार–बोध और अधिकार–बोध से आत्मनिर्णय की यात्रा बन जाती है। आरंभ में जो स्त्री अपने अस्तित्व की पुष्टि पति की स्वीकृति में खोजती है, वही आगे चलकर अपने जीवन की शर्तें स्वयं तय करने लगती है। मैत्रेयी पुष्पा शीलो के माध्यम से ऐसी ग्रामीण स्त्री को सामने लाती हैं जो अपने परिवेश और संबंधों के बीच रहते हुए अपनी चेतना विकसित करती है और अपने सम्मान, अधिकार तथा निर्णय की स्वतंत्रता के लिए स्वयं जगह बनाती है। यही 'झूलानट' के अस्मिता–विमर्श की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

संदर्भ–टिप्पणियाँ :

1. पुष्पा, मैत्रेयी, झूलानट, पृ. 37।
2. पुष्पा, मैत्रेयी, झूलानट, पृ. 114।
3. पुष्पा, मैत्रेयी, झूलानट, पृ. 75।
4. पुष्पा, मैत्रेयी, झूलानट, पृ. 95।
5. पुष्पा, मैत्रेयी, झूलानट, पृ. 122।
6. पुष्पा, मैत्रेयी, झूलानट, पृ. 80।
7. कथा, अंक 10, फरवरी 2000, पृ. 207।
8. पुष्पा, मैत्रेयी, झूलानट, पृ. 115।

9. पुष्पा, मैत्रेयी, झूलानट, पृ. 112।
10. दीक्षित, दया (संपा.), मैत्रेयी पुष्पा : तथ्य और सत्य, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली : सामयिक बुक्स, 2010, पृ. 36।

संदर्भ-ग्रन्थ सूची :

1. पुष्पा, मैत्रेयी. झूलानट. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
2. कथा. अंक 10, फरवरी 2000।
3. दीक्षित, दया (संपा.). मैत्रेयी पुष्पा : तथ्य और सत्य. प्रथम संस्करण. नई दिल्ली : सामयिक बुक्स, 2010।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2026 Page No. : 207-212

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

सूरदास के काव्य में भक्ति आंदोलन की वैचारिक चेतना : एक आलोचनात्मक अध्ययन

डॉ. अनीता मीना

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग,

शहीद कैप्टन रिपुदमन सिंह राजकीय महाविद्यालय, सवाई माधोपुर (राजस्थान)

सारांश :

प्रस्तुत शोध–पत्र में सूरदास के काव्य में अभिव्यक्त भक्ति आंदोलन की वैचारिक चेतना का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। सूरदास सगुण कृष्ण–भक्ति धारा के प्रमुख कवि हैं, जिनके काव्य में प्रेम, समर्पण, वात्सल्य, विरह और मानवीय संवेदनाओं की प्रभावशाली अभिव्यक्ति मिलती है। उन्होंने ब्रजभाषा के माध्यम से भक्ति को लोकजीवन एवं लोकसंस्कृति से जोड़ा। उनके काव्य में ईश्वर और भक्त के आत्मीय संबंध के साथ सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना भी दिखाई देती है। प्रस्तुत अध्ययन में कृष्ण–भक्ति, लोकचेतना, मानवतावादी दृष्टि तथा प्रेम–प्रधान भक्ति के विविध आयामों का विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्द : सूरदास, भक्ति आंदोलन, कृष्ण–भक्ति, वैचारिक चेतना, सगुण भक्ति, प्रेम, लोकचेतना, मानवतावाद, ब्रजभाषा, भक्तिकाल।

प्रस्तावना :

भारतीय साहित्य और संस्कृति में भक्ति आंदोलन का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। मध्यकालीन भारतीय समाज में धार्मिक आडंबर, सामाजिक विषमता और रूढ़ियों के बीच भक्ति ने ईश्वर से व्यक्तिगत संबंध, प्रेम, समर्पण और आत्मानुभूति का मार्ग प्रस्तुत किया। हिंदी साहित्य के भक्तिकाल में कबीर, तुलसीदास, सूरदास और मीरा जैसे कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से भक्ति को व्यापक लोकजीवन से जोड़ा। भक्ति की मूल भावना को व्यक्त करते हुए कहा गया है– "**सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा**", अर्थात् ईश्वर के प्रति परम प्रेम ही भक्ति है।

भक्तिकाल की सगुण भक्ति धारा में रामभक्ति और कृष्णभक्ति दो प्रमुख धाराएँ विकसित हुईं। कृष्णभक्ति परंपरा में सूरदास का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनके काव्य में बालकृष्ण की लीलाओं, यशोदा के वात्सल्य, गोपियों के प्रेम तथा विरह की मार्मिक अनुभूतियों के माध्यम से भक्ति को भावात्मक और मानवीय स्वर प्राप्त हुआ। सूरदास की प्रसिद्ध पंक्ति "**मैया! मोहि दाऊ बहुत खिझायो**" बाल–कृष्ण की सहज मानवीय छवि को सामने लाती है।

सूरदास ने ब्रजभाषा को माध्यम बनाकर कृष्ण–भक्ति को लोकसंस्कृति और जनजीवन से जोड़ा। अतः उनके काव्य में भक्ति आंदोलन की वैचारिक, सांस्कृतिक और मानवीय चेतना का अध्ययन साहित्यिक दृष्टि से

अत्यंत प्रासंगिक है। प्रस्तुत शोध इसी चेतना के विविध आयामों का आलोचनात्मक विश्लेषण करता है।

शोध के उद्देश्य :

प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य सूरदास के काव्य में अभिव्यक्त भक्ति आंदोलन की वैचारिक चेतना का विश्लेषण करना है। इसके अंतर्गत सूरदास की कृष्ण–भक्ति के मूल स्वरूप एवं प्रमुख विचारों को स्पष्ट किया जाएगा। साथ ही उनके काव्य में प्रेम, भक्ति, समर्पण, विरह और मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का अध्ययन किया जाएगा। शोध में सूरदास के काव्य में निहित सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना को रेखांकित करते हुए भक्ति आंदोलन की व्यापक विचारधारा के संदर्भ में उनकी काव्य–दृष्टि का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया जाएगा।

भक्ति आंदोलन : वैचारिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि :

मध्यकालीन भारतीय समाज अनेक प्रकार की धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जटिलताओं से प्रभावित था। जातिगत विभाजन, धार्मिक रूढ़ियाँ, कर्मकांड तथा बाह्य आडंबरों के बीच ऐसी आध्यात्मिक चेतना की आवश्यकता अनुभव की गई जिसमें व्यक्ति अपने व्यक्तिगत प्रेम और विश्वास के माध्यम से ईश्वर से संबंध स्थापित कर सके। इसी व्यापक सांस्कृतिक परिवेश में भक्ति की विभिन्न धाराओं का विकास हुआ। दक्षिण भारत की भक्ति परंपराओं से लेकर उत्तर भारत के संत एवं भक्त कवियों तक इसकी विचारधारा का विस्तार हुआ।

भक्ति का मूल आधार ईश्वर के प्रति प्रेम, श्रद्धा और आत्मसमर्पण है। नारद भक्ति सूत्र में कहा गया है– "**सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा**", अर्थात् भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेम का स्वरूप है। इस दृष्टि से भक्ति केवल धार्मिक साधना न रहकर आत्मानुभूति और भावात्मक चेतना का माध्यम बन गई। भक्ति आंदोलन की प्रमुख विशेषताओं में ईश्वर के प्रति प्रेम और समर्पण, व्यक्तिगत साधना तथा आत्मानुभूति प्रमुख हैं। भक्त कवियों ने लोकभाषाओं में रचना करके धार्मिक एवं आध्यात्मिक विचारों को सामान्य जन तक पहुँचाया। संस्कृत के स्थान पर ब्रज, अवधी, राजस्थानी, पंजाबी आदि लोकभाषाओं में साहित्य–सृजन हुआ। भक्ति में बाहरी कर्मकांड की अपेक्षा आंतरिक भाव, प्रेम और श्रद्धा को अधिक महत्व मिला।

गीता में भी भक्ति और समर्पण की भावना को व्यक्त करते हुए कहा गया है– "**मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरू।**" अर्थात् मन को ईश्वर में लगाकर भक्तिभाव से उसकी उपासना करनी चाहिए। इस प्रकार भक्ति आंदोलन लोकजीवन, मानवीय संवेदना और आध्यात्मिक अनुभव से गहराई से जुड़ा रहा।

भक्तिकाव्य में मुख्यतः निर्गुण और सगुण दो धाराएँ दिखाई देती हैं। निर्गुण भक्ति में निराकार, निर्गुण और अगोचर परम सत्ता की उपासना पर बल दिया गया, जबकि सगुण भक्ति में ईश्वर को साकार रूप में स्वीकार किया गया। सगुण धारा में रामभक्ति और कृष्णभक्ति विशेष रूप से विकसित हुईं।

कृष्ण–भक्ति परंपरा में कृष्ण को प्रेम, माधुर्य, वात्सल्य और करुणा के केंद्र के रूप में प्रस्तुत किया गया। इसी परंपरा में सूरदास का महत्वपूर्ण स्थान है। वल्लभाचार्य द्वारा प्रवर्तित पुष्टिमार्ग में ईश्वर की कृपा तथा प्रेमपूर्ण सेवा को विशेष महत्व मिला। सूरदास इसी परंपरा से संबद्ध माने जाते हैं। उनके काव्य में बालकृष्ण की लीलाएँ, गोपियों का प्रेम, यशोदा का वात्सल्य और विरह–भाव भक्ति को अत्यंत मानवीय एवं भावात्मक रूप प्रदान करते हैं। इस प्रकार सूरदास का काव्य भक्ति आंदोलन की प्रेमप्रधान चेतना का सशक्त प्रतिनिधित्व करता है।

सूरदास की प्रमुख रचनाओं में 'सूरसागर', 'सूरसारावली' और 'साहित्य–लहरी' का उल्लेख किया जाता है। सूरसागर में कृष्ण की बाल–लीलाओं, गोपी–प्रेम, विरह तथा भक्तिभाव का अत्यंत मार्मिक चित्रण मिलता है।

सूरसारावली में भक्ति एवं दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति दिखाई देती है, जबकि साहित्य–लहरी में काव्यशास्त्रीय एवं भक्तिपरक तत्वों का समन्वय मिलता है। गोपियों का कृष्ण के प्रति प्रेम, समर्पण और विरह सूरदास की भक्ति–दृष्टि को गहराई प्रदान करता है। इस प्रकार उनका काव्य प्रेम, भक्ति और मानवीय संवेदना का सुंदर समन्वय प्रस्तुत करता है।

सूरदास के काव्य में भक्ति आंदोलन की वैचारिक चेतना :

सूरदास का काव्य केवल कृष्ण–लीलाओं का भावात्मक चित्रण नहीं है, बल्कि उसमें भक्ति आंदोलन की प्रेमप्रधान, लोकाभिमुख और मानवीय चेतना भी अभिव्यक्त होती है। उनकी भक्ति में ईश्वर और भक्त के बीच आत्मीय संबंध स्थापित होता है। भगवद्गीता में कहा गया है– "**भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः**", अर्थात् भक्ति के माध्यम से ही परमात्मा के वास्तविक स्वरूप को जाना जा सकता है। सूरदास इसी प्रेम और भक्ति को अपने काव्य का आधार बनाते हैं।

सूरदास के काव्य में कृष्ण के प्रति निष्काम प्रेम और पूर्ण समर्पण प्रमुख भाव हैं। गोपियों का कृष्ण के प्रति प्रेम सांसारिक आकर्षण से ऊपर उठकर आध्यात्मिक अनुभूति का रूप धारण करता है। भक्त अपने अहंकार का त्याग करके भगवान के प्रति समर्पित होता है। कृष्ण और भक्त के बीच माता–पुत्र, सखा तथा प्रेमी–प्रेमिका जैसे आत्मीय संबंधों की स्थापना इसी भाव को गहराई प्रदान करती है।

सूरदास ने ब्रजभाषा को अपनी काव्याभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। उनकी भाषा में लोकजीवन के शब्द, मुहावरे, संबोधन और बोलचाल की सहजता दिखाई देती है। इसी कारण उनका काव्य जनसामान्य के निकट पहुँच सका। उनका प्रसिद्ध पद– "**मैया! मोहि दाऊ बहुत खिझायो**" लोकभाषा की सहजता और बाल–मनोविज्ञान की स्वाभाविक अभिव्यक्ति का सुंदर उदाहरण है। लोकभाषा के प्रयोग ने भक्ति को जनसुलभ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

सूरदास के काव्य में बाहरी ज्ञान और कर्मकांड की अपेक्षा भाव, प्रेम और आत्मीय अनुभूति को विशेष महत्व प्राप्त है। भ्रमरगीत में गोपियों की प्रेममय भक्ति और उद्धव के ज्ञानमार्ग के बीच जो वैचारिक अंतर प्रस्तुत होता है, वह भावप्रधान भक्ति की महत्ता को स्पष्ट करता है। यहाँ प्रेम केवल भावुकता नहीं, बल्कि ईश्वर की अनुभूति का माध्यम है। इस दृष्टि से सूरदास की भक्ति सहज, आत्मीय और अनुभवपरक है।

सूरदास के काव्य में मानवीय संबंधों की गरिमा अत्यंत प्रभावशाली ढंग से व्यक्त हुई है। यशोदा–कृष्ण संबंध में मातृत्व, गोप–बालकों के प्रसंगों में सख्य और गोपियों के प्रेम में समर्पण एवं संवेदना दिखाई देती है। कृष्ण का बालरूप ईश्वर को सामान्य मानवीय जीवन के निकट ले आता है। इस प्रकार प्रेम, करुणा, वात्सल्य और सहानुभूति उनके काव्य की मानवतावादी चेतना को व्यापक बनाते हैं।

सूरदास के काव्य में ब्रज का सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन जीवंत रूप में चित्रित हुआ है। गोकुल और वृंदावन की ग्रामीण संस्कृति, लोकपरंपराएँ, उत्सव, पर्व, खेल, पारिवारिक संबंध और सामूहिक जीवन उनकी रचनाओं में बार–बार दिखाई देते हैं। इस प्रकार उनका काव्य केवल आध्यात्मिक अनुभूति का दस्तावेज नहीं, बल्कि तत्कालीन लोक–संस्कृति की स्मृति भी है। "सूरदास" ने कृष्ण–भक्ति को ब्रज के लोकजीवन से जोड़कर भक्ति आंदोलन की जनोन्मुख चेतना को सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की।

सूरदास के काव्य में कृष्ण-भक्ति का वैचारिक स्वरूप :

सूरदास के काव्य में कृष्ण–भक्ति बहुआयामी स्वरूप ग्रहण करती है। कृष्ण उनके लिए केवल धार्मिक आराध्य नहीं, बल्कि बालक, सखा, प्रियतम और भक्तों के जीवन के केंद्र हैं। उनकी भक्ति में प्रेम, वात्सल्य, सख्य, माधुर्य और विरह जैसे भावों का सुंदर समन्वय मिलता है। श्रीमद्भागवत में कहा गया है– "**स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे**", अर्थात् मनुष्य का श्रेष्ठ धर्म वह है जिससे परमात्मा के प्रति भक्ति उत्पन्न हो। सूरदास का काव्य इसी प्रेममय भक्ति को भावात्मक रूप प्रदान करता है।

सूरदास के काव्य की सबसे विशिष्ट विशेषताओं में बाल–कृष्ण की अवधारणा है। कृष्ण की बाल–लीलाओं के माध्यम से ईश्वर को अत्यंत मानवीय और सहज रूप में प्रस्तुत किया गया है। यशोदा का कृष्ण के प्रति वात्सल्य, उनकी बाल–सुलभ चंचलता और नटखटपन पाठक को ईश्वर के साथ आत्मीय संबंध स्थापित करने का अवसर देता है। "**मैया! मोहि दाऊ बहुत खिझायो**" जैसे पदों में बाल–मनोविज्ञान और मातृत्व की स्वाभाविक अभिव्यक्ति दिखाई देती है। यहाँ ईश्वर भक्त के लिए भय का नहीं, प्रेम और आत्मीयता का विषय बन जाता है। गोपियों और कृष्ण का संबंध सूरदास की माधुर्य–भक्ति का प्रमुख आधार है। गोपियों का कृष्ण के प्रति प्रेम पूर्ण समर्पण और आत्मविस्मृति का प्रतीक है। कृष्ण के वियोग में उनकी व्याकुलता प्रेम की गहनता को प्रकट करती है। यह प्रेम लौकिक धरातल से ऊपर उठकर आध्यात्मिक साधना का रूप ग्रहण करता है। गोपियों के लिए कृष्ण ही उनके जीवन का परम लक्ष्य हैं। इसलिए उनका प्रेम भक्ति, विरह और आत्मसमर्पण का समन्वित स्वरूप प्रस्तुत करता है।

भ्रमरगीत प्रसंग में उद्धव और गोपियों का संवाद ज्ञान तथा प्रेम के बीच वैचारिक अंतर को स्पष्ट करता है। उद्धव ज्ञान और योग का संदेश लेकर आते हैं, किंतु गोपियाँ अपने अनुभवजन्य प्रेम को अधिक महत्त्व देती हैं। उनका तर्क है कि कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम में ही उनकी आध्यात्मिक साधना पूर्ण होती है। इस प्रकार सूरदास प्रेम–प्रधान सगुण भक्ति की अनुभूति को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करते हैं।

सूरदास के काव्य में विरह प्रेम की गहराई का महत्वपूर्ण माध्यम है। कृष्ण के वियोग में गोपियों की व्याकुलता उनके अखंड प्रेम और आध्यात्मिक तन्मयता को व्यक्त करती है। विरह यहाँ केवल व्यक्तिगत पीड़ा नहीं, बल्कि भक्त और ईश्वर के बीच संबंध को अधिक गहन बनाने वाली अनुभूति है। भागवत की भक्ति–परंपरा में जिस प्रेममय स्मरण की प्रतिष्ठा है, सूरदास उसे विरह के माध्यम से अत्यंत मार्मिक बनाते हैं। इस प्रकार कृष्ण–भक्ति में प्रेम और विरह परस्पर पूरक होकर भक्त की आध्यात्मिक चेतना को उत्कर्ष प्रदान करते हैं।

सूरदास के काव्य में सामाजिक एवं मानवीय सरोकार :

सूरदास के काव्य की विशेषता केवल कृष्ण–भक्ति तक सीमित नहीं है, बल्कि उसमें व्यापक सामाजिक एवं मानवीय सरोकार भी अभिव्यक्त हुए हैं। उनके काव्य में स्त्री–पात्रों की भावनाओं, संवेदनाओं और आत्मीय अनुभवों को विशेष महत्व प्राप्त है। गोपियों के माध्यम से प्रेम, विरह, समर्पण और भावनात्मक स्वतंत्रता की सशक्त अभिव्यक्ति होती है। इसी प्रकार यशोदा के चरित्र के माध्यम से मातृत्व की गरिमा, ममता और वात्सल्य को अत्यंत स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत किया गया है।

सूरदास के काव्य में प्रेम, करुणा और सहानुभूति मानवीय जीवन के महत्वपूर्ण मूल्य बनकर सामने आते हैं। कृष्ण के बालरूप से जुड़े प्रसंगों में परिवार और समाज के सहज संबंधों का सुंदर चित्रण मिलता

है। माता–पुत्र, भाई–भाई, सखा–सखी तथा गोप–गोपियों के संबंधों में आत्मीयता और मानवीय संवेदना दिखाई देती है।

उनके काव्य में ब्रज के लोकजीवन और लोकसंस्कृति का भी विस्तृत चित्रण मिलता है। ग्रामीण परिवेश, उत्सव, पर्व, खेल, रीति–रिवाज और सामुदायिक जीवन के विविध प्रसंग सूरदास की काव्य–दृष्टि को लोकाभिमुख बनाते हैं। इस प्रकार सूरदास का काव्य भक्ति के साथ–साथ परिवार, समाज, लोकसंस्कृति और मानवीय संबंधों की गरिमा को स्थापित करने वाला महत्वपूर्ण साहित्यिक दस्तावेज बन जाता है।

सूरदास की काव्यभाषा और शिल्प :

सूरदास के काव्य की लोकप्रियता में उनकी भाषा और शिल्प का विशेष योगदान है। उन्होंने ब्रजभाषा को अपनी काव्याभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम बनाया और उसमें भक्ति, प्रेम, वात्सल्य तथा विरह जैसे सूक्ष्म भावों को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया। उनकी भाषा में लोकजीवन की सहजता और भावों की गहनता का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। श्रीमद्भागवत में भक्ति की भावना को व्यक्त करते हुए कहा गया है– **"श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्"।** सूरदास के पदों में श्रवण, कीर्तन और स्मरण की यही भक्तिपरक परंपरा गीतात्मक रूप में दिखाई देती है।

सूरदास की ब्रजभाषा सरल, मधुर, सरस और भावानुकूल है। उन्होंने लोक में प्रचलित शब्दों, मुहावरों और संबोधनों का सहज प्रयोग किया। उनकी भाषा में कृत्रिमता के स्थान पर बोलचाल की स्वाभाविकता है। इसी कारण कृष्ण की बाल–लीलाएँ, यशोदा का वात्सल्य और गोपियों का विरह पाठक के सामने जीवंत हो उठते हैं। ब्रजभाषा ने उनके काव्य को व्यापक लोकस्वीकृति प्रदान की।

सूरदास के काव्य में गीतात्मकता प्रमुख है। उनके पद गेय हैं और उनमें भावों की सहज अभिव्यक्ति मिलती है। भावप्रधानता के कारण पाठक सीधे पात्रों की अनुभूति से जुड़ जाता है। उनकी चित्रात्मक शैली कृष्ण की बाल–चेष्टाओं और ब्रज के प्राकृतिक वातावरण को सजीव बना देती है। संवाद शैली विशेष रूप से भ्रमरगीत में प्रभावशाली है। इसके अतिरिक्त उपमा, रूपक, अनुप्रास आदि अलंकारों तथा विविध बिंबों का प्रयोग काव्य–सौंदर्य को समृद्ध करता है।

सूरदास ने प्रतीकों और रूपकों के माध्यम से भक्ति के सूक्ष्म अनुभवों को व्यक्त किया है। कृष्ण परम आराध्य के प्रतीक हैं, जबकि गोपियों का प्रेम भक्त की अनन्य भक्ति का प्रतीक बन जाता है। प्रकृति, यमुना, कुंज, वर्षा और ऋतुओं से जुड़े बिंब प्रेम तथा विरह की अनुभूति को गहरा करते हैं। विशेष रूप से विरह–वर्णन में सूरदास ने पात्रों की मनःस्थितियों का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। इस प्रकार उनकी भाषा, शिल्प, प्रतीक–योजना और भावाभिव्यक्ति मिलकर कृष्ण–भक्ति को अत्यंत जीवंत और प्रभावशाली बनाते हैं।

निष्कर्ष :

अतः कहा जा सकता है कि सूरदास के काव्य में भक्ति आंदोलन की वैचारिक चेतना प्रेम, समर्पण, वात्सल्य, विरह और मानवीय संवेदना के रूप में अभिव्यक्त हुई है। उन्होंने कृष्ण–भक्ति को लोकभाषा और ब्रज संस्कृति से जोड़कर उसे व्यापक जनस्वीकृति प्रदान की। उनके काव्य में आध्यात्मिक अनुभूति के साथ सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन का जीवंत चित्रण मिलता है। यद्यपि उनका प्रमुख आग्रह प्रत्यक्ष सामाजिक परिवर्तन की अपेक्षा भावात्मक चेतना पर है, फिर भी उनका काव्य लोक और अध्यात्म के समन्वय का महत्वपूर्ण

उदाहरण है। इस दृष्टि से सूरदास भक्तिकालीन साहित्य के विशिष्ट प्रतिनिधि हैं।

संदर्भ ग्रंथ :

1. द्विवेदी, हजारीप्रसाद (2013) : हिंदी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन।
2. द्विवेदी, हजारीप्रसाद (2009) : सूर साहित्य, राजकमल प्रकाशन।
3. शुक्ल, रामचंद्र (2002) : हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा।
4. शुक्ल, रामचंद्र (2004) : चिंतामणि : भाग 1, नागरी प्रचारिणी सभा।
5. शर्मा, रामविलास (2000) : लोकजागरण और हिंदी साहित्य, राजकमल प्रकाशन।
6. वर्मा, रामकुमार (2007) : हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन।
7. सिंह, बच्चन (2001) : हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन।
8. सिंह, नामवर (2009) : दूसरी परंपरा की खोज, राजकमल प्रकाशन।
9. सूरदास (2008) : सूरसागर, गीताप्रेस।
10. सूरदास (2007) : सूरसारावली, नागरी प्रचारिणी सभा।
11. शर्मा, नगेन्द्र (2006) : भक्तिकालीन हिंदी साहित्य, साहित्य भवन।
12. त्रिपाठी, कृष्णदेव (2005) : सूरदास और उनका साहित्य, साहित्य भवन।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2026 Page No. : 213-216

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

भोपाल रियासत का विलीनीकरण आंदोलन तथा महिलाओं की भूमिका

कनिका गुप्ता

सहायक प्राध्यापक (इतिहास), शासकीय महाविद्यालय, नरवर शिवपुरी (म.प्र.)

सोनिया मंडलोई

सहायक प्राध्यापक (इतिहास), शहीद टंट्या मामा शासकीय महाविद्यालय, पंधाना, खण्डवा (म.प्र.)

सारांश –

भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात् देश के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती देशी रियासतों का भारत संघ में विलीनीकरण था। इस प्रक्रिया में अनेक रियासतों में जनांदोलन हुए, जिनमें भोपाल रियासत का विलीनीकरण आंदोलन भी उल्लेखनीय है। भोपाल रियासत ने 15 अगस्त 1947 के बाद भी भारत में विलय करने में विलंब किया, जिसके परिणामस्वरूप जनता में असंतोष उत्पन्न हुआ और संगठित जनआंदोलन का सूत्रपात हुआ। इस आंदोलन में पुरुषों के साथ–साथ महिलाओं की सक्रिय और निर्णायक भागीदारी देखने को मिलती है। भोपाल रियासत का विलय भारत में स्वतंत्रता के 659 दिनों बाद, अर्थात 1 जून 1949 को हुआ। यह विलय केवल प्राशासनिक बदलाव नहीं था, बल्कि एक लंबी संघर्षशील जनता की आवाज का परिणाम था।

प्रस्तुत आलेख का उद्देश्य भोपाल रियासत के विलीनीकरण आंदोलन के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, उसकी प्रकृति, तथा उसमें महिलाओं की भूमिका का विश्लेषण करना है। यह अध्ययन दर्शाता है कि किस प्रकार महिलाओं ने सामाजिक बंधनों को तोड़ते हुए राजनीतिक चेतना, साहस और नेतृत्व का परिचय दिया। आंदोलन के दौरान महिलाओं ने जुलूसों, सभाओं, सत्याग्रहों और दमन के प्रतिरोध में महत्वपूर्ण योगदान दिया। यह आलेख यह सिद्ध करता है कि भोपाल विलीनीकरण आंदोलन न केवल राजनीतिक संघर्ष था, बल्कि महिलाओं के सामाजिक.राजनीतिक सशक्तिकरण की दिशा में भी एक महत्वपूर्ण कदम था।

मुख्य शब्द –

भोपाल रियासत, विलीनीकरण आंदोलन, प्रजा मंडल, नवाबी शासन, महिलाओं की भूमिका, जन आंदोलन, राजनीतिक चेतना।

शोध पद्धति –

प्रस्तुत पत्र ऐतिहासिक एवं वर्णनात्मक शोध पद्धति पर आधारित है। इसमें मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है। द्वितीयक स्रोतों के अंतर्गत प्रकाशित पुस्तकें, शोध पत्र, पत्र–पत्रिकाएँ, ऐतिहासिक लेख

तथा विश्वसनीय संदर्भ ग्रंथों का अध्ययन किया गया है।

प्रस्तावना –

भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कई रियासतों का भारतीय संघ में विलय एक महत्वपर्ण ऐतिहासिक प्रक्रिया थी। भोपाल रियासत जो मध्य भारत की एक प्रमुख मुस्लिम शासित रियासत थी ने, इस विलय में देरी की, जिससे 1947 से 1949 तक चला विलीनीकरण आंदोलन उभरा। नबाब हमीदुल्लाह खान के पाकिस्तान समर्थक रुख के कारण भोपालवासी दो वर्षों तक संघर्षरत रहे। इस आंदोलन में महिलाओं ने निर्णायक भमिका निभाई, विशेषकर जब पुरुष नेताओं को जेलों में ठूसाँ गया। आंदोलन की पृष्ठभूमि में रियासत की भौगोलिक स्थिति,नबाबी शासन की जड़ें और स्वतंत्रता के बाद की राजनीतिक उथल–पुथल प्रमुख थी। 1 जून 1949 को भोपाल का भारत में विलय हुआ, लेकिन विलय से जुड़ी वे महत्वपूर्ण घटनाएँ, जो देशभक्ति की अमर इबारतें रचती हैं, वे हैं स्वतंत्रता के लिए किए गए पवित्र अनुष्ठान–जिनकी समिधा बनकर वीर सेनानियों ने अपना बलिदान चढ़ाया है।

भोपाल रियासत का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य –

भोपाल रियासत की स्थापना 18वीं शताब्दी में हुई थी और यह एक नवाबी रियासत के रूप में विकसित हुई। यहाँ लंबे समय तक मुस्लिम नवाबों का शासन रहा। विशेष रूप से भोपाल की बेगमों जैसे कुदसिया बेगम, शाहजहाँ बेगम आदि का शासन भारतीय इतिहास में महिला नेतृत्व का एक उदाहरण प्रस्तुत करता है।

15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ, किंतु भोपाल के नवाब हमीदुल्ला खान ने भारत में विलय को लेकर असमंजस की स्थिति बनाए रखी। नवाब का यह रुख जनता की आकांक्षाओं के विपरीत था, क्योंकि अधिकांश जनता भारत संघ में शामिल होकर लोकतांत्रिक शासन चाहती थी। यही असंतोष आगे चलकर विलीनीकरण आंदोलन का आधार बना।

विलीनीकरण आंदोलन का उद्भव और विकास –

आंदोलन की शरुआत 1947 के अंत से हई। भोपाल में प्रजा मंडल, हिंदू महासभा और कांग्रेस से जुड़े संगठनों ने आंदोलन की नींव रखी। रायसेन, सीहोर और इच्छावर जैसे क्षेत्रों में 1948 से प्रजा मंडल सक्रिय हुआ जिसने आंदोलन को संगठित किया। जून 1948 में एक नया समाचार पत्र 'नई राह' का प्रकाशन आरंभ हुआ जिसने जनमानस को जागरूक किया। उद्धवदास मेहता, बालमुकुंद, जमना प्रसाद चौबे, लालसिंह और विचित्र कुमार सिन्हा जैसे नेताओं ने ग्रामीण क्षेत्रों में जनजागरण किया। भोपाल शहर में शंकर दयाल शर्मा, भाई रतन कुमार गुप्ता जैसे कांग्रेसी नेताओं ने नेतत्व किया।

जनसभाएँ, जुलूस, नारेबाजी आंदोलन के प्रमुख साधन थे। नवाबी प्रशासन ने इस आंदोलन को दबाने के लिए दमनात्मक नीतियाँ अपनाईं जिनमें लाठीचार्ज, गिरफ्तारियाँ और गोलीबारी तक शामिल थीं। इन परिस्थितियों ने आंदोलन को और अधिक उग्र एवं व्यापक बना दिया।

14 जनवरी 1949 को मकर संक्रांति के दिन रायसेन जिले के नर्मदा घाट पर स्थित बोरास गाँव में घटी घटना ने पूरे देश को हिला दिया– भोपाल के नवाब भी स्तब्ध रह गए। आंदोलनकारियों ने बोरास मेले में तिरंगा फहराने का संकल्प लिया। भोपाल रियासत की पुलिस ने इसे रोकने की कोशिश की और कड़े पहरे तैनात कर दिए। फिर भी, 25 वर्षीय धनसिंह और उनके साथियों ने 'वंदे मातरम्; के उद्घोष के साथ तिरंगा लहरा दिया।

गुस्साए थानेदार जाफर अली खान ने निहत्थे प्रदर्शनकारियों पर गोलियाँ चलवा दीं। कई आंदोलनकारी शहीद हो गए, लेकिन किसी ने तिरंगे को जमीन छूने नहीं दिया। जब कोई पुलिसवाला एक आंदोलनकारी को गोली मारता, तो दूसरा तुरंत तिरंगा थाम लेता।

विलीनीकरण आंदोलन में महिलाओं की भूमिका –

नवाबी प्रशासन के दमन से सैकड़ों पुरुष या तो जेलों में डाल दिए गए या जंगलों में छोड़ दिए गए। इस दौरान महिलाओं ने मोर्चा संभाला और खुले मैदानों में प्रदर्शन किया। 11 जनवरी 1949 का चौक से लेकर जुमेराती (लोहा बाजार) तक का जुलूस इसका प्रमुख उदाहरण है। हजारों महिलाएं सड़कों पर उतरीं, नारे लगाए : 'भोपाल को भारत में मिलाओ!'। नवाबी पुलिस के लाठीचार्ज का सामना किया। कई घायल हईं लेकिन पीछे नहीं हटीं। ट्रक में भरकर जंगल छोड़ने पर भी वे लौट आई।

स्थानीय महिलाओं जैसे रज्जो बाई, लक्ष्मीबाई, मोहिनी देवी, चंपा चारु आदि का उल्लेख भी इतिहास में मिलता है। वे घर–घर जाकर जागृती फैलातीं, खाना बनाकर प्रदर्शनकारियों को खिलातीं। कुछ ने पति–पुत्रों के साथ भाग लिया।

यह संघर्ष महिलाओं को राजनीतिक रूप से जागरूक करने का भी माध्यम बन गया। नवाबी शासन के खिलाफ खड़ी हुई महिलाओं ने अपने अधिकारों और स्वतंत्रता की भावना को बेहतर तरीके से समझा और उसके लिये संघर्ष किया। उनकी भूमिका ने स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की स्थिति को सशक्त किया और आने वाले सामाजिक आंदोलनों के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

विलीनीकरण आंदोलन के परिणाम –

लगातार जनदबाव और आंदोलन की तीव्रता के कारण अंततः भोपाल रियासत के नवाब को भारत सरकार के साथ समझौता करना पड़ा। 1 जून 1949 को भोपाल रियासत का भारत संघ में औपचारिक विलय हुआ। यह दिन भोपाल के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर है। विलीनीकरण के पश्चात् भोपाल में लोकतांत्रिक शासन की स्थापना हुई और नागरिकों को संवैधानिक अधिकार प्राप्त हुए। महिलाओं के लिए भी यह परिवर्तन नए अवसरों और अधिकारों का मार्ग प्रशस्त करने वाला सिद्ध हुआ।

आंदोलन का ऐतिहासिक और सामाजिक मूल्यांकन –

भोपाल विलीनीकरण आंदोलन भारतीय लोकतंत्र के विकास की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है। इस आंदोलन ने यह सिद्ध किया कि जनशक्ति किसी भी निरंकुश शासन को झुकने पर विवश कर सकती है।

महिलाओं की भूमिका ने सामाजिक दृष्टिकोण को भी बदला। इस आंदोलन के माध्यम से महिलाओं में राजनीतिक चेतना का विकास हुआ और वे सार्वजनिक जीवन में सक्रिय रूप से भाग लेने लगीं। यह आंदोलन महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था।

निष्कर्ष –

भोपाल रियासत का विलय आंदोलन भारतीय इतिहास का वह स्वर्णिम अध्याय है, जो राजनीतिक परिवर्तन से कहीं आगे जाकर सामाजिक जागरण की ज्योति जला गया और लोकतांत्रिक मूल्यों की पुष्ट नींव रख गया। आज भी यह गाथा प्रेरणा देती है कि सच्ची स्वतंत्रता जनता की एकजुटता और त्याग से ही फलित

होती है। भोपाल का विलय न केवल एक रियासत का भारत में समावेश था, अपितु लोकतंत्र की विजय का अमर प्रतीक!

सन्दर्भ सूची –

1. व्यास, डॉ. हंसा, मध्य प्रदेश में स्वतन्त्रता आंदोलन (1836–1947 ई. तक), 2025 संस्करण, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी।
2. शर्मा, शंकर दयाल, स्मृतियाँ और संघर्ष, भोपाल : मध्य प्रदेश साहित्य अकादमी।
3. शर्मा, रमेश. (2024), भोपाल विलीनीकरण दिवस–कहानी भोपाल विलीनीकरण की, विश्व संवाद केंद्र भोपाल.
4. दा टाइम्स ऑफ इंडिया, भोपाल, दिनांक 2 जून 2025 के आधार पर।
5. जनसंपर्क विभाग वेबसाइट, म.प्र. शासन।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2026 Page No. : 217-228

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

समकालीन हिंदी उपन्यास में जल संकट और पर्यावरणीय विमर्श

Chhavi

Research Scholar, Hindi Vibhag, MMH College Ghaziabad, Ch. Charan Singh Unjversity.

सारांश :

प्रस्तुत शोध "समकालीन हिंदी उपन्यास में जल संकट और पर्यावरणीय विमर्श" में यह स्पष्ट किया गया है कि जल संकट केवल प्राकृतिक आपदा नहीं, बल्कि आधुनिक विकास मॉडल, औद्योगीकरण, शहरीकरण और उपभोक्तावाद का परिणाम है। समकालीन हिंदी उपन्यासों में जल संकट को सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और नैतिक संकट के रूप में प्रस्तुत किया गया है। लेखकों ने सूखा, भूजल का क्षरण, नदियों का प्रदूषण, बाँध निर्माण से विस्थापन, जल का निजीकरण तथा वर्गीय असमानता जैसे प्रश्नों को कथा के माध्यम से उजागर किया है। फाँस, आवां, इदन्नमम् और डूब जैसे उपन्यासों के उदाहरणों से यह प्रतिपादित किया गया है कि जल संकट ग्रामीण–शहरी विभाजन, स्त्री जीवन, दलित समुदाय और श्रमिक वर्ग पर गहरा प्रभाव डालता है। पर्यावरणीय विमर्श (इको–क्रिटिसिज़्म) के सैद्धांतिक आधार पर यह अध्ययन दर्शाता है कि साहित्य प्रकृति को मात्र पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि सक्रिय तत्व के रूप में प्रस्तुत करता है। जल यहाँ जीवन का आधार होते हुए भी सत्ता और पूँजी के नियंत्रण का साधन बन जाता है। इस प्रकार समकालीन हिंदी उपन्यास पर्यावरणीय चेतना को सुदृढ़ करते हुए विकास की वर्तमान अवधारणा पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं।

मुख्य शब्द : जल संकट, पर्यावरणीय विमर्श, समकालीन हिंदी उपन्यास, पर्यावरणीय न्याय, इको–फेमिनिज्म, सतत विकास।

प्रस्तावना :

सम्पूर्ण सृष्टि में विद्यमान जड़ चेतन सभी पदार्थों की उत्पत्ति प्रकृति में व्याप्त पंचतत्वों से हुई है। ये पंचतत्व हैं : **भूमिरापस्तथा वायुरग्निराकाशमेव च।।** अर्थात् पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवम् आकाश ये पंचतत्व ही सम्पूर्ण चराचर के चलायमान होने का कारण हैं। भक्तिकालीन कवि तुलसीदास भी रामचरितमानस के किष्किन्धाकाण्ड में यह स्वीकार करते हैं कि मानव शरीर प्रति के पंचतत्वों के संयोग से ही निर्मित हुआ है, वे लिखते हैं :

"छिति जल पावक गगन समीरा,
पंच रचित अति अधम सरीरा।"

इक्कीसवीं सदी का मानव समाज जिस गंभीर संकट का सामना कर रहा है, उसमें जल संकट सर्वाधिक चिंताजनक है। जल जीवन का मूल आधार है – यह केवल जैविक अस्तित्व का साधन नहीं, बल्कि सभ्यता,

संस्कृति, कृषि, अर्थव्यवस्था और सामाजिक संबंधों का भी केंद्र है। भारतीय परंपरा में जल को पवित्रता, जीवन और पुनरुत्थान का प्रतीक माना गया है। नदियाँ यहाँ 'माता' के रूप में पूजित रही हैं, सरोवर और कुएँ सामुदायिक जीवन के केंद्र रहे हैं। किंतु विडंबना यह है कि आधुनिक विकास, औद्योगीकरण, शहरीकरण और उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण जल आज अभाव, प्रदूषण और संघर्ष का पर्याय बनता जा रहा है।

समकालीन हिंदी उपन्यास इस संकट को केवल पर्यावरणीय समस्या के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक, राजनीतिक और नैतिक संकट के रूप में प्रस्तुत करते हैं। जल की कमी, भूजल स्तर का गिरना, नदियों का प्रदूषण, बाँध निर्माण से विस्थापन, जल का निजीकरण तथा जल–संसाधनों पर कॉर्पोरेट नियंत्रण–ये सभी प्रश्न कथा–साहित्य में प्रमुखता से उभरते हैं। साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं, बल्कि उसकी चेतना का संवाहक भी होता है; इसलिए जब जल संकट व्यापक रूप से जनजीवन को प्रभावित करता है, तब उसका प्रतिबिंब साहित्य में स्वाभाविक रूप से दिखाई देता है। इस संदर्भ में उदय प्रकाश, काशीनाथ सिंह, चित्रा मुद्गल तथा मैत्रेयी पुष्पा जैसे रचनाकारों की कृतियाँ उल्लेखनीय हैं। इनके उपन्यासों में पर्यावरणीय असंतुलन और जल संकट सामाजिक न्याय और अस्तित्व के प्रश्नों से जुड़ते हैं।[1]

पर्यावरणीय विमर्श (इको–क्रिटिसिज्म) साहित्य और प्रकृति के संबंधों की आलोचनात्मक समीक्षा करता है। यह मनुष्य–केंद्रित दृष्टिकोण को चुनौती देते हुए प्रकृति के स्वतंत्र अस्तित्व और अधिकारों की बात करता है। समकालीन हिंदी उपन्यासों में यह विमर्श केवल सैद्धांतिक नहीं, बल्कि अनुभवजन्य और यथार्थपरक है।

ग्रामीण अंचलों में सूखा, किसानों की आत्महत्या, स्त्रियों का पानी के लिए मीलों चलना, शहरी झुग्गियों में जल के लिए संघर्ष, बोतलबंद पानी की संस्कृति – ये सब प्रसंग उपन्यासों में सजीव रूप में अंकित होते हैं।[2]

जल संकट के साथ सामाजिक असमानता का प्रश्न भी जुड़ा है। जल का वितरण समान नहीं है – जहाँ संपन्न वर्ग शुद्ध और सुरक्षित जल खरीद सकता है, वहीं गरीब और हाशिए के समुदाय प्रदूषित और असुरक्षित जल के उपयोग को विवश होते हैं। इस प्रकार जल एक सामाजिक–राजनीतिक संसाधन बन जाता है, जिस पर नियंत्रण सत्ता–संबंधों को निर्धारित करता है। समकालीन हिंदी उपन्यास इस असमानता को उजागर करते हुए यह प्रश्न उठाते हैं कि क्या विकास की वर्तमान अवधारणा वास्तव में मानव–हितैषी है, या वह प्रकृति और मनुष्य दोनों के लिए विनाशकारी सिद्ध हो रही है।

भारतीय समाज में जल का सांस्कृतिक महत्व अत्यंत गहरा है। जन्म से मृत्यु तक के संस्कारों में जल की उपस्थिति अनिवार्य है। गंगा, यमुना, नर्मदा जैसी नदियाँ केवल भौगोलिक इकाइयाँ नहीं, बल्कि सांस्कृतिक स्मृतियों और आध्यात्मिक आस्थाओं का केंद्र हैं। किंतु जब यही नदियाँ औद्योगिक कचरे और शहरी अपशिष्ट से प्रदूषित होती हैं, तब वह केवल पर्यावरणीय संकट नहीं, बल्कि सांस्कृतिक विघटन का संकेत भी है। समकालीन उपन्यासों में नदी का क्षरण एक नैतिक पतन का प्रतीक बनकर उभरता है। समकालीन हिंदी उपन्यासों की

---

1. उर्मिला शर्मा, (2022), ''21वीं सदी के उपन्यासों में पर्यावरण संकट'', पिट्सबर्ग अमेरिका से प्रकाशित, पृष्ठः 4।
2. हरिकिशोर यादव, और ब्रज भूषण तिवारी, (2025), ''पर्यावरण विमर्श का साहित्यिक रूपांकनः समकालीन हिन्दी उपन्यास के परिप्रेक्ष्य में'', रिसर्च रिव्यू इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसिप्लिनरी, पृष्ठः 322–327

विशेषता यह है कि वे जल संकट को बहुआयामी दृष्टि से देखते हैं। कहीं सूखा–ग्रस्त गाँव की त्रासदी है, जहाँ खेत बंजर हो जाते हैं और जीवन संघर्षमय हो उठता है; कहीं बाँध निर्माण के कारण गाँव डूब जाते हैं और लोग विस्थापित होकर अपनी जड़ों से कट जाते हैं; तो कहीं महानगरों में जल के निजीकरण और बाजारीकरण का प्रश्न सामने आता है। इन विविध प्रसंगों के माध्यम से उपन्यासकार यह स्थापित करते हैं कि जल संकट केवल प्राकृतिक आपदा नहीं, बल्कि मानवीय नीतियों और लालच का परिणाम भी है।

पर्यावरणीय विमर्श का एक महत्वपूर्ण पक्ष 'इको–फेमिनिज़्म' है, जो स्त्री और प्रकृति के शोषण के बीच समानता को रेखांकित करता है। ग्रामीण समाज में जल–संकट का सबसे अधिक प्रभाव स्त्रियों पर पड़ता है, क्योंकि जल लाने और घर–परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करने की जिम्मेदारी प्रायः उन्हीं पर होती है। समकालीन हिंदी उपन्यासों में यह यथार्थ बार–बार सामने आता है कि जल संकट स्त्री जीवन को किस प्रकार प्रभावित करता है और उसे अतिरिक्त श्रम तथा मानसिक तनाव का सामना करना पड़ता है।

इस प्रकार, समकालीन हिंदी उपन्यास जल संकट को केवल विषय–वस्तु के रूप में नहीं, बल्कि एक वैचारिक और नैतिक प्रश्न के रूप में प्रस्तुत करते हैं। वे पाठक को यह सोचने के लिए बाध्य करते हैं कि विकास और प्रगति की वर्तमान धारणाएँ किस हद तक टिकाऊ हैं। क्या मनुष्य प्रकृति के साथ संतुलित संबंध स्थापित कर पा रहा है, या वह अपने ही अस्तित्व के आधार को नष्ट कर रहा है?[3]

शोध का उद्देश्य :

1. समकालीन हिंदी उपन्यासों में जल संकट की अभिव्यक्ति का अध्ययन करना।
2. पर्यावरणीय विमर्श के सैद्धांतिक आधारों के आलोक में उपन्यासों का मूल्यांकन करना।
3. जल संकट और सामाजिक असमानताओं के अंतर्संबंध का अध्ययन करना।

शोध प्रविधि :

इस शोध में गुणात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के लिए समकालीन हिंदी उपन्यासों का चयन कर उनका पाठ–विश्लेषण किया गया। शोध हेतु आवश्यक सामग्री विभिन्न पूर्व प्रकाशित स्रोतों से संकलित की गई, जिनमें शोध–पत्र, संदर्भ ग्रंथ, समीक्षात्मक लेख, शोध–प्रबंध, पत्र–पत्रिकाएँ तथा विश्वसनीय ऑनलाइन शैक्षणिक डेटाबेस शामिल हैं। पर्यावरणीय विमर्श (ईको–क्रिटिसिज़्म) के सैद्धांतिक आधार को समझने के लिए संबंधित आलोचनात्मक ग्रंथों एवं विद्वानों के विचारों का अध्ययन किया गया। इसके अतिरिक्त जल संकट, पर्यावरणीय न्याय तथा ईको–फेमिनिज़्म से संबंधित द्वितीयक स्रोतों का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया। संकलित सामग्री का वर्गीकरण विषयानुसार कर उपन्यासों में जल संकट के विविध आयामों–सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक का विश्लेषण किया गया। इस प्रकार शोध में प्राथमिक और द्वितीयक दोनों स्रोतों का समन्वित उपयोग कर निष्कर्ष प्रस्तुत किए गए हैं।

अध्ययन का महत्व :

प्रस्तुत अध्ययन का महत्व इस तथ्य में निहित है कि यह समकालीन हिंदी उपन्यासों में जल संकट और

---

3. बिजय रवानी, (2023), ''पर्यावरण विमर्श और समकालीन उपन्यास'', श्रृंखला एक शोधपरक वैचारिक पत्रिका, पृष्ठः 1–7।

पर्यावरणीय विमर्श के अंतर्संबंध को गंभीरता से रेखांकित करता है। वर्तमान समय में जल संकट केवल प्राकृतिक समस्या न रहकर सामाजिक, आर्थिक और नैतिक संकट का रूप ले चुका है। ऐसे में साहित्य केमाध्यम से इस विषय का विश्लेषण पर्यावरणीय चेतना को सुदृढ़ करने में सहायक सिद्ध होता है। यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि उपन्यासकारों ने जल संकट को विकास की वर्तमान अवधारणा, सामाजिक असमानताओं और सांस्कृतिक विघटन से जोड़कर किस प्रकार प्रस्तुत किया है। साथ ही, यह शोध हिंदी साहित्य में पर्यावरणीय विमर्श के सैद्धांतिक विस्तार को भी बल प्रदान करता है। अकादमिक दृष्टि से यह अध्ययन साहित्य, समाजशास्त्र और पर्यावरण अध्ययन के बीच अंतःविषय संबंध स्थापित करता है तथा भविष्य के शोधार्थियों के लिए एक महत्वपूर्ण आधारभूमि तैयार करता है।

पर्यावरणीय विमर्श : सैद्धांतिक आधार :

पर्यावरणीय विमर्श साहित्य और प्रकृति के अंतर्संबंधों की आलोचनात्मक व्याख्या का एक महत्वपूर्ण आधुनिक सिद्धांत है। इसका मूल उद्देश्य यह समझना है कि साहित्य में प्रकृति, पर्यावरण और मानव के संबंधों को किस प्रकार चित्रित किया गया है तथा इन चित्रणों के माध्यम से समाज में पर्यावरण–चेतना का निर्माण कैसे होता है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जब वैश्विक स्तर पर औद्योगीकरण, उपभोक्तावाद और तकनीकी विकास के कारण पर्यावरणीय संकट तीव्र होने लगा, तब साहित्यिक आलोचना में भी प्रकृति और पर्यावरण के प्रश्नों को केंद्र में लाने की आवश्यकता अनुभव की गई। इसी आवश्यकता के परिणामस्वरूप पर्यावरणीय विमर्श का विकास हुआ। पर्यावरणीय विमर्श का सैद्धांतिक आधार मुख्यतः 'मानव–केंद्रित' दृष्टिकोण की आलोचना में निहित है। मानव–केंद्रित दृष्टिकोण प्रकृति को केवल मानव–उपयोग की वस्तु मानता है, जबकि पर्यावरणीय विमर्श 'प्रकृति–केंद्रित' दृष्टि को महत्व देता है। यह मान्यता रखता है कि प्रकृति का अपना स्वतंत्र अस्तित्व और मूल्य है, जो मानव हितों से परे भी महत्वपूर्ण है। इस दृष्टि में जल, जंगल, भूमि, पशु–पक्षी और संपूर्ण जैव–विविधता को केवल संसाधन नहीं, बल्कि सह–अस्तित्व के सहभागी तत्वों के रूप में देखा जाता है।

पर्यावरणीय विमर्श के अंतर्गत यह भी विचार किया जाता है कि साहित्य में प्रकृति का चित्रण केवल सौंदर्य या पृष्ठभूमि के रूप में क्यों किया गया, और क्या उसे एक सक्रिय पात्र के रूप में स्वीकार किया गया है। समकालीन हिंदी उपन्यासों में जल संकट, सूखा, बाढ़, प्रदूषण और विस्थापन जैसे प्रसंगों के माध्यम से प्रकृति केवल दृश्य नहीं, बल्कि कथा का सक्रिय कारक बनकर सामने आती है। इस प्रकार पर्यावरणीय विमर्श साहित्य को एक नई दृष्टि प्रदान करता है, जहाँ प्रकृति और मनुष्य के संबंधो ं को संतुलन, संघर्ष और शोषण की दृष्टि से परखा जाता है।

सैद्धांतिक रूप से पर्यावरणीय विमर्श का संबंध सतत विकास की अवधारणा से भी है। यह विचारधारा इस बात पर बल देती है कि विकास की प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए, जिससे वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताएँ पूरी हों, परंतु भविष्य की पीढ़ियों के अधिकार सुरक्षित रहें। साहित्य में जब बाँध निर्माण से विस्थापन, भूजल दोहन या जल के निजीकरण का चित्रण होता है, तब पर्यावरणीय विमर्श यह प्रश्न उठाता है कि क्या यह विकास वास्तव में न्यायपूर्ण और दीर्घकालिक है।

पर्यावरणीय विमर्श का एक महत्वपूर्ण आयाम 'पर्यावरणीय न्याय' है। इसके अनुसार पर्यावरणीय संकट का भार समाज के सभी वर्गों पर समान रूप से नहीं पड़ता। प्रायः गरीब, ग्रामीण और हाशिए के समुदाय अधिक

प्रभावित होते हैं। जल संकट के संदर्भ में यह तथ्य स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि जल की कमी, प्रदूषण और संसाधनों पर नियंत्रण का सबसे अधिक दुष्प्रभाव कमजोर वर्गों पर पड़ता है। साहित्य इन असमानताओं को उजागर कर सामाजिक चेतना को जाग्रत करता है।

इसके अतिरिक्त 'इको–फेमिनिज़्म' भी पर्यावरणीय विमर्श का महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह सिद्धांत स्त्री और प्रकृति के शोषण के बीच समानता स्थापित करता है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था जिस प्रकार स्त्री को नियंत्रित और उपेक्षित करती है, उसी प्रकार प्रकृति का भी दोहन करती है। हिंदी उपन्यासों में जब जल संकट का भार स्त्रियों पर अधिक दिखाया जाता है – जैसे पानी लाने की जिम्मेदारी या संसाधनों की कमी से उत्पन्न घरेलू तनाव के कारण यह विमर्श और अधिक प्रासंगिक हो जाता है।

भारतीय संदर्भ में पर्यावरणीय विमर्श की जड़ें हमारी सांस्कृतिक परंपराओं में भी मिलती हैं। वेदों और पुराणों में प्रकृति को देवत्व प्रदान किया गया है। नदियों, पर्वतों और वृक्षों की पूजा की पर ंपरा सह–अस्तित्व की भावना को व्यक्त करती है। अतः हिंदी साहित्य में पर्यावरणीय चेतना कोई आयातित विचार नहीं, बल्कि सांस्कृतिक स्मृति का पुनर्स्मरण भी है।[4]

समकालीन परिदृश्य और जल संकट :

समकालीन हिंदी उपन्यास में जल संकट का प्रश्न केवल पारिस्थितिक समस्या के रूप में उपस्थित नहीं होता, बल्कि यह उत्तर–उदारीकरण भारत की सामाजिक–आर्थिक संरचना, विकास की अवधारणा और सत्ता–केन्द्रित नीतियों की आलोचना के रूप में उभरता है। 1990 के बाद की वैश्वीकरण–प्रक्रिया ने प्राकृतिक संसाधनों को 'कॉमोडिटी' में रूपांतरित किया, जिसके परिणामस्वरूप जल जैसे आधारभूत संसाधन का निजीकरण और अत्यधिक दोहन आरंभ हुआ। इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में हिंदी उपन्यासकारों ने जल संकट को केवल सूखे अथवा अकाल की घटना नहीं माना, बल्कि इसे मानव–निर्मित संकट के रूप में चित्रित किया है।

प्रख्यात उपन्यासकार संजीव के उपन्यास फाँस में ग्रामीण जीवन की त्रासदी और कृषि–संकट के संदर्भ में जल–अभाव की मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है। उपन्यास में एक स्थान पर लेखक लिखते हैं –

''धरती की नसों में पानी नहीं, जैसे देह की नसों में रक्त सूख गया हो।''[5]

यह उद्धरण जल संकट को जैविक उपमा के माध्यम से जीवन–संकट के रूप में प्रस्तुत करता है। यहाँ सूखी धरती केवल कृषि–क्षति का प्रतीक नहीं, बल्कि समूचे ग्रामीण समाज की टूटती जीवन–रेखा का संकेत है। इस प्रकार जल संकट को अस्तित्वगत संकट के रूप में रूपायित किया गया है। इसी प्रकार चित्रा मुद्गल के उपन्यास आवां में औद्योगिक विस्तार और श्रमिक जीवन के बीच पर्यावरणीय असंतुलन का सजीव चित्रण मिलता है। लेखिका लिखती हैं –

''कारखानों की काली नालियाँ नदी के निर्मल जल को निगलती चली जा रही थीं।''[6]

---

4. डॉ. प्रीति अग्रवाल, और डॉ. अलका तिवारी, (2021), ''पर्यावरणीय विमर्श सैद्धान्तिकी एवं अनुप्रयोग'', वान्या पब्लिकेशंस, पृष्ठः 1–21।
5. संजीव, (2023), ''फाँस'', वाणी प्रकाशन, 2023, पृष्ठः 1–256।
6. चित्रा मुद्गल, (2018), ''आवां'', सामयिक प्रकाशन, पृष्ठः 544।

यहाँ नदी का प्रदूषण केवल पर्यावरणीय घटना नहीं, बल्कि पूँजीवादी विकास–नीति की अमानवीयता का द्योतक है। समकालीन परिदृश्य में उद्योगों द्वारा जल–स्रोतों के अंधाधुंध उपयोग और प्रदूषण ने ग्रामीण और शहरी जीवन को गहराई से प्रभावित किया है। उपन्यास इस अंतर्विरोध को रेखांकित करते हैं कि विकास की परियोजनाएँ जिस समाज के उत्थान का दावा करती हैं, वही समाज उनके दुष्परिणामों का शिकार बनता है। समकालीन हिंदी उपन्यासों में जल संकट का एक महत्वपूर्ण आयाम है – विस्थापन और बांध–राजनीति। बड़े बांधों और जल–विद्युत परियोजनाओं ने लाखों लोगों को उनके पारंपरिक निवास से बेदखल किया। उदय प्रकाश के उपन्यास मोहनदास में यद्यपि प्रत्यक्षतः जल परियोजनाओं का वर्णन नहीं है, तथापि विकास–तंत्र की विसंगतियों का चित्रण करते हुए लेखक संकेत करते हैं कि आधुनिक राज्य–संरचना आमजन के हितों की उपेक्षा करती है। वे लिखते हैं –

''विकास की सड़कें अक्सर उन घरों से होकर गुजरती हैं,
जिन्हें बाद में नक्शों से मिटा दिया जाता है।''[7]

यह कथन जल–परियोजनाओं और अवसंरचनात्मक विकास के संदर्भ में भी सार्थक प्रतीत होता है, जहाँ जल संसाधनों के दोहन के नाम पर स्थानीय समुदायों को विस्थापित किया जाता है। समकालीन परिदृश्य में जल संकट का संबंध जलवायु परिवर्तन और अनियमित वर्षा से भी जुड़ता है। उपन्यासों में सूखा, घटते भूजल–स्तर और वर्षा के असंतुलन का वर्णन केवल प्राकृतिक स्थिति का चित्रण नहीं, बल्कि मानवीय हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप उत्पन्न असंतुलन की आलोचना है। जल संकट को वर्गीय और लैंगिक परिप्रेक्ष्य में भी देखा गया है – ग्रामीण स्त्रियाँ दूर–दूर से पानी लाने को विवश हैं; दलित और हाशिए के समुदाय जल–स्रोतों तक समान पहुँच से वंचित रहते हैं। इस प्रकार जल संकट सामाजिक न्याय के प्रश्न से गहराई से जुड़ जाता है। पर्यावरणीय आलोचना के संदर्भ में देखा जाए तो समकालीन हिंदी उपन्यास 'मनुष्य–केंद्रित' विकास–दृष्टि का प्रतिवाद करते हैं। वे सहअस्तित्व और पारिस्थितिक संतुलन की आवश्यकता पर बल देते हैं। जल को केवल उपभोग की वस्तु नहीं, बल्कि सांस्कतिक–सामुदायिक संपदा के रूप में देखने की दृष्टि विकसित की जाती है।

जल संकट : सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ :

समकालीन हिंदी उपन्यासों में जल संकट केवल प्राकृतिक संसाधन के क्षरण का प्रश्न नहीं है, बल्कि यह एक जटिल सामाजिक–सांस्कृतिक संरचना का हिस्सा है, जिसमें सत्ता, वर्ग, जाति, लिंग और विकास की नीतियाँ अंतःस्थापित हैं। जल का संकट दरअसल उस विकासवादी मॉडल की विफलता का द्योतक है, जिसने प्रकृति को उपभोग की वस्तु मानकर उसके साथ असंतुलित संबंध स्थापित किया। इस दृष्टि से जल संकट का साहित्यिक निरूपण पर्यावरणीय यथार्थ के साथ–साथ सामाजिक असमानताओं और सांस्कृतिक विघटन की आलोचना भी है।

पर्यावरणीय विमर्श के सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य में लॉरेंस बुएल (1995)[8] ने यह स्पष्ट किया है कि पर्यावरणीय

---

7. उदय प्रकाश, (2020), ''मोहनदास'', वाणी प्रकाशन, 2006, पृष्ठः 120।
8. लॉरेंस बुएल, (1995), ''द एनवायर्नमेंटल इमेजिनेशन : थोरो, नेचर राइटिंग, एंड द फॉर्मेशन ऑफ अमेरिकन कल्चर'', हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठः 598।

संकट को समझने के लिए साहित्य में प्रकृति की सक्रिय उपस्थिति और मनुष्य–प्रकृति संबंधों के नैतिक आयामों का विश्लेषण आवश्यक है। जल संकट का प्रश्न इसी नैतिक विघटन से जुड़ता है, जहाँ जल को जीवन–स्रोत के स्थान पर 'संसाधन' और 'उत्पाद' में रूपांतरित कर दिया गया है। हिंदी उपन्यास इस वस्तुकरण की प्रक्रिया को आलोचनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत करते हैं।

भारतीय समाज में जल का सांस्कृतिक महत्व अत्यंत गहरा रहा है। गंगा, यमुना, नर्मदा जैसी नदियाँ केवल भौगोलिक संरचनाएँ नहीं, बल्कि सांस्कृतिक स्मृति और आध्यात्मिक आस्था की वाहक रही हैं। परंतु आधुनिक औद्योगिक विकास और शहरीकरण ने इन नदियों को प्रदूषण और अव्यवस्था का केंद्र बना दिया है। काशीनाथ सिंह के उपन्यास 'काशी का अस्सी' में गंगा का परिवर्तित स्वरूप केवल पर्यावरणीय ह्रास का संकेत नहीं देता, बल्कि सांस्कृतिक मूल्यों के विघटन का भी प्रतीक बन जाता है। नदी का प्रदूषण यहाँ सभ्यता के संकट का रूपक है।

ग्रामीण संदर्भ में जल संकट का सामाजिक आयाम और भी तीव्र है। वर्षा–आधारित कृषि व्यवस्था, सूखा, भूजल का दोहन तथा पारंपरिक जल–संरक्षण प्रणालियों का लोप – ये सभी तत्व ग्रामीण जीवन को अस्थिर बनाते हैं। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों, विशेषतः 'चाक' और 'इदन्नमम', में बुंदेलखंड क्षेत्र की जल–त्रासदी को स्त्री जीवन और जातिगत संरचनाओं से जोड़कर देखा गया है। यहाँ जल का अभाव केवल आर्थिक संकट नहीं, बल्कि सामाजिक पदानुक्रम को और अधिक कठोर बनाने वाला कारक है। जल लाने का दायित्व स्त्रियों पर है; अतः जल संकट लैंगिक असमानता को और गहरा करता है।

शहरी संदर्भ में जल संकट का स्वरूप भिन्न किंतु उतना ही जटिल है। महानगरों में जल का निजीकरण और बोतलबंद पानी की संस्कृति एक नए वर्गीय विभाजन को जन्म देती है। स्वच्छ जल अब आर्थिक सामर्थ्य पर निर्भर वस्तु बन गया है। चित्रा मुद्गल के उपन्यास 'आवां' में औद्योगिक विस्तार और श्रमिक जीवन की त्रासदी के साथ जल प्रदूषण का प्रश्न जुड़ता है। औद्योगिक अपशिष्टों से दूषित जल श्रमिक वर्ग के स्वास्थ्य और जीवन–स्तर को प्रभावित करता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि पर्यावरणीय संकट का भार समाज के हाशिए पर स्थित समुदायों पर अधिक पड़ता है।

सांस्कृतिक स्तर पर जल संकट सामुदायिक जीवन के विघटन का कारण भी बनता है। पारंपरिक भारतीय समाज में तालाब, कुएँ और नदियाँ सामूहिक स्वामित्व और साझी जिम्मेदारी का प्रतीक थीं। आधुनिकता और निजीकरण की प्रक्रिया ने इस सामुदायिक संरचना को खंडित किया है। परिणामतः जल के प्रति सामूहिक नैतिकता कमजोर हुई है। यह विघटन समकालीन हिंदी उपन्यासों में स्मृति और यथार्थ के द्वंद्व के रूप में उभरता है – जहाँ अतीत का सामंजस्य वर्तमान के संकट से टकराता है। सैद्धांतिक रूप से देखा जाए तो जल संकट 'पर्यावरणीय न्याय' के प्रश्न से भी जुड़ा है। पर्यावरणीय संसाधनों का असमान वितरण और प्रदूषण का असंतुलित प्रभाव सामाजिक विषमता को और गहरा करता है। हिंदी उपन्यास इस असमानता को केवल तथ्यात्मक रूप में नहीं, बल्कि संवेदनात्मक और प्रतीकात्मक स्तर पर भी चित्रित करते हैं। सूखी धरती, फटी हुई मिट्टी और मरणासन्न नदी – ये सभी बिंब सामाजिक संरचना के दरारों का भी संकेत देते हैं।[9]

---

9. गायत्री, एवं डॉ. कमलेश कुमारी, (2023), ''जल संरक्षण और इक्कीसवीं सदी के हिन्दी उपन्यास'', अपनी माटी, पृष्ठः 5।

उपन्यासों में जल संकट की अभिव्यक्ति :

समकालीन हिंदी उपन्यासों में जल संकट की अभिव्यक्ति बहुआयामी और गहन रूप में दिखाई देती है। यह केवल प्राकृतिक संसाधन की कमी का वर्णन नहीं, बल्कि मानवीय संवेदनाओं, सामाजिक असमानताओं, राजनीतिक षड्यंत्रों और विकास की विडंबनाओं का सजीव चित्रण है। जल यहाँ केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि कथा का सक्रिय तत्व बनकर उभरता है, जो पात्रों के जीवन, संघर्ष और मनोविज्ञान को प्रभावित करता है।

समकालीन रचनाकारों ने जल संकट को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया है–कहीं सूखा और अकाल के रूप में, कहीं बाढ़ और बाँध के कारण विस्थापन के रूप में, तो कहीं प्रदूषित नदियों और शहरी जल–अभाव के रूप में। इन उपन्यासों में जल संकट केवल भौतिक समस्या नहीं, बल्कि अस्तित्व का संकट बन जाता है। जब गाँवों के कुएँ सूख जाते हैं, खेत बंजर हो जाते हैं और पशुधन नष्ट हो जाता है, तब जल का अभाव जीवन की निरंतरता को ही चुनौती देता है। ग्रामीण पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यासों में सूखा एक केंद्रीय समस्या के रूप में सामने आता है। सूखा केवल प्राकृतिक आपदा नहीं, बल्कि सामाजिक–आर्थिक त्रासदी है। किसान वर्षा पर निर्भर रहते हैं; वर्षा के अभाव में उनकी फसलें नष्ट हो जाती हैं और वे कर्ज के बोझ तले दब जाते हैं। इस स्थिति में जल संकट आर्थिक असुरक्षा, मानसिक तनाव और सामाजिक विघटन का कारण बनता है। कई उपन्यासों में यह स्थिति आत्महत्या और पलायन जैसी त्रासदियों तक पहुँचती दिखाई देती है। दूसरी ओर, बाँध निर्माण और विकास परियोजनाओं के कारण उत्पन्न जल संकट का चित्रण भी समकालीन हिंदी उपन्यासों में प्रमुखता से मिलता है। उदाहरण के लिए डूब में लेखक वीरेन्द्र जैन ने बाँध निर्माण के कारण गाँवों के डूबने और लोगों के विस्थापन की त्रासदी को मार्मिक रूप में चित्रित किया है।[10]

इस उपन्यास में जल जीवनदाता न होकर विनाश का कारण बन जाता है। नदी का उफान केवल भूमि और घरों को ही नहीं डुबोता, बल्कि स्मृतियों, परंपराओं और सांस्कृतिक पहचान को भी नष्ट कर देता है। यहाँ जल संकट विकास की उस अवधारणा पर प्रश्नचिह्न लगाता है, जो मानव जीवन की जड़ों को काटकर आधुनिकता का स्वप्न देखती है।

शहरी जीवन पर आधारित उपन्यासों में जल संकट एक अलग रूप में प्रकट होता है। महानगरों में पानी की कमी वर्ग–भेद को और अधिक स्पष्ट करती है। कठगुलाब में लेखिका मृदुला गर्ग ने शहरी जीवन की कृत्रिमता और जल–अभाव के माध्यम से सामाजिक असमानता को उभारा है।[11]

यहाँ जल एक वस्तु बन चुका है, जिसे खरीदने की क्षमता ही जीवन की गुणवत्ता तय करती है। बोतलबंद पानी की संस्कृति और टैंकर–राज शहरी व्यवस्था की विफलता को उजागर करते हैं। उपन्यास यह संकेत करता है कि आधुनिकता की चकाचौंध के पीछे संसाधनों का गहरा संकट छिपा है।

इसी प्रकार इदन्नमम में लेखिका मैत्रेयी पुष्पा ने बुंदेलखंड के सूखा–ग्रस्त जीवन को चित्रित करते हुए जल संकट को स्त्री–जीवन और ग्रामीण यथार्थ से जोड़ा है।[12]

---

10. वीरेन्द्र जैन, (2025), ''डूब'', वाणी प्रकाशन, पृष्ठः 304।
11. मृदुला गर्ग, (2012), ''कठगुलाब'', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, पृष्ठः 265।
12. मैत्रेयी पुष्पा, (2009), ''इदन्नमम'', राजकमल प्रकाशन, पृष्ठः 423।

इस उपन्यास में पानी के लिए संघर्ष स्त्रियों के श्रम, पीड़ा और असुरक्षा को उजागर करता है। जल संकट यहाँ केवल प्राकृतिक अभाव नहीं, बल्कि सामाजिक अन्याय और लैंगिक असमानता का प्रतीक है।

नदी–प्रदूषण भी समकालीन उपन्यासों में महत्वपूर्ण विषय है। नदियों का औद्योगिक और धार्मिक प्रदूषण एक नैतिक संकट को रेखांकित करता है। साहित्य में नदी को माँ और जीवन–धारा के रूप में देखा गया है; किंतु जब वही नदी विषाक्त हो जाती है, तो यह मानवीय संवेदनहीनता का प्रतीक बनती है।

इस प्रकार, समकालीन हिंदी उपन्यासों में जल संकट की अभिव्यक्ति बहुस्तरीय है। यह प्राकृतिक आपदा, विकास की विडंबना, सामाजिक असमानता, स्त्री संघर्ष और नैतिक पतन सभी को एक साथ समेटती है। जल यहाँ जीवन का आधार होते हुए भी सत्ता और पूँजी के खेल का हिस्सा बन जाता है। साहित्य इनजटिलताओं को उजागर कर पाठक को यह सोचने के लिए प्रेरित करता है कि यदि मनुष्य प्रकृति के साथ संतुलित संबंध स्थापित नहीं करेगा, तो भविष्य और अधिक संकटग्रस्त होगा।

समकालीन उपन्यासों का व्यापक प्रभाव :

समकालीन हिंदी उपन्यासों में जल संकट और पर्यावरणीय विमर्श का प्रभाव केवल साहित्यिक संरचना तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक चेतना, बौद्धिक विमर्श, नीतिगत दृष्टिकोण और सांस्कृतिक पुनर्संरचना तक विस्तृत है। इक्कीसवीं सदी के उत्तरार्ध में जब जलवायु परिवर्तन, भूमंडलीकरण और संसाधनों के निजीकरण जैसी प्रक्रियाएँ तीव्र हुईं, तब हिंदी उपन्यास ने इन परिवर्तनों को आलोचनात्मक दृष्टि से देखने का दायित्व निभाया। यह प्रभाव बहुआयामी है – वैचारिक, संवेदनात्मक, सामाजिक और राजनीतिक।

1. समकालीन उपन्यासों ने जल संकट को 'प्राकृतिक आपदा' की पारंपरिक अवधारणा से मुक्त कर उसे मानव–निर्मित संकट के रूप में स्थापित किया। उदाहरणतः संजीव के उपन्यास फाँस में कृषि–संकट और जल–अभाव को नवउदारवादी नीतियों और विकास की असंतुलित संरचना से जोड़ा गया है।

यहाँ साहित्य केवल कथा–विन्यास नहीं, बल्कि वैचारिक हस्तक्षेप का माध्यम बनता है। इस प्रकार उपन्यास सामाजिक यथार्थ की पुनर्व्याख्या करते हुए पाठक को संरचनात्मक कारणों की ओर उन्मुख करता है।

2. इन उपन्यासों ने पर्यावरणीय विमर्श को जनसामान्य की चेतना में प्रतिष्ठित किया। पर्यावरणवाद प्रायः शहरी बौद्धिक विमर्श तक सीमित माना जाता था, किंतु समकालीन हिंदी उपन्यासों ने इसे ग्रामीण और हाशिए के समाज से जोड़कर व्यापक सामाजिक प्रश्न बना दिया। चित्रा मुद्गल के आवां में औद्योगिक विस्तार और श्रमिक जीवन के संदर्भ में पर्यावरणीय असंतुलन को रेखांकित किया गया है।

इस प्रकार उपन्यास सामाजिक वर्गों के बीच पर्यावरणीय न्याय की अवधारणा को स्थापित करता है। जल संकट को वर्गीय और लैंगिक असमानताओं से जोड़कर यह विमर्श एक समावेशी दृष्टि का निर्माण करता है।

3. समकालीन उपन्यासों का प्रभाव सांस्कृतिक स्तर पर भी दृष्टिगोचर होता है। भारतीय परंपरा में जल और नदी का विशेष आध्यात्मिक महत्व रहा है, किंतु आधुनिक विकास–परियोजनाओं ने इस सांस्कृतिक संबंध को कमजोर किया। उदय प्रकाश के मोहनदास जैसे उपन्यास विकास–चेतना की विसंगतियों को उजागर करते हुए यह संकेत देते हैं कि जब विकास मानवीय मूल्यों से कट जाता है, तब पर्यावरणीय संकट अपरिहार्य हो जाता है। इस प्रकार उपन्यास सांस्कृतिक स्मृति और आधुनिक यथार्थ के बीच संवाद स्थापित करता है।

4. समकालीन उपन्यासों का प्रभाव शैक्षिक और अकादमिक जगत में भी महत्वपूर्ण है। पर्यावरणीय विमर्श अब

हिंदी साहित्य–अध्ययन का एक सशक्त आयाम बन चुका है। विश्वविद्यालयों में 'इको–क्रिटिसिज्म' और 'पर्यावरणीय मानविकी' के अंतर्गत हिंदी उपन्यासों का विश्लेषण किया जा रहा है। इससे साहित्य की उपयोगिता केवल सौंदर्यबोध तक सीमित न रहकर सामाजिक–वैज्ञानिक विमर्श का अंग बनती है। इस संदर्भ में उपन्यास एक अंतःविषय सेतु के रूप में कार्य करता है, जो साहित्य, समाजशास्त्र, पारिस्थितिकी और राजनीति विज्ञान को जोड़ता है।

5. इन उपन्यासों का प्रभाव पाठकीय संवेदना पर भी गहरा पड़ता है। जल संकट का मार्मिक चित्रण पाठक में सहानुभूति और उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न करता है। जब सूखी धरती, प्यासे बच्चे और विस्थापित परिवार कथा के माध्यम से सामने आते हैं, तो यह अनुभव केवल बौद्धिक नहीं, बल्कि भावनात्मक स्तर पर भी प्रभाव डालता है। यही संवेदनात्मक जागरूकता सामाजिक परिवर्तन की संभावनाओं को जन्म देती है।

पर्यावरणीय चेतना और समाधान :

समकालीन हिंदी उपन्यासों में जल संकट का चित्रण केवल त्रासदी और विडंबना तक सीमित नहीं रहता, बल्कि उसके भीतर पर्यावरणीय चेतना और संभावित समाधान की दिशाएँ भी निहित रहती हैं। साहित्य का उद्देश्य केवल समस्या को रेखांकित करना नहीं, बल्कि संवेदना और जागरूकता का निर्माण करना भी है। इसी कारण समकालीन रचनाकार जल संकट को मानवीय जिम्मेदारी और नैतिक कर्तव्य से जोड़ते हुए समाधान की आवश्यकता पर बल देते हैं।

पर्यावरणीय चेतना का अर्थ है – प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता, संसाधनों के प्रति उत्तरदायित्व और सह–अस्तित्व की भावना। जब उपन्यासों में सूखा, बाढ़, प्रदूषण या विस्थापन का चित्रण होता है, तो वह पाठक को यह सोचने के लिए बाध्य करता है कि इन समस्याओं की जड़ें कहाँ हैं। यह स्पष्ट किया जाता है कि जल संकट केवल प्राकृतिक कारणों से उत्पन्न नहीं हुआ, बल्कि अनियोजित विकास, अत्यधिक उपभोक्तावाद, जल–स्रोतों के अंधाधुंध दोहन और पारंपरिक जल–प्रबंधन प्रणालियों की उपेक्षा इसके प्रमुख कारण हैं।

समकालीन उपन्यासों में समाधान के रूप में स्थानीय और पारंपरिक ज्ञान की पुनर्स्थापना पर बल मिलता है। भारतीय समाज में वर्षा–जल संचयन, तालाबों और बावड़ियों का निर्माण, सामुदायिक कुओं की व्यवस्था जैसी समृद्ध परंपराएँ रही हैं। इन प्रणालियों ने सदियों तक जल–संतुलन बनाए रखा। साहित्य इस सांस्कृतिक स्मृति को पुनर्जीवित करने का कार्य करता है और संकेत देता है कि आधुनिक तकनीक के साथ–साथ पारंपरिक उपायों को भी अपनाना आवश्यक है। एक अन्य महत्वपूर्ण समाधान सामुदायिक सहभागिता है। जल केवल व्यक्तिगत संसाधन नहीं, बल्कि सामूहिक धरोहर है। जब समाज जल–संरक्षण को सामूहिक जिम्मेदारी के रूप में स्वीकार करता है, तभी दीर्घकालिक परिवर्तन संभव है। उपन्यासों में अक्सर ऐसे पात्र दिखाई देते हैं जो गाँव या समुदाय को संगठित कर जल–संरक्षण के प्रयास करते हैं। यह संकेत है कि परिवर्तन केवल शासन की नीतियों से नहीं, बल्कि जन–जागरूकता और सामूहिक प्रयास से भी संभव है।

पर्यावरणीय चेतना का एक महत्वपूर्ण पक्ष 'सतत विकास' की अवधारणा से जुड़ा है। विकास का अर्थ केवल उद्योगों का विस्तार या शहरीकरण नहीं होना चाहिए, बल्कि ऐसा विकास होना चाहिए जो प्रकृति के संतुलन को बनाए रखे। उपन्यासकार विकास की अंधी दौड़ की आलोचना करते हुए यह प्रश्न उठाते हैं कि यदि विकास के नाम पर जल–स्रोत नष्ट हो जाएँ, तो भविष्य की पीढ़ियाँ किस आधार पर जीवित रहेंगी? अतः

समाधान का मार्ग संतुलित और पर्यावरण–सम्मत नीतियों में निहित है।

इसके अतिरिक्त, पर्यावरण शिक्षा और नैतिक मूल्यों का विकास भी आवश्यक है। जब तक व्यक्ति अपने दैनिक जीवन में जल के महत्व को नहीं समझेगा, तब तक कोई भी नीति प्रभावी नहीं होगी। साहित्य इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, क्योंकि वह भावनात्मक स्तर पर चेतना का निर्माण करता है। जल को केवल उपयोग की वस्तु न मानकर जीवन–तत्व के रूप में स्वीकार करना पर्यावरणीय दृष्टि का मूल आधार है।[13]

विचार विमर्श :

समकालीन हिंदी उपन्यासों में जल संकट और पर्यावरणीय विमर्श का प्रश्न केवल प्राकृतिक संसाधनों की कमी का वर्णन भर नहीं है, बल्कि यह सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक संरचनाओं की गहन पड़ताल भी है। उपन्यासकारों ने जल को जीवन के आधार, सांस्कृतिक स्मृति और सामुदायिक अस्तित्व से जोड़कर देखा है। जब जल का अभाव उत्पन्न होता है तो उसका प्रभाव केवल कृषि या दैनिक जीवन तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह सामाजिक असमानता, वर्ग–भेद, लिंग–भेद और सत्ता–संबंधों को भी उजागर करता है।

फाँस में सूखा केवल प्राकृतिक आपदा नहीं, बल्कि ग्रामीण जीवन की विडंबना और व्यवस्था की विफलता का प्रतीक बनकर उभरता है। वहीं आवां में औद्योगिक प्रदूषण के माध्यम से विकास मॉडल की अमानवीयता को रेखांकित किया गया है। इदन्नमम् में जल संकट स्त्री–जीवन के अतिरिक्त श्रम और सामाजिक अन्याय से जुड़ता है, जिससे 'इको–फेमिनिज्म' की दृष्टि स्पष्ट होती है। इन उपन्यासों में जल का वस्तुकरण, निजीकरण और असमान वितरण गंभीर प्रश्न खड़े करता है कि क्या वर्तमान विकास–धारणा सचमुच मानवीय है। जल संकट यहाँ नैतिक पतन, सांस्कृतिक विघटन और मानवीय संवेदनहीनता का भी प्रतीक बन जाता है। इस प्रकार समकालीन हिंदी उपन्यास जल संकट को बहुआयामी विमर्श के रूप में प्रस्तुत करते हुए पाठक को आत्मचिंतन के लिए प्रेरित करते हैं।

निष्कर्ष :

समकालीन हिंदी उपन्यासों में जल संकट और पर्यावरणीय विमर्श केवल एक प्राकृतिक समस्या के रूप में नहीं, बल्कि व्यापक सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और नैतिक संकट के रूप में उभरता है। इन उपन्यासों ने यह स्पष्ट किया है कि जल संकट आकस्मिक या केवल प्राकृतिक कारणों से उत्पन्न नहीं हुआ, बल्कि असंतुलित विकास, औद्योगीकरण, शहरीकरण, उपभोक्तावाद और संसाधनों के निजीकरण की नीतियों का परिणाम है। साहित्य ने सूखा, प्रदूषण, विस्थापन, बांध–राजनीति और जल के असमान वितरण जैसे प्रश्नों को मानवीय संवेदनाओं से जोड़कर प्रस्तुत किया है। विशेष रूप से ग्रामीण समाज, स्त्रियों और हाशिए के वर्गों पर जल संकट के गहरे प्रभाव को रेखांकित करते हुए उपन्यासकारों ने पर्यावरणीय न्याय की आवश्यकता पर बल दिया है। इस प्रकार समकालीन हिंदी उपन्यास पर्यावरणीय चेतना के वाहक बनकर विकास की प्रचलित अवधारणाओं पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं और प्रकृति के साथ संतुलित, सह–अस्तित्व आधारित दृष्टिकोण अपनाने का संदेश देते हैं।

---

13. डॉ० अनिल शर्मा, (2017), ''समकालीन साहित्य में पर्यावरण चेतना'', राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रुड़की, पृष्ठः 1–11।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. उर्मिला शर्मा, (2022), ''21वीं सदी के उपन्यासों में पर्यावरण संकट'', पिट्सबर्ग अमेरिका से प्रकाशित, पृष्ठ : 4।
2. हरिकिशोर यादव, और ब्रज भूषण तिवारी, (2025), ''पर्यावरण विमर्श का साहित्यिक रूपांकन : समकालीन हिन्दी उपन्यास के परिप्रेक्ष्य में'', रिसर्च रिव्यू इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसिप्लिनरी, पृष्ठः 322–327।
3. बिजय रवानी, (2023), ''पर्यावरण विमर्श और समकालीन उपन्यास'', श्रृंखला एक शोधपरक वैचारिक पत्रिका, पृष्ठः 1–7।
4. डॉ. प्रीति अग्रवाल, और डॉ. अलका तिवारी, (2021), ''पर्यावरणीय विमर्श सैद्धान्तिकी एवं अनुप्रयोग'', वान्या पब्लिकेशंस, पृष्ठः 1–21।
5. संजीव, (2023), ''फाँस'', वाणी प्रकाशन, 2023, पृष्ठः 1–256।
6. चित्रा मुद्गल, (2018), ''आवां'', सामयिक प्रकाशन, पृष्ठः 544।
7. उदय प्रकाश, (2020), ''मोहनदास'', वाणी प्रकाशन, 2006, पृष्ठः 120।
8. लॉरेंस बुएल, (1995), ''द एनवायर्नमेंटल इमेजिनेशनः थोरो, नेचर राइटिंग, एंड द फॉर्मेशन ऑफ अमेरिकन कल्चर'', हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठः 598।
9. गायत्री एवं डॉ. कमलेश कुमारी, (2023), ''जल संरक्षण और इक्कीसवीं सदी के हिन्दी उपन्यास'', अपनी माटी, पृष्ठः 5।
10. वीरेन्द्र जैन, (2025), ''डूब'', वाणी प्रकाशन, पृष्ठः 304।
11. मृदुला गर्ग, (2012), ''कठगुलाब'', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, पृष्ठः 265।
12. मैत्रेयी पुष्पा, (2009), ''इदन्नमम'', राजकमल प्रकाशन, पृष्ठः 423।
13. डॉ० अनिल शर्मा, (2017), ''समकालीन साहित्य में पर्यावरण चेतना'', राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रुड़की, पृष्ठः 1–11।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2026 Page No. : 229-231

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

गरूड़ पुराण में वर्णित पंच महाभूत : एक अध्ययन

खुशबू सुथार
शोधार्थी, संस्कृत विभाग
JRNRV, Udaipur (Raj.)

आलेख :

गरुड़ पुराण का मूल सिद्धान्त सांख्य दर्शन पर आधारित माना गया है। इसमें भगवान विष्णु पक्षीराज गरुड़ को उपदेश देते हुए कहते हैं कि जब भी जीवात्मा कर्म रूपी बन्धनों के कारण अपना नया शरीर धारण करती है, तब हि प्रकृति के तत्त्वों का सही संयोजन होता है। साथ ही मृत्यु के समय यही संघात वापस बिखर जाता हैं। इस पुराण के आचारकाण्ड एवं प्रेतकल्प के अन्दर सृष्टि विज्ञान तथा आत्मज्ञान के अन्तर्गत पंचमहाभूतों का अत्यन्त दार्शनिक विवेचन प्राप्त होता है। इस पुराण में मानव के शरीर को साक्षात् 'ब्रह्माण्ड की प्रतिलिपि' कहा गया है।

मूल आलेख :

केवल गरुड़पुराण में ही नहीं अपितु सांसारिक जीवन में भी पंचमहाभूतों को विशेष संज्ञा प्रदान की गई है।

आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी – ये पाँचों ही महाभूत इस भौतिक रूपी शरीर में हमेशा स्थित रहते हैं। इसमें आकाश का मुख्य लक्षण 'शब्द' है, वायु का मुख्य लक्षण 'स्पर्श' है, अग्नि का मुख्य लक्षण 'रूप' है, जल का मुख्य लक्षण 'रस' है तथा पृथ्वी को 'गन्ध' का वहन करने वाली कहा गया है। कहा गया है :

"आकाशं वायुमग्निं च जलं पृथ्वीं तथैव च।
एतानि पञ्च भूतानि शरीरे संस्थितानि च।।"

"आकाशलक्षणं शब्दं वायोः स्पर्शस्तथैव च।
अग्ने रूपं जलं रसं पृथ्वी गन्धवाहिनी।।"

- **आकाश महाभूत :**

इस महाभूत का संबंध हमारी श्रोत्र (कान) इन्द्रिय से होता है। शरीर में इसका स्थान शरीर के अन्दर के सभी खोखले स्थान एवं मार्गों से हैं।

ये कान के छिद्र, मुख, कंठ, हृदय के अन्दर का खाली स्थान, फेफड़ों की कोशिकाएँ एवं रक्त वाहिनी नस–नाड़ियों का खाली भाग। ये शरीर के अंगों को पूरी तरह से फैलने एवं उनमें गति करने के लिए स्थान प्रदान करता है।

- **वायु महाभूत :**

इस महाभूत का सम्बन्ध हमारी त्वचा से होता है। शरीर के अन्दर की सभी गतियों को प्राण ऊर्जा प्रदान करना इसका मुख्य कार्य होता है।

ये पलकें झपकना, मांसपेशियों का सिकुड़ना और उनका फैलना, हाथ–पैरों का हिलना, नसों में रक्त का दौड़ना तथा मुख्य रूप से श्वास–प्रश्वास। प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान वायु रूपी तत्त्व के ही रूप कहे जाते हैं।

- **अग्नि महाभूत :**

इस महाभूत का मुख्य संबंध हमारी चक्षु (आँख) से होता है, तथा शरीर की ऊष्मा को नियंत्रित करना।

इसका मुख्य कार्य शरीर के तापमान को सामान्य बनाए रखना है। आमाशय में स्थित जठराग्नि भी इसी महाभूत का रूप है, जो कि खाए गए भोजन को पचाकर रस तथा मल को अलग करती है। आँखों को देखने की दृष्टि तथा मुख मंडल का तेज अग्नि तत्त्व के ही मुख्य कार्य हैं।

- **पृथ्वी महाभूत :**

इस महाभूत का मुख्य संबंध शरीर को स्थिरता, वजन और उसे कठोरता प्रदान करना है। हमारे शरीर के अन्दर जितने भी ठोस अंग होते हैं, जैसे किकृ हड्डियाँ, मांसपेशियाँ, दाँत, त्वचा की बाहरी परत, नाखून तथा बाल ये सभी पृथ्वी रूपी तत्त्व के ही कार्य हैं। ये हमारे शरीर के भौतिक आकार को गिरने से बचाने में मदद करता है।

- **जल महाभूत :**

इस महाभूत का मुख्यतय संबंध हमारे शरीर के अंगो को आपस में बांधना एवं उसकी तरलता बनाए रखना है। हमारे शरीर के भीतर उपस्थित सम्पूर्ण तरल पदार्थ जैसे किकृ रक्त, लार, पसीना, आँसू एवं पाचक रस तत्त्व के कारण ही अपना–अपना कार्य करते हैं। यह शरीर में स्निग्धता बनाए रखता है, जिससे शरीर की नसें सूख न जाएँ।

महाभूतों के विलीन होने के शारीरिक लक्षण –

- **पृथ्वी का जल तत्त्व में विलय :**

जब भी जीव की मृत्यु होती है तो इस प्रक्रिया में सबसे पहले पृथ्वी तत्त्व का ह्रास होता है। शरीर का मांसपेशियों व हड्डियों से बना ढाँचा पूरी तरह से शिथिल हो जाता है। जीव अपने हाथ–पैरों को हिलाने की शक्ति खो देता है। सूंघने की क्षमता पूरी तरह से समाप्त हो जाती है। मुँह सूखने लगता है साथ ही चेहरा निस्तेज हो जाता है।

- **जल तत्त्व का अग्नि तत्त्व में विलय :**

जीव की मृत्यु के पश्चात जल तत्त्व नष्ट होने लगता है, जिससे शरीर के भीतर की तरलता समाप्त होने लगती है।

शरीर में स्थित लार, आँसू, पसीना तथा मूत्र आदि बनने बन्द हो जाते हैं। जिस कारण रक्त का प्रवाह अत्यन्त धीमा हो जाता है। रसना इन्द्रिय पूरी तरह से निष्क्रिय हो जाती है। जिससे जीव कुछ भी खाने–पीने में असमर्थ हो जाता है।

- **अग्नि तत्त्व का वायु तत्त्व में विलय :**

जैसे ही मनुष्य की मृत्यु होती है वैसे ही शरीर की ऊष्मा समाप्त होने लगती है, जो कि मृत्यु होने का सबसे बाहरी लक्षण है।

मृत शरीर के दूरस्थ अंग जैसे कि हाथ के पंजे, पैरों के तलवे एवं घुटने ठंडे पड़ने लगते हैं। शरीर की सम्पूर्ण ऊष्मा सिमटकर हृदय चक्र या मस्तिष्क में आ जाती है। आँखों की दृष्टि धुंधली पड़ जाती है। आँखें एक जगह पर स्थिर हो जाती हैं या फिर ऊपर की तरफ खिंच जाती हैं और पुतलियाँ फैल जाती हैं।

- **वायु तत्त्व का आकाश तत्त्व में विलय :**

यह जीव के प्राण रूपी पखेरु उड़ने की अन्तिम भौतिक अवस्था होती है, जहाँ पर वायु तत्त्व का अन्त होता है।

हृदय की धड़कन भी अनियमित हो जाती है, फेफड़े सिकुड़ने लग जाते हैं एवं सामान्य सी श्वास की जगह केवल और केवल लम्बी–लम्बी साँसें चलने लगती हैं। जिसे आम भाषा में प्राणों का कंठ में आना बोला जाता है। त्वचा की स्पर्श अनुभूति पूरी तरह से समाप्त हो जाती है।

- **आकाश तत्त्व में पूर्ण विलय :**

यह मृत्यु का अंतिम क्षण होता है, जहाँ जीवात्मा भौतिक बंधनों को छोड़कर मुक्त हो जाती है।

कंठ में अटके प्राण निकलते ही शरीर पूरी तरह ठंडा एवं निष्प्राण हो जाता है। आकाश तत्त्व सबसे अन्त में नष्ट होता है।

यह शरीर नश्वर है जो कि प्रकृति की अमानत है। मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा इस भौतिक शरीर को छोड़कर चली जाती है, और पाँचों महाभूत अपने–अपने मूल स्रोत में मिल जाते हैं।

"पञ्चभूतात्मकं देहं पञ्चत्वं च गमिष्यति।
पृथिवी तेजमग्निश्च वायुराकाशमेव च।।"

मानव का शरीर पाँच तत्त्वों के संयोग से बना हुआ है। हमारे शरीर का प्रत्येक हिस्सा इन पाँचों ही तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इनके मिलने से ही शरीर का निर्माण होता है और इनके अलग–अलग से मृत्यु।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. गरुड़ पुराण एक अध्ययन, डॉ. अवधबिहारी लाल अवस्थी, चौखम्भा संस्कृत प्रकाशन।
2. गरुड़ महापुराणम्, पुष्पेन्द्र कुमार, चौखम्भा संस्कृत प्रकाशन।
3. गरुड़ महापुराणम्, श्रीकृष्ण जुगनू, चौखम्भा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।
4. पंचमहाभूत विवेक, स्वामी अनुपमानन्द, ISBN 978938–8338141
5. मानव पंचमहाभूत, डॉ. रमेशचन्द्र मुरारी, चिन्तन प्रकाशन कानपुर, ISBN 9789385804199
6. पंचभूत, गोविन्द दास, स्टोरी नोवल्स।

विधिक/संपादकीय सूचना



महत्वपूर्ण विधिक सूचना

Print Journal एवं Online Journal के स्वरूप, ISSN तथा वेबसाइट पर PDF प्रकाशन के संबंध में

गुगन राम सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित शोध-पत्रिकाओं के संबंध में सभी शोधार्थियों, प्राध्यापकों, लेखकों एवं विद्वानों की जानकारी हेतु यह स्पष्ट किया जाता है कि संस्था की संबंधित शोध-पत्रिकाएँ **मुद्रित (Print) माध्यम** में प्रकाशित होती हैं तथा उन्हें **Print ISSN (P-ISSN)** प्राप्त है।

पत्रिका के प्रत्येक प्रकाशित अंक की पूर्ण **PDF** प्रति संस्था की वेबसाइट पर केवल शोधार्थियों, प्राध्यापकों, शिक्षकों एवं देश-विदेश के विद्वानों के अध्ययन, अवलोकन एवं शोध-संदर्भ हेतु उपलब्ध कराई जाती है। वेबसाइट पर किसी मुद्रित अंक की PDF उपलब्ध होना अपने-आप उस पत्रिका को पृथक **Online Journal / E-Journal** नहीं बनाता।

1 Print Journal क्या है?

जिस शोध-पत्रिका का प्रकाशन **मुद्रित/भौतिक** रूप में नियमित अंकों के रूप में होता है और जिसे उस मुद्रित माध्यम के लिए **ISSN** प्रदान किया गया है, वह **Print Journal** है। ऐसे संस्करण में प्राप्त ISSN को सामान्यतः P-ISSN / Print ISSN के रूप में दर्शाया जाता है।

2 Online Journal / E-Journal क्या है?

Online Journal वह शोध-पत्रिका है जिसका प्रकाशन इलेक्ट्रॉनिक/ऑनलाइन माध्यम के लिए एक स्वतंत्र प्रकाशन-संस्करण के रूप में किया जाता है। यदि किसी **Print Journal** का पृथक Online संस्करण बनाया जाता है, तो उस ऑनलाइन माध्यम के लिए अलग ISSN (Online ISSN / E-ISSN) की आवश्यकता होती है।

3 वेबसाइट पर Print Journal की PDF डालने का अर्थ

यदि कोई पत्रिका Print Journal के रूप में प्रकाशित होती है और उसके मुद्रित अंक की पूर्ण PDF वेबसाइट पर उपलब्ध कराई जाती है, तो केवल इस कारण से उसके P-ISSN को Online ISSN नहीं माना जा सकता।

अर्थात – Print publication + उसकी PDF वेबसाइट पर उपलब्ध = आवश्यक रूप से अलग Online Journal नहीं।

यदि उसी शीर्षक का स्वतंत्र Online version भी प्रकाशित किया जाता है, तो उसके लिए संबंधित ISSN प्राधिकरण के नियमों के अनुसार पृथक Online ISSN की आवश्यकता हो सकती है।

4 P-ISSN और E-ISSN का अंतर

आधार	Print Journal	Online Journal
माध्यम	मुद्रित/भौतिक	इलेक्ट्रॉनिक/ऑनलाइन
ISSN	P-ISSN / Print ISSN	Online ISSN / E-ISSN
प्रकाशन	मुद्रित अंक	ऑनलाइन संस्करण
वेबसाइट पर PDF	उपलब्ध हो सकती है	ऑनलाइन प्रकाशन का मुख्य माध्यम हो सकती है
अलग माध्यम होने पर	Print ISSN	पृथक Online ISSN

5 गुगन राम सोसायटी (रजि.) की पत्रिकाओं के संबंध में स्थिति

पत्रिकाएँ मुद्रित रूप में प्रकाशित होती है; संबंधित पत्रिकाओं को P-ISSN प्राप्त है; वेबसाइट पर PDF केवल अध्ययन एवं शोध-उपयोग हेतु उपलब्ध कराई जाती है। भविष्य में किसी पत्रिका का स्वतंत्र Online/E-Journal संस्करण प्रारंभ होने पर ISSN नियमों के अनुसार अलग Online ISSN की प्रक्रिया अपनाई जाएगी।

6 ISSN का सही प्रदर्शन

प्रत्येक अंक पर संबंधित Print ISSN को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया जाना चाहिए। यदि Print और Online दोनों माध्यमों के लिए अलग-अलग ISSN हों, तो दोनों को माध्यम की स्पष्ट पहचान के साथ प्रदर्शित किया जा सकता है।

7 विधिक/प्रामाणिक स्पष्टीकरण

यह सूचना ISSN International Centre द्वारा निर्धारित सिद्धांतों के अनुरूप है। भारत में ISSN संबंधी राष्ट्रीय जिम्मेदारी ISSN National Centre for India, CSIR-NIScPR, National Science Library, New Delhi के पास है। अतः किसी भी स्थिति में अंतिम प्रामाणिकता संबंधित ISSN प्राधिकरण के रिकॉर्ड एवं निर्णय से निर्धारित होगी।

• यह सूचना शोधार्थियों, प्राध्यापकों, लेखकों, संम्पादकों, पुस्तकालयों एवं शोध-पत्रिका से जुड़े सभी विद्वानों के मार्गदर्शन हेतु जारी की गई है। •

गुगन राम सोसायटी (रजि.)
बोहल, भिवानी, हरियाणा
प्रकाशक / संपादकीय कार्यालय

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 8.642

बोहल शोध मंजूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Adv.
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor : 7.834

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor : 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

गिना प्रकाशन द्वारा
जयपुर, भिवानी एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2321-0540
Impact Factor : 5.621

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES HALF YEARLY RESEARCH JOURNAL

Managing Editor :
Dr. Mukesh Verma
M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी रजि. के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, भिवानी से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड भिवानी-127021 (हरि.) से वितरित की।

ISSN 2395:7115

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

अनिल कुमार दुबे

श्रीमती विद्यावती कॉलेज ऑफ एजुकेशन, झाँसी, उत्तर प्रदेश, भारत

सपना

शिक्षा संस्थान, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी, उत्तर प्रदेश, भारत

अंजु लता

वीरांगना महारानी लक्ष्मीबाई राजकीय महिला महाविद्यालय, झाँसी, उत्तर प्रदेश, भारत।

for the paper titled

बून्देली लोक-संस्कृति में सामाजिक मान्यताएं एवं निषेध परम्परा

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Sept. 2026, Vol. 24, Issue -3, Part-3, Page No. 12-20

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ० मौ० मुजफ्फर अंसारी

राजनीति विज्ञान,

घिस्सुपुरा–हरिद्वार, उत्तराखण्ड।

for the paper titled

भारत के विकास में युवा सहभागिता :
एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Sept. 2026, Vol. 24, Issue -3, Part-3, Page No. 21-27

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

सिंधु कुमारी

शोधार्थी, स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग,
तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार।

for the paper titled

महिला सशक्तिकरण में शिक्षा की भूमिका : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Sept. 2026, Vol. 24, Issue -3, Part-3, Page No. 28-33

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

पंकज कुमार

शोध अध्येता, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

डॉ. अनामिका

सहायक प्रोफेसर, डॉ. राम मनोहर लोहिया स्मारक महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

(बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर)

for the paper titled

गांधीवादी सिद्धांतो के सच्चे प्रहरी : आचार्य जे. बी. कृपलानी

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Sept. 2026, Vol. 24, Issue -3, Part-3, Page No. 34-37

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

दीपिका श्रीमाली

शोधार्थी

for the paper titled

गीतांजलि श्री की कहानियों में स्त्री-पुरुष संबंधों की अभिव्यक्ति

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Sept. 2026, Vol. 24, Issue -3, Part-3, Page No. 38-42

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

अवनी मित्तल, छात्रा, कक्षा : XII

श्रीमती वैशाली श्रीवास्तव, हिंदी शिक्षिका

सिंधिया कन्या विद्यालय, ग्वालियर, मध्य प्रदेश।

for the paper titled

'बंद दरवाजे के पीछे' : माता-पिता और किशोरों के बीच विश्वास, संवाद और स्वतंत्रता का अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Sept. 2026, Vol. 24, Issue -3, Part-3, Page No. 43-48

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

श्रुति सिंघल, छात्रा, कक्षा : XII
श्रीमती वैशाली श्रीवास्तव, हिंदी शिक्षिका
सिंधिया कन्या विद्यालय, ग्वालियर, मध्य प्रदेश।

for the paper titled

'एक दिन बड़ी जिंदगी' में कविता का चरित्र-चित्रण : पारंपरिक पत्नी से जीवन-सहयात्री तक का रूपांतरण

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Sept. 2026, Vol. 24, Issue -3, Part-3, Page No. 49-56

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Madhvi
Assistant Professor,
Rashtriya College of Education, Sonipat Road, Rohtak.

for the paper titled

EFFECT OF ARTIFICIAL INTELLIGENCE ON CAREER MATURITY OF SENIOR SECONDARY SCHOOL STUDENTS

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Sept. 2026, Vol. 24, Issue -3, Part-3, Page No. 57-61

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. एम. एम. अंसारी

राजनीति विज्ञान,

घिस्सुपुरा–हरिद्वार, उत्तराखण्ड।

for the paper titled

दार्शनिक और राजनितिक परिप्रेक्ष्य में भावनाओं का मनोविज्ञान

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Sept. 2026, Vol. 24, Issue -3, Part-3, Page No. 62-69

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Kiran Dattaram Jadhav, Research Scholar,
Dr. Mukesh Kumar Verma, Research Guide,
Department of Commerce,
SHRI JAGDISHPRASAD JHABARMAL TIBREWALA UNIVERSITY,
VIDYANAGARI, JHUNJHUNU, RAJASTHAN – 333010

for the paper titled

ANALYZING THE ROLE OF BANKS IN PROMOTING MOBILE BANKING ADOPTION AMONG CUSTOMERS

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Sept. 2026, Vol. 24, Issue -3, Part-3, Page No. 70-79

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

उषा कुमारी

वरिष्ठ शोधार्थी, नागपुरी विभाग
रांची विश्वविद्यालय रांची।

for the paper titled

हिंदी एवं नागपुरी भाषा में क्रिया के प्रकार : एक तुलनात्मक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Sept. 2026, Vol. 24, Issue -3, Part-3, Page No. 80-88

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ० मौ० मुजफ्फर अंसारी

राजनीति विज्ञान,

घिस्सुपुरा–हरिद्वार, उत्तराखण्ड।

for the paper titled

भारतीय परंपरा में राजधर्म और शासन की नैतिकता

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Sept. 2026, Vol. 24, Issue -3, Part-3, Page No. 89-93

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

कपिल दिनकर चाटसे

पीएच.डी., हिंदी विभाग,
डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय,
छत्रपति संभाजीनगर, महाराष्ट्र.

for the paper titled

21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में संवाद भाषा का स्वरूप

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Sept. 2026, Vol. 24, Issue -3, Part-3, Page No. 94-99

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

संतोष कुमारी, पी.एच.डी. हिन्दी, शोधार्थी, पंजीकरण संख्या : GU23R2203

ग्लोकल स्कूल ऑफ आर्टस एण्ड सोशल साईंस, सहारनपुर, उत्तर प्रदेश।

डॉ. शोभा त्रिपाठी

प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग, ग्लोकल विश्वविद्यालय, सहारनपुर, उत्तर प्रदेश।

for the paper titled

भारत का विभाजन : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, कारण, मानवीय त्रासदी और इसके दूरगामी परिणाम

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Sept. 2026, Vol. 24, Issue -3, Part-3, Page No. 100-106

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

अनुपमा, शोधार्थी,

डॉ. रीना अग्रवाल, शोध निर्देशक,

फोनिक्स यूनिवर्सिटी रुड़की, हरिद्वार उत्तराखंड।

for the paper titled

मृदुला गर्ग के साहित्य-सृजन में भारतीय दर्शन

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Sept. 2026, Vol. 24, Issue -3, Part-3, Page No. 107-111

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Manjay Kumar Thakur

Assistant Professor, Department of Chemistry
Gopeshwar College Hathwa, Gopalganj.

for the paper titled

Corrosion Protection of Drinking Water Pipelines and Its Impact on Human Health

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Sept. 2026, Vol. 24, Issue -3, Part-3, Page No. 112-123

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Reena Rani, Student,
Porf. Rajesh Gargi, Department of CSE
PKG GROPU OF INSTITUTION, MATLAUDA, PANIPAT.

for the paper titled

Scalable Machine Learning Techniques for Efficient Big Data Processing and Analysis

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Sept. 2026, Vol. 24, Issue -3, Part-3, Page No. 124-134

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

शुभम यादव

शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय,

हिंदी विभाग, 110009

for the paper titled

21वीं सदी के हिंदी साहित्य में सृजन और विमर्श : पर्यावरणीय संकट, नव–पूंजीवाद और मनोवैज्ञानिक यथार्थ

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Sept. 2026, Vol. 24, Issue -3, Part-3, Page No. 135-141

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

प्रो. (डॉ.) कैलाश पति गोस्वामी

डी. ए. वी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
सीवान (बिहार)–841226

for the paper titled

प्रवाद पर्व : लोक बनाम राजतन्त्र की समस्या

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Sept. 2026, Vol. 24, Issue -3, Part-3, Page No. 142-144

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

शुभम यादव, शोधार्थी

हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय।

प्रोफेसर राज भारद्वाज

भगिनी निवेदिता कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय नजफगढ़, दिल्ली।

for the paper titled

चूड़ी का प्रतीकवाद : स्त्री पहचान और बाजार संस्कृति

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Sept. 2026, Vol. 24, Issue -3, Part-3, Page No. 145-150

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

प्रोफेसर (डॉ.) अनुज कुमार पटेल

प्रोफेसर, हिंदी विभाग, गणपत सहाय पीजी कॉलेज, सुलतानपुर।

शालिनी वर्मा

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, एमडीपीजी कॉलेज, प्रतापगढ़।

for the paper titled

हिंदी महिला कथाकारों के उपन्यासों में किन्नर अस्मिता और सामाजिक यथार्थ : एक आलोचनात्मक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Sept. 2026, Vol. 24, Issue -3, Part-3, Page No. 151-155

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Ms. Gurdeep Kaur, Ph.D. Scholar,

Manav Rachna International Institute of Research and Studies,

Mr. Dhiraj Chaudhary, Assistant Professor,

Maharishi University of Information Technology Sector-110. Noida.

for the paper titled

Caste-Based Identity Mobilization and Political Representation in Uttar Pradesh : A Comparative Study of Descriptive and Substantive Representation of OBCs and Dalit Communities (2007–2022)

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Sept. 2026, Vol. 24, Issue -3, Part-3, Page No. 156-170

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

प्रवीण भाटिया

शोधार्थी–हिंदी विभाग,

हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला, समरहिल, 171005

for the paper titled

धर्मपाल साहिल के उपन्यासों में मीडिया की भूमिका

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Sept. 2026, Vol. 24, Issue -3, Part-3, Page No. 171-174

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

परमजीत कौर

शोधार्थी, हिंदी विभाग,

मोतीराम बाबूराम राजकयी स्नातकोत्तर महाविद्यालय,

हल्द्वानी, नैनीताल–263139

for the paper titled

उषा प्रियंवदा की कहानियों में अकेलापन

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Sept. 2026, Vol. 24, Issue -3, Part-3, Page No. 175-177

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

वंदना चौहान, शोधार्थी

डॉ. रीना अग्रवाल, शोध निर्देशिका

फोनिक्स यूनिवर्सिटी, रुड़की।

for the paper titled

वैश्वीकरण के दौर में अनामिका का कथा-साहित्य : स्त्री-अस्मिता, सामाजिक परिवर्तन और समकालीन यथार्थ

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Sept. 2026, Vol. 24, Issue -3, Part-3, Page No. 178-183

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

पीयूष कुमार, शोधार्थी,

डॉ. विष्णु प्रसाद शुक्ल, शोध–निर्देशक, सहायक आचार्य एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग, नेहरू ग्राम भारतीय मानित विश्वविद्यालय प्रयागराज, उ0प्र0

for the paper titled

रमेशचन्द्र शाह के कथा–साहित्य में ग्रामीण एवं सामाजिक परिवेश

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Sept. 2026, Vol. 24, Issue -3, Part-3, Page No. 184-187

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

साक्षी, शोधार्थी

राजकीय महाविद्यालय टूंडला, फिरोजाबाद संबंध डॉ. भीम राव अम्बेडकर यूनिवर्सिटी, आगरा, उत्तर प्रदेश।

डॉ. विभा, शोध निर्देशिका

राजकीय महाविद्यालय टूंडला, फिरोजाबाद संबंध डॉ. भीम राव अम्बेडकर यूनिवर्सिटी, आगरा, उत्तर प्रदेश।

for the paper titled

प्रिंट मीडिया में ग्रामीण समस्याएँ : सहारनपुर जनपद के विशेष संदर्भ में 'अमर उजाला' और 'दैनिक जागरण' का विश्लेषणात्मक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Sept. 2026, Vol. 24, Issue -3, Part-3, Page No. 188-194

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

विनोद कुमार, शोधार्थी,

श्री जगदीश प्रसाद झाबरमल तिबरेवाला विश्वविद्यालय, झुंझुनू।

डॉ. धनेश कुमार मीणा, निर्देशक

सहायक आचार्य, हिंदी, एस.जे.जे.टी.यू.।

for the paper titled

कमलेश्वर का मीडिया लेखन में योगदान

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Sept. 2026, Vol. 24, Issue -3, Part-3, Page No. 195-198

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. कविता वी. राजन

सहायक प्राध्यापिका,

दि कोच्चिन कॉलेज, कोच्चि–2, केरल।

for the paper titled

स्त्री–चेतना, प्रतिरोध और आत्मनिर्णय : मैत्रेयी पुष्पा के 'झूलानट' में अस्मिता–विमर्श

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Sept. 2026, Vol. 24, Issue -3, Part-3, Page No. 199-206

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. अनीता मीना

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग,
शहीद कैप्टन रिपुदमन सिंह राजकीय महाविद्यालय,
सवाई माधोपुर (राजस्थान)

for the paper titled

सूरदास के काव्य में भक्ति आंदोलन की वैचारिक चेतना : एक आलोचनात्मक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Sept. 2026, Vol. 24, Issue -3, Part-3, Page No. 207-212

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

कनिका गुप्ता, सहायक प्राध्यापक (इतिहास),

शासकीय महाविद्यालय, नरवर शिवपुरी (म.प्र.)

सोनिया मंडलोई, सहायक प्राध्यापक (इतिहास),

शहीद टंट्या मामा शासकीय महाविद्यालय, पंधाना, खण्डवा (म.प्र.)

for the paper titled

भोपाल रियासत का विलीनीकरण आंदोलन तथा महिलाओं की भूमिका

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Sept. 2026, Vol. 24, Issue -3, Part-3, Page No. 213-216

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Chhavi

Research Scholar, Hindi Vibhag,
MMH College Ghaziabad,
Ch. Charan Singh Unjversity.

for the paper titled

समकालीन हिंदी उपन्यास में जल संकट और पर्यावरणीय विमर्श

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Sept. 2026, Vol. 24, Issue -3, Part-3, Page No. 217-228

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

खुशबू सुथार

शोधार्थी, संस्कृत विभाग

JRNRV, Udaipur (Raj.)

for the paper titled

गरूड़ पुराण में वर्णित पंच महाभूत :
एक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Sept. 2026, Vol. 24, Issue -3, Part-3, Page No. 229-231

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152